प्रकाशक की ओर से

'जवाहरकिरणावली' का प्रकाशन इस युग के एक महान् ज्योतिर्धर, युगद्रष्टा, जैनाचार्य पूज्य श्री जवाहरलालजी महाराज की मौजूदगी में ही आरम्भ कर दिया गया था। उस समय यह कल्पना भी नहीं की गई थी कि यह प्रकाशन इतना विशाल स्वरूप ग्रहण कर लेगा। मगर आरम्भ की तीन किरणें प्रकाशित होते ही समाज ने उन्हें प्रेम और श्रद्धा के साथ ग्रहण किया। पाठकों ने और पूज्यश्री के भक्तों ने हमारे प्रयास की मुक्तकण्ठ से सराहना की। यह सब देखकर हमारा उत्साह बढ़ता चला गया। हमने समाज से सहयोग की मांग की तो वह भी मिला। हमारे अनेक मित्रों ने अनेक प्रकार से सहयोग दिया जिसमे आर्थिक सहयोग भी सम्मिलित है और नैतिक सहयोग भी। इससे प्रेरणा पाकर हम प्रकाशन-कार्य मे बराबर अग्रसर होते चले गये और यह लिखते हुए हमें हर्ष है कि कागज आदि सम्बन्धी अनेक कठिनाइयाँ होने पर भी पिछले आठ वर्षों में ही हम सत्ताईस किरणें प्रकाशित करने में समर्थ हो सके हैं। २८ वीं किरण सम्पादित होकर करीब-करीब तैयार है। उसका प्रकाशन भी शीघ्र ही हो जायगा। २८ वीं किरण महिला समाज के लिए होगी। महिला वर्ग के सम्बन्ध में पूज्य श्री ने

समय-समय पर जो विचार प्रकट किये थे, उनका संकलन करके यह किरण तैयार की गई है, जो महिलाओं के जीवन-विकास में बहुत ज्यादा सहायक होगी। २७ वीं किरण प्रकाशित हो ही चुकी है।

पिछली किसी किरण की प्रस्तावना मे मैंने ५१ किरणें प्रकाशित करने का अपना मनोरथ व्यक्त किया था। पूज्य श्री का व्याख्यान-साहित्य इतना विशाल है कि ५१ बहुमूल्य और उपयोगी किरणें उसमे से सम्पादित होकर सहज ही प्रकाशित की जा सकती हैं। इसी प्रकार सहयोग मिलता रहा तो आशा है निकट भविष्य मे ही हम अपना मनोरथ पूर्ण कर सकेंगे और स्वर्गीय पूज्य श्री के गुरुतर उपकार-भार से कुछ हल्के हो सकेंगे।

उदाहरणमाला के तीनों भाग समाज के अग्रगण्य श्रीमान् सेठ इन्द्रचन्द्रजी साहब गेलडा की पुण्यश्लोका मातेश्वरी श्रीमती गणेशबाई की स्मृति मे उनके द्वारा प्रदान की हुई रकम से प्रकाशित हो रहे हैं। श्री जवाहर विद्यापीठ के विशिष्ट उत्सव पर आपने ११११११) रु० प्रदान किये थे, जिसमें ६०१०) रु० साहित्य प्रकाशन के निमित्त थे और ५१०१) रु० जवाहर स्मृति-भवन के लिए। उस मूल रकम को कायम रखते हुए उससे नया-नया साहित्य प्रकाशित करने की हमारी नीति है, जिससे कि इस रकम से अधिक से अधिक कार्य किया जा सके। इसी नीति के परिणाम स्वरूप पुस्तक का लागत मात्र मूल्य निर्धारित किया गया है।

श्रीमान् गेलड़ाजी अपने समाज के प्रसिद्ध दानी, साहित्यप्रेमी, शिक्षाप्रेमी और धर्मनिष्ठ महानुभाव है। मूल निवासी कुचेरा (मारवाड़) के है, परन्तु मद्रास में आपका व्यवसाय है

और प्रायः वहीं आप रहते हैं। दानशीलता का गुण आपको पितृ-परम्परा से प्राप्त हुआ है। आपके पिताजी श्री अमोलकचन्दजी सा० मंद्रास के प्रसिद्ध व्यापारी थे। आपने मारवाड़ी औषधालय, कन्याशाला, गौशाला और छात्रालय तथा पाठशालाओ को हजारों की सहायता दी थी। आप मुख्य रूप से गुप्त दान ही दिया करते थे। ऐसे दानी सज्जन के उत्तराधिकारी सेठ इन्द्रचन्द्रजी साहब ने भी अब तक लाखो का दान दिया है। अपने पूज्य पिता श्री की स्मृति में ५५०००) रु० एक मुश्त दान देकर आपने मद्रास में हाई-स्कूल की नींव डाली। फिर छात्रालय आदि बनवाने के लिए भी हजारो की रकमें देते रहे हैं और समय-समय पर मद्रास की तथा बाहर की संस्थाओं को यथोचित दान देते ही रहते हैं। आपकी ही उदारता के फल स्वरूप कुचेरा मे जिनेश्वर औषधालय चल रहा है, जहाँ रोगियो की मुफ्त सेवा की जाती है।

गेलड़ाजी का व्यक्तित्व बड़ा ही आकर्षक है। उनका सौम्य मुख-मण्डल उनके हृदय की पावन सात्विकता का प्रतीक है। वे अजातशत्रु हैं। उनकी वाणी मे अनूठा माधुर्य है और प्रकृति में अहिंसा एवं प्रेम की उज्ज्वलता है। पूज्यश्री के साहित्य के प्रति आपका प्रेम आदर्श है। श्रीहितेच्छु-श्रावक मण्डल रतलाम ने आपकी आर्थिक सहायता से ही श्रीभगवतीसूत्र के व्याख्यान प्रकाशित किये हैं। उदाहरणमाला के तीन भाग भी आपकी ही उदारता से प्रकाशित हो रहे हैं।

गेलड़ाजी का बृहत्-परिवार जिस प्रकार समाज-सेवा और शासन-प्रभावना में योग दे रहा है, वह वास्तव में समाज के लिए आदर्श है। आपके ज्येष्ठ भ्राता सेठ ताराचन्दजी साहब तो समाज के स्तम्भों में से एक हैं। मद्रास मे शिक्षा का जैन

केन्द्र स्थापित करने में उन्होंने धन के साथ-साथ तन और मन से जो परिश्रम किया है, उसका वर्णन नहीं किया जा सकता ! आजकल आप निवृत्तिमय धार्मिक जीवन व्यतीत कर रहे हैं और आपके सुपुत्र श्रीभागचन्द्रजी समाज-सेवा में योग दे रहे हैं।

अन्त मे हमारी हार्दिक कामना है कि गेलडा-परिवार अपनी सेवाओं से समाज को समृद्ध बनाता रहे।

पूर्ण विश्वास है कि पूज्य श्री के प्रवचनों में से संकलित किये हुए यह उदाहरण पाठकों के जीवन को उन्नत बनाने में समर्थ होंगे और प्रेमी पाठक इनका उचित आदर करेंगे।

निवेदक:—

चम्पालाल बांठिया

मन्त्री:—

श्री जवाहर साहित्य समिति

भीनासर
बसन्त पञ्चमी
संवत् २००८

मदीयम्

स्व० जैनाचार्य पूज्य श्री जवाहरलालजी महाराज, तत्कालीन युवाचार्य और वर्त्तमान आचार्य सदयहृदय पूज्य श्री गणेशीलालजी महाराज और पं० र० मुनि श्री श्रीमलजी महाराज उस समय भीनासर में विराजमान थे। इन पंक्तियों के लेखक को पूज्य श्री के जीवनचरित-लेखन के सिलसिले में लगभग एक मास तक भीनासर ठहरना पड़ा। उन दिनों आचार्यश्री, युवाचार्यश्री और मुनिश्री के समक्ष अकसर फाइलों में पड़े पूज्यश्री के महत्त्वपूर्ण भावमय और क्रान्तिकारी प्रवचनों के उद्धार की चर्चा चलती रहती थी। समाज के उत्साहमूर्त्ति सेठ चम्पालालजी बांठिया इस चर्चा में प्राण फूंक दिया करते और एक समर्थ श्रीमन्त की इतनी दिलचस्पी देख आशा होने लगती थी कि साहित्यिक योजना अवश्य मूर्त रूप धारण कर सकेगी। उन्हीं दिनों 'श्री जवाहरकिरणावली' का नाम-संस्कार किया गया और कार्य आरम्भ कर दिया गया।

पूज्यश्री के प्रवचनों में, बीच-बीच में आने वाले विविध उदाहरण महत्त्वपूर्ण स्थान रखते हैं। पूज्यश्री प्रतिपाद्य विषय

को उदाहरणों के द्वारा सजीव और सप्राण बना दिया करते थे। उदाहरणों का उपसंहार ऐसे सुन्दर ढंग से किया करते थे कि उसका असर सीधा हृदय पर हुए बिना नहीं रहता था।

भीनासर मे पूज्यश्री के प्रवचनो की फाइलें सरसरी निगाह से देखते ही मेरे मन पर उदाहरणों की गहरी छाप लग गई। तभी यह भी निश्चय कर लिया गया कि इन उदाहरणो का सकलन और प्रकाशन हो जाना चाहिए। पर यह सोच कर कि एक बार सिलसिलेवार साहित्य के प्रकाशित हो जाने पर उदाहरणो का संकलन करना सरल हो जायगा, उस समय उस विचार को स्थगित कर दिया गया। अब उस विचार को कार्यान्वित करने का अवसर मिला है।

उदाहरणमाला तीन भागों में प्रकाशित हो रही है। यद्यपि सभी उदाहरण अपने आप में परिपूर्ण हैं। उनमें आपस में कोई सिलसिला नहीं है। अतएव उनके वर्गीकरण की कोई खास आवश्यकता नहीं थी, फिर भी पौराणिक, ऐतिहासिक और लौकिक उदाहरणों के रूप मे तीन भागों मे उनका वर्गीकरण करने की चेष्टा की गई है। पौराणिक भाग बहुत बड़ा हो जाने के भय से दूसरे ऐतिहासिक खंड में भी कुछ पौराणिक उदाहरण दिये गये हैं। खयाल है, यह वर्गीकरण पाठकों को रुचिकर और सुविधाजनक होगा।

भीनासर, रतलाम और राजकोट आदि से हिन्दी एवं गुजराती भाषा मे प्रकाशित समग्र साहित्य मे से यह उदाहरण संकलित किये गये है। साथ ही अब तक प्रकाश मे न आये हुए भी बहुत से उदाहरण इस सकलन में समाविष्ट किये गये हैं।

पं० मुनि श्री श्रीमलजी महाराज द्वारा करवाये हुए 'जवाहिर-दृष्टान्तमाला' नामक एक हस्तलिखित संग्रह से भी मुझे काफी सहायता मिली है। हमने उदाहरणो को संग्रहीत करने मे भरसक प्रयत्न किया है, फिर भी मेरा विश्वास है कि अब भी अप्रकाशित साहित्य में, जो मेरे पास मौजूद नही है, बहुत से संग्रह करने योग्य उदाहरण मौजूद हैं। अवसर मिला तो किसी समय उनके भी संकलित और प्रकाशित करने की भावना है।

श्री जवाहिर साहित्य मे इन उदाहरणो का अपना एक अनूठा स्थान है। पूज्यश्री के गारिष्ठ-गम्भीर विचारों को, जो पूरी तरह पचा नहीं सकते ऐसे पाठकों के लिए यह संग्रह बड़ा ही उपयोगी होगा। बालकों में स्वभाव से ही कथा-कहानी पढ़ने का शौक होता है। वे चाहे जैसी रद्दी-सद्दी कहानियो को भी बडे चाव से पढ़ते हैं और कभी कभी उस पठन से बालकों का भयंकर अहित होता है। अगर बालकों के हाथ में यह पुस्तकें दी जाएँगी तो वे हानिकारक कहानियो से बचेंगे और अपने जीवन को संस्कारमय बना सकेंगे। इस प्रकार यह तीन किरणें साधारण योग्यता के पाठकों और विशेषतः बालकों के लिए अत्यन्त उपयोगी सिद्ध होंगी।

उदाहरणों का सम्पादन करते समय हमने यह ध्यान रक्खा है कि प्रत्येक उदाहरण से मिलने वाली शिक्षा का भी उसके साथ समावेश अवश्य हो जाय।

पहले प्रकाशित उदाहरणों को, जो बहुत विस्तृत थे, हमने संक्षिप्त कर दिया है, फिर भी कोई-कोई उदाहरण, जिसमे

और ज्यादा संक्षेप की गुंजाइश न थी, कुछ विस्तृत रह गया है। किन्तु वह अरुचिकर नहीं होगा, ऐसी आशा है।

जवाहर-साहित्य के प्रकाशन में बाँठियाजी का सहयोग बहुमूल्य है। उनका सहयोग न होता तो यह अनमोल साहित्य फाइलों में ही दबा पड़ा रहता और कौन जानता है कि किस समय वह दीमक आदि का आहार बन जाता? प्रस्तुत तीन किरणें उन्हीं के समधी श्री गेलड़ाजी के सहयोग से प्रकाशित हो रही हैं। समधी-समधी मिलकर दुनियादारी के तो बहुत से काम किया करते है, मगर शासन-प्रभावना और साहित्य-सेवा करने वाली समधियों की यह जुगल जोड़ी शायद पहली ही है। सचमुच आप दोनों ने सम-धी (समान विचार, समान भावना वाले) शब्द को सार्थक बना दिया है।

पाठक यह जानकर प्रसन्न होंगे कि बालकों के लिए जवाहर-साहित्य की इस भेंट के पश्चात् शीघ्र ही नारी-समाज को भी जवाहिर-साहित्य की भेंट प्रदान की जा रही है।

उदाहरणों का संग्रह करने में पं० मुनिश्री नेमिचन्द्रजी म० से मुझे मूल्यवान् सहयोग मिला है। मैं उनका आभारी हूँ!

श्री जैन गुरुकुल,
ब्यावर
२-२-५२

—शोभाचन्द्र भारिल्ल

विषय-सूची

म संख्या	नाम	पृष्ठ संख्या
१	क्षमामूर्ति	१–१३
२	क्षमावीर गजसुकुमार	१४–५०
३	त्याग की शक्ति	५१–५४
४	विश्वास-बल	५५–५७
५	अर्जुन का तपोबल	५८–६०
६	माता और सन्तति	६१–६२
७	दैवी शक्ति	६३–६५
८	कष्टसहिष्णु कर्ण	६६–६८
९	सत्यनिष्ठा	६९–७१
१०	धन का अभिशाप	७२–७३
११	कुसंगति *	७४–८२
१२	एकाग्रता	८३–८६
१३	विश्वास–बल	८७–८
१४	ग्राम–सेवा *	९०–११९
१५	धर्मवीर धन्ना	१२०–१२९
१६	दैवी बल और दानवी बल	१३०–१४६
१७	अनुचरी	१४७–१४८
१८	उत्सर्ग	१४९–१६२

१९	विजय-पथ	१६३-१६८
२०	सच्ची शिक्षा	१६९-१७३
२१	विद्वान् की सेवा	१७४-१७६
२२	साहस	१७७-१७८
२३	सत्यवादी	१७९-१८३
२४	शरणागत-रक्षा	१८४-१८७
२५	भक्त	१८८-१८९
२६	सत्संकल्प की विजय	१९०-१९२
२७	गुप्त दान	१९३-१९४
२८	प्राणदान	१९५-१९७
२९	हाय गहने !	१९८-१९९
३०	करुणा	२००-२०७
३१	खादी	२०८-२०९
३२	शिवाजी की सच्चरित्रता	२१०-२११
३३	वीरवर दुर्गादास	२१२-२१७
३४	रक्षाबन्धन	२१८-२२०
३५	रक्षाबन्धन का महत्व	२२१-२२२
३६	कृष्णाकुमारी का बलिदान	२२३-२२४
३७	आत्मविश्वास	२२५-२२६
३८	माता का महत्व	२२७-२२९
३९	क्रोध	२३०
४०	ब्रह्मचारी पितामह	२३१-२३८
४१	श्रीकृष्ण	२३९-२६७
४२	मृतक-भोजन	२६८-२७०
४३	पतिव्रता का प्रभाव	२७१-२७५
४४	धन का प्रमाद !	२७६-२७७

४५	भोग-रोग	२७८–२८१
४६	प्रीतिभोजन	२८२–२८५
४७	गांधीजी	२८६–२९५
४८	उपवास	२९६–२९७
४९	वीर बालक	२९८
५०	दृढ़ता	२९९–३००
५१	उदारता	३०१–३०४
५२	दो बहिनें-सम्पत्ति और विपत्ति	३०५–३०८
५३	देवी माता	३०९–३११
५४	मदिरापान	३१२–३१५
५५	अनुकम्पा	३१६–३१९
५६	परार्थ राज्य	३२०–३२२
५७	महान् पुरुष	३२३–३२४
५८	भय	३२५–३२६
५९	सिकन्दर	३२७–३२८
६०	टाल्सटाय	३२९–३३४
६१	मुचुकुन्दगीत	३३५–३३८
६२	खादी	३३९–३४०
६३	देशभक्ति	३४१–३४३
६४	नगर-नायक	३४४–३४७
६५	अबला नहीं, सबला	३४८–३५०
६६	आदर्श पत्नी	३५१–३७१
६७	मानवदया	३७२–३७३
६८	कर्म-रोग	३७४–३७६
६९	अभिमान	३७७–३८१
७०	परस्त्रीत्यागी	३८२–३८९

७१	सामायिक	३६०-३६२
७२	अमेरिका का जज	३६३-३९५
७३	सरलता	३९६-३९९
७४	धर्म का कांटा	४००-४०५
७५	सत्यवीर हरिश्चन्द्र	४०६-४११
७६	स्तुति का प्रताप	४१२-४१४
७७	भविष्य की ओर	४१५-४१६
७८	जाति भाई	४१७-४१८
७९	संघ-संगति	४१९-४२५
८०	अमर मरंता मैंने देखे	४२६-४२९
८१	शालिताग	४३०-४३४
८२	सुख में दुःख	४३५-४३७
८३	विशाल दृष्टि	४३८-४४२
८४	मेघ की नम्रता	४४३-४४६
८५	गाढी श्रद्धा	४४७-४५१
८६	सुशीला नन्दू	४५२-४७०

क्षमामूर्ति

राजर्षि नमि की माता मेणरेया (मदनरेखा) का वृत्तान्त आप जानेंगे तो आपको विदित होगा कि आप अपने कुटुम्बियो के प्रति सज्जनता का व्यवहार करते हैं या दुर्जनता का ?

राजर्षि नमि की माता अत्यन्त सुन्दरी थी। जैसा उसका नाम, वैसा ही उसका सौन्दर्य था। मेणरेया या मदनरेखा उसका नाम था। वह युगबाहु की पत्नी थी। युगबाहु के एक बडे भाई थे जिनका नाम राजा मणिरथ था। एक दिन मणिरथ ने मदनरेखा को देख लिया और देखते ही वह उस पर मुग्ध हो गया। उसके हृदय मे पाप-वासना जाग उठी। उसने मदनरेखा को अपनी स्त्री बनाने का निश्चय कर लिया।

यद्यपि मणिरथ ने अपनी कुत्सित कामना की सिद्धि के लिए आकाश-पाताल एक कर दिया, पर मदनरेखा के हृदय में लेश मात्र भी पाप का संचार नहीं हुआ। वह बचपन से ही धर्म-ध्यान और ईश्वरस्मरण में परायण थी। मदनरेखा की इस दृढ़ता से

मणिरथ कुछ-कुछ निराश हुआ। अन्त मे उसने विचार किया कि मदनरेखा जब तक युगबाहु के पास रहेगी तब तक हाथ न आयेगी। किसी प्रकार युगबाहु को उससे अलग करना चाहिए।

इस प्रकार विचार करके मणिरथ ने दौरे पर जाने का ढोंग रचा। युगबाहु ने भाई से दौरे पर जाने का कारण पूछा तो मणिरथ ने कहा—राज्य की सीमा पर कुछ उपद्रवियो ने उत्पात मचा रखा है। उनका दमन करने के लिए मेरा जाना आवश्यक है। युगबाहु बोला—उपद्रवियो का दमन करने के लिए मेरे रहते आपका जाना ठीक नहीं है। जब तक मैं जीवित हूँ, आपको नहीं जाने दूँगा। अतएव कृपा कर मुझे जाने की आज्ञा दीजिए। यदि मै उनका दमन न कर सका तो फिर भविष्य मे मुझे कौन गिनेगा?

बिल्ली के भाग्य से छींका टूटा। मणिरथ जो चाहता था वही हुआ। फिर भी उसने ऊपरी मन से युगबाहु को घर रहने के लिए कहा और अन्त मे उसे विदा कर दिया।

युगबाहु के चले जाने पर मणिरथ ने उत्तमोत्तम वस्त्र-आभूषण, सुगन्ध की वस्तुएँ और खाने पीने के अनेक स्वादिष्ट पदार्थ, एक दूती के साथ मदनरेखा के पास भेजे। दूती ने मणिरथ की भेजी हुई सब विलास-सामग्री मदनरेखा को भेट की। उस समय मदनरेखा ने कहा—जिस नारी का पति परदेश गया हो उसे विलास-सामग्री की क्या आवश्यकता है? उसे तो उदास भाव से, धर्म की आराधना करते हुए समय-यापन करना चाहिए। मुझे इन वस्तुओ की आवश्यकता नहीं है। जाओ, इन्हे वापस ले जाओ।

मित्रो ! अधिकांश में स्त्रियो को पतित बनाने वाली यही वस्तुएँ हैं। स्त्रियाँ यदि पौद्गलिक शृङ्गार की लालसा पर विजय प्राप्त कर सकें, गहना, कपड़ा और खान-पान की वस्तुओं पर न ललचावें, इससे ममत्व हटा लें, तो किस की शक्ति है जो परस्त्री की ओर बुरी नज़र से देख सके ?

मदनरेखा ने कहा है कि जिसका पति परदेश मे हो उसे विलास-सामग्री से क्या प्रयोजन है ?

मदनरेखा ने मणिरथ के भेजे हुए वस्त्राभूषण लाने वाली दूती को फटकार बताई और वापस ले जाने को कहा। दूती ने धृष्टता के साथ कहा—'राजा आप को चाहते हैं। इन गहनो कपडो की तो बात ही क्या है, वे स्वयं आपके आधीन होने वाले हैं। यह वस्त्र और आभूषण तो अपनी हार्दिक कामना प्रकट करने के लिए ही उन्होंने भेजे हैं ।'

दूती की निर्लज्जतापूर्ण बात सुनते ही मदनरेखा का अङ्ग-अङ्ग क्रोध से जल उठा। उसने अपनी दासी से अपनी खड्ग मँगवाई और दूती को उसकी धृष्टता का मजा चखा देने का विचार किया।

मदनरेखा की भयंकर आकृति देख कर दूती सिर से पैर तक काँप उठी। उसकी प्रचण्ड मुखमुद्रा देख दूती के चहरे पर हवाइयाँ उडने लगीं। तब मदनरेखा ने उससे कहा—जा, काला मुँह कर। अपने राजा से कह देना कि वह सिंहनी पर हाथ डालने की खतरनाक और निष्फल चेष्टा न करे; अन्यथा धन-परिवार समेत उसका समूल नाश हो जयगा।

दूती अपनी जान बचाकर भागी। उसने मणिरथ से आद्योपान्त सारा वृत्तान्त कह सुनाया। मणिरथ ने सोचा—ऐसी वीरांगना स्त्री तो मेरे ही योग्य है!

'विनाशकाले विपरीतबुद्धिः।'

एक दिन आधी रात के समय स्वयं मणिरथ, मदनरेखा के महल मे जा पहुँचा। वहाँ पहुँच कर उसने द्वार खटखटाया। मदनरेखा सारा रहस्य समझ गई। उसने किंवाड़ खोले बिना ही राजा को फटकारा। कहा—'इस समय तेरा यहाँ क्या प्रयोजन है? जा, इसी समय चला जा यहाँ से!'

राजा—'मदनरेखा, बिना प्रयोजन कौन किसके यहाँ आता है? मैं अपना मन तुम्हें समर्पित कर चुका हूँ। यह तन और बचा है, इसी को तुम्हारे चरणों मे अर्पित करने के लिए आया हूँ। मदनरेखा, मेरी भेंट स्वीकार करो। इस तन के साथ ही अपना विशाल राज्य भी तुम्हे सौंप दिया जायगा।

मदनरेखा—राजा, काम की अग्नि को अगर सहन नही कर सकते तो चिता की अग्नि को अपना शरीर समर्पित कर दो! अपनी कामाग्नि से सती-साध्वी पतिव्रता नारी के धर्म को आग न लगाओ। उस आग मे नीति को भस्म न करो। अपने भविष्य को भस्म होने से बचाओ। पतित पुरुष, अपने छोटे भाई की पत्नी पर तू कुत्सित दृष्टि डालता है! मैं नारी होकर तुझे दुत्कारती हूँ, और तू मेरे पैरो पडता है। कहाँ है तेरा पुरुषत्व? जो काम के अधीन होकर स्त्री के सामने दीनता दिखलाता है, वह पुरुष नहीं। हींजड़ा है तू स्त्री और नपुंसक से भी गया-बीता है। अपना भला चाहता है तो अभी-इसी क्षण-यहाँ से

चलता बन। वर्ना, तुझे अपनी करतूत का मजा अभी चखाया जायगा।

मदनरेखा ने मणिरथ को जब इस प्रकार फटकार बताई तो वह अपना-सा मुँह लेकर लौट आया। फिर भी उसे सद्-बुद्धि न आई। उसने सोचा—जब तक युगबाहु जीवित रहेगा तब तक यह स्त्रीरत्न हाथ न लगेगा। किसी प्रकार इस काँटे को निकाल फैंकना चाहिए।

इस प्रकार मणिरथ का पाप बढ़ता चला गया लेकिन पापी का पाप बढ़ने से ज्ञानी जन घबराते नहीं है। ज्ञानी जन सोचते हैं कि पाप की वृद्धि होने से ही ईश्वरीय शक्ति अर्थात् धर्म का बल प्रकाश मे आता है। अधर्म की वृद्धि से धर्मों में नया जीवन आता जाता है। पाप के बढ़ने से ज्ञानियों की महिमा बढ़ती है। ज्यो-ज्यो मणिरथ का पाप बढ़ने लगा त्यो-त्यों मदन-रेखा के जीवन की शुद्धि बढ़ने लगी।

अगर भारत दुःखी न होता तो गांधीजी की महिमा न बढ़ती। अतएव पाप की वृद्धि होने पर घबराना नहीं चाहिए। पाप के प्रतिकार का प्रकृति में एक बड़ा नियम है। इसी नियम के अनुसार मणिरथ पाप के मार्ग पर आगे बढ़ता गया और मदनरेखा पवित्रता की ओर अग्रसर होती गई।

युगबाहु विद्रोहियों को दबा कर लौट आया। मणिरथ ने ऊपर से खूब प्रसन्नता प्रकट की। मदनरेखा को भी अत्यन्त प्रसन्नता हुई। उसने सोचा—पति आगये, अब किसी प्रकार का भय नहीं रहा। लेकिन मदनरेखा ने मणिरथ के दुर्व्यवहार के विषय मे कुछ न कहा।

मदनरेखा की यह गम्भीरता प्रशंसनीय है। उसकी वीरता ऐसी है कि राजा को भी बुरी तरह फटकार सकती है और गम्भीरता इतनी है कि ऐसी बडी घटना के विषय मे भी वह अपने पति से एक शब्द नही कहती। कुलीन स्त्रियाँ, जहाँ तक संभव होता है, भाई-भाई मे विरोध उत्पन्न नहीं होने देती। यही नहीं, वरन् किसी अन्य कारण से उत्पन्न हुए विरोध को भी शान्त करने का प्रयत्न करती है। मदनरेखा प्रथम तो स्वय वीरांगना थी। उसे अपनी शक्ति पर भरोसा था। दूसरे उसने सोचा-पति के आजाने से दुष्ट राजा रास्ते पर स्वयं आ जाएगा, अतएव अब पारस्परिक कलह जगाने से क्या लाभ है? यही सोचकर उसने पिछली घटना के विषय मे युगबाहु से एक शब्द भी न कहा।

एक बार राजा मणिरथ वसन्तोत्सव मनाने के लिए वन में गया। युगबाहु भी वसन्तोत्सव के अर्थ वन को चला। मदनरेखा ने सोचा—पति अकेले वसन्तोत्सव मनाने जाँयगे तो उन्हे उत्सव फीका लगेगा। उनका साथ छोडना उचित नही है यह सोच कर वह युगबाहु के साथ हो ली। वन मे पहुँच कर युगबाहु ने वह रात्रि वन मे ही व्यतीत करने का निश्चय किया। उसने मदनरेखा से भी अपना निश्चय कह सुनाया। मदनरेखा बोली—'नाथ, मैं आपके आनंद मे विघ्न नहीं डालना चाहती। पर यह कह देना आवश्यक समझती हूँ कि वन मे अनेक आपत्तियो की आशंका रहती है, अतएव वन मे रात्रि के समय रहना उचित नहीं है।' युगबाहु ने कहा-अपने साथ रक्षक मौजूद है। मैं स्वयं कायर नहीं हूँ। फिर डर किस बात का है।'

बाग मे ही युगबाहु के डेरे-तम्बू लग गये। युगबाहु और मदनरेखा रात भर वही रहने के विचार से ठहरे। डेरे के आस-पास पहरा लग गया।

मदनरेखा सहित युगबाहु को बाग मे ठहरा देख मणिरथ ने विचार किया—आज अच्छा अवसर है। अगर मैंने आज युगबाहु का काम तमाम कर दिया तो मदनरेखा हाथ लग जायगी।'

इस प्रकार पाप-संकल्प कर के मणिरथ घोड़े पर सवार हो कर अकेला ही युगबाहु के डेरे पर आया। युगबाहु के पहरेदारों ने उसे अन्दर घुसने से रोक दिया।

राजा ने कहा—मैं राजा हूँ। युगबाहु मेरा छोटा भाई है। मुझे अन्दर जाने की मनाई कैसे हो सकती है?

पहरेदार—आप महाराजा है, यह ठीक है। आपकी आज्ञा सिर माथे पर। किन्तु युवराज युगबाहु सपत्नीक ठहरे हुए है, अतः आपका अन्दर जाना ठीक नहीं है। आखिर एक पहरेदार ने भीतर जाकर युगबाहु से आज्ञा ली और युगबाहु ने कहा—भाई भीतर आना चाहते है, तो आने दो।

मदनरेखा ने कहा—नाथ, सावधान रहिए। भाई की नजर भाई सरीखी न समझिए। वे इस समय अपकी जान के ग्राहक बनकर आरहे है।

यद्यपि मदनरेखा ने युगबाहु को सब बात भली भाँति सुझाई, पर उसने उपेक्षा के साथ कहा—यह तुम्हारा भ्रम है। जिस भाई ने अपने पुत्र को युवराज न बना कर मुझे युवराज बनाया, वह

मेरे प्राणो का ग्राहक क्यो होगा ? अगर उनके हृदय मे पाप होता तो मुझे युवराज क्यो बनाते ?

मदनरेखा एक ओर हट गई । मणिरथ डेरेमे आगये । युगबाहु ने मणिरथ का यथोचित अभिवादन करके पूछा—इस समय आपने पधारने का कष्ट क्यो किया है ? आज्ञा दीजिए क्या कर्त्तव्य है ?

मणिरथ—तू शत्रुओ को जीतकर आया है,पर तेरे शत्रु अब भी तेरा पीछा कर रहे हैं। इधर तू किला छोडकर उद्यान मे आकर रहा है। इसी चिन्ता के मारे मुझे नीद नही आई और मैं दौड़ा चला आया।

मणिरथ ने अपने आने के विषय मे जो सफाई पेश की, वह कुछ संगत नही थी। युगबाहु को उसकी बात से कुछ सन्देह उत्पन्न हो गया। युगबाहु ने तिरस्कारपूर्ण दृष्टि से देखते हुए कहा—आप मुझे इतना कायर समझते है ? क्या मैं डरपोक हूॅ ? यहाँ तो किला और सेना, सब समीप ही है। जहाँ मै युद्ध करने गया था वहाॅ से तो यह सब दूर थे। फिर भी न तो मुझे किसी प्रकार का भय ही हुआ, और न आपको ही मेरी चिन्ता सवार हुई। मुझे शत्रुओ से किसी प्रकार की हानि हो सकती है, यह आपकी भ्रमपूर्ण संभावना है। ऐसे अवसर पर आपका आना और विशेषत उस अवस्था मे जब मैं सपत्नीक हूँ, नितान्त ? अनुचित है। राजा स्वयं मर्यादा का भंग करेगा तो मर्यादा का पालन कौन कराएगा ?

मणिरथ के चेहरे पर मुर्दनी सी छागई। वह बोला—'अच्छा, जाता हूँ। मगर प्यास के मारे मेरा गला सूख रहा है, थोड़ा पानी तो पिला दे।'

सामने ही पानी रखा था। युगबाहु अपने भाई को पानी पिलाने से कैसे इन्कार होता ? एक सामान्य अतिथि को पानी पिलाने के लिए नाहीं नहीं की जाती तो मणिरथ बड़ा और राजा था। उसे पानी पिलाने से युगबाहु कैसे मुकरता ?

युगबाहु पानी पिलाने के लिए तैयार हुआ। उसने जैसे ही पानी की ओर हाथ बढाया तैसे ही मणिरथ ने उस पर जहर की बुझी हुई तलवार का वार कर दिया। युगबाहु जमीन पर लोट गया।

मणिरथ तत्काल घोड़े पर चढ़कर भागने को हुआ, हाथ मे खून से भरी तलवार देख पहरेदारो ने उसे रोक लिया। मणिरथ पहरेदारो से युद्ध करने लगा—आपस मे संग्राम छिड़ गया।

युगबाहु क्षत्रिय था। क्षत्रिय स्वभाव के अनुसार घायल अवस्था में भी उसे बड़ा क्रोध हुआ। क्रोध के मारे वह इधर-उधर लोटने लगा। इसी समय मदनरेखा आ गई। उसने पति को इस अवस्था मे देखा तो क्षण-भर के लिए वह किंकर्त्तव्य-विमूढ़ हो गई। इस समय मदनरेखा का क्या कर्त्तव्य है ? उसे क्या करना चाहिए ?

अरे ओ सज्जनो ! व्हाला ! पियो ने प्रेम ना प्याला।
धरी प्रभु नामनी माला, करो जीवन सफल आजे ॥

ऐसे प्रसंग पर रुदन करके जो अपना और मरने वाले का भविष्य बिगाड़े, उसके विषय मे आप कहेगे कि उसे मरने वाले से बडा प्रेम है। रोना-धोना ही आज प्रेम की कसौटी समझी जाती है। लेकिन यह कसौटी भ्रम है—धोखा है—ठगाई है। सच्चा प्रेम क्या है और 'सज्जनता' किसमे है, यह मदनरेखा के चरित से सीखना चाहिए।

मदनरेखा के जीवन मे इससे अधिक अनिष्ट क्षण दूसरा कौन-सा होगा ? दुष्ट मणिरथ ने उसके निरपराध पति का वध कर डाला. इससे अधिक विपदा मदनरेखा पर और क्या आ सकती है ? इतना ही नही, भविष्य का भय भी उसकी आंखो के आगे नाच रहा है। वह गर्भवती है। ऐसे विकट समय वह क्या करे ?

कायर के लिए यह बड़ा भयंकर समय है। मगर मदनरेखा वीर क्षत्राणी थी। कायरता उससे कोसो दूर थी। उसने उसी समय अपना कर्त्तव्य स्थिर कर लिया। सोचा-पतिदेव का जीवन अधिक से अधिक दो घड़ी का है। इन दो घड़ियो का मूल्य बहुत अधिक है। इतने समय मे ही मुझे ऐसा करना है, जिससे इनकी सह-धर्मिणी के नाते मै अपना कर्त्तव्य निभा सकूँ।

बाहर मणिरथ और पहरेदारो मे होने वाले युद्ध के कारण कोलाहल मच रहा था। मदनरेखा दौड कर बाहर आई और द्वार-रक्षको से बोली—तुम किससे युद्ध कर रहे हो ? तुम्हारे स्वामी केवल दो घड़ी के महमान हैं। इन दो ही घड़ियो मे मैं स्वामी को ऐसी कुछ चीज़ देना चाहती हूँ जो उनके काम आ सके। इसलिए तुम युद्ध बंद करो जिससे कोलाहल मिटे और

शान्ति हो। अगर तुम राजा को मार डालोगे तब भी कोई लाभ न होगा। स्वामी अब जीवित नहीं हो सकते। तुम अपने स्वामी के हितचिन्तक हो, पर मैं तुमसे भी अधिक उनका हित चाहती हूँ। राजा को भाग जाने दो। शान्त हो जाओ।

मदनरेखा की बात सुनते ही द्वार-रक्षक शान्तिपूर्वक खड़े हो गये। राजा मणिरथ उस समय सोचने लगा—'अब मदनरेखा मुझे चाहने लगी है। ऐसा न होता तो वह मेरी जान क्यों बचाती ? अपने पति को न रोकर मेरी रक्षा के लिए क्या दौड़ी आती ?'

'विनाशकाले विपरीतबुद्धिः।'

इस प्रकार अपने विचारों से प्रसन्न होता हुआ मणिरथ घोड़े पर सवार होकर वहाँ से भागा। लेकिन पाप का फल भोगे बिना छुटकारा कहाँ ?

राजा मणिरथ के घोड़े का पैर एक साँप की पूछ पर पड़ गया। पूछ कुचलते ही साँप उछला और उसने मणिरथ को डँस लिया। मणिरथ चल बसा और चौथे नरक का अतिथि बना !

इधर मदनरेखा ने देखा - स्वामी वेदना से तड़फ रहे हैं। उसने घाव पर पट्टी बाँधी और उसका सिर अपनी गोद मे रखा। उसने कहा—नाथ ! आपकी इहलोक-लीला दो घड़ी में समाप्त होने जा रही है। कृपा कर मेरी बात पर ध्यान दीजिए।

युगबाहु ने आँख खोल कर कहा—'मदनरेखा, मुझे तुम्हारी चिन्ता हो रही है। तुम्हारा क्या होगा ? भाई तुम्हारे साथ कैसा व्यवहार करेगा ?'

मदनरेखा ने सोचा—स्वामी का मोह और क्रोध यो दूर न होगा। उसने एक ऐसा मंत्र पढ़ा जिससे करोडो साँपो का भी विप दूर हो सकता था। करोडो साँपो का विप दूर होना उतना कठिन नहीं है, जितना क्रोध का शान्त होना कठिन है। उसने पति से कहा –

प्राणनाथ! अन्तिम समय मे आपका यह क्या हाल है? आप मुझ पर राग और भाई पर द्वेप धारण किये हुए है। यह विपरीत बात क्यो? यह खड्ग, जो आपके शरीर मे लगा है, आप के मणिरथ ने नही, वरन् मैंने ही मारा है। आप उन पर अनावश्यक क्रोध क्यों कर रहे है? भाई को तो आप प्रिय ही हैं यदि भाई आपसे प्रेम न करते तो अपने बेटे की उपेक्षा करके आपको युवराज क्यों बनाते? मेरी बात आपकी समझ मे न आती हो तो आप स्वयं विचार कीजिए। अगर आप मेरे पति न होते और अगर मैं आपकी पत्नी न होती, तो आपके भाई आप से रुष्ट क्यो होते? मै आपकी पत्नी हुई और आप मेरे पति हुए, इसी कारण उन्होने आपके ऊपर तलवार चलाई है। भाई के साथ आपका वैर करानेवाली मै ही हूँ आप मेरे स्वामी रहे, अत आपको यह अवस्था भोगनी पडी है। मेरे स्वामी बनने का फल इसी जन्म मे आपको यह भुगतना पडा। अगर अन्त समय भी आपका मन मुझ मे लगा रहा तो परलोक मे आपकी क्या अवस्था होगी? आप अगर नरक के मेहमान बनेंगे तो आपका और मेरा फिर सम्मिलन न हो सकेगा। जब यह स्पष्ट है कि आपकी इस दशा का कारण मैं हूँ तो फिर आप भाई पर रोप और मुझ पर राग क्यो करते हैं? आप परिणामो मे समता लाइए। ऐसा करने से ही आत्मा को शान्ति मिलेगी और अन्त मे शुभ गति का लाभ होगा।

मदनरेखा कहती है - 'इस समय आपके लिए सबसे श्रेष्ठ यही खर्ची है कि आप मुझ पर राग न कीजिए और अपने भाई पर द्वेष न कीजिए' ।

जब तलवार मारने वाले भाई पर ही द्वेष न रहेगा तो क्या किसी दूसरे पर वह रह सकेगा ?

'नहीं'!

तो फिर सब मिल कर बोलो:—

खामेमि सव्वे जीवा, सव्वे जीवा खमंतु मे ।
मित्ती मे सव्वभूएसु, वेरं मज्झं न केणइ ॥

मदनरेखा कहती है—नाथ ! यह शांति का समय है । आप सब जीवों से क्षमा की अभिलाषा कीजिए—क्षमायाचना कीजिए और सर्व प्रथम अपने भाई से ही क्षमा माँगिए ।
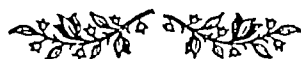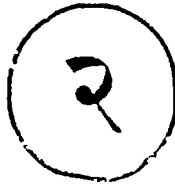
क्षमावीर गजसुकुमार
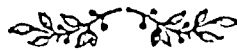
संसार-अवस्था के छहो भाई और इस समय एक ही गुरु के छहो शिष्य दो-दो के सघाडे से देवकी रानी के घर भिक्षा के लिए पधारे। यह छहो मुनिराज अपने गुरु से आज्ञा लेकर बेले-बेले से पारणा किया करते थे। दो दिन के उपवास के बाद करणा और फिर दो दिन उपवास करना,इसी क्रम से उन मुनियो की तपस्या चल रही थी। फिर भी वे स्वय गोचरी करने जाते थे। संसार-अवस्था मे बड़े कुलीन और धनवान् थे। प्रत्येक ३२-३२ करोड़ मोहरो के स्वामी थे। पर उन मोहरो को तृण की तरह तुच्छ समझ कर उन्होने त्याग दी। जो मनुष्य इतनी महान् ऋद्धि का त्याग कर सकता है, वह क्या कभी रोटी के टुकड़ों के लिए लालायित होगा ? कदापि नहीं।

द्वारिका नगरी बहुत लम्बी-चौड़ी थी। मुनि किसी के भी घर गोचरी करने जा सकते थे। पर गजसुकुमाल को घड़ने के लिए

एक अदृश्य शक्ति काम कर रही थी। उसी शक्ति की प्रेरणा से, छहो मुनि एक देवकी के घर दो दो के तीन संघाड़ो मे गये।

मुनियों का अभिग्रह भिन्न-भिन्न होता था। एक को दूसरे के अभिग्रह का पत्ता तक नही चलता था। वे दो-दो साथ होकर गोचरी के लिए जाते थे। एक युगल कहाँ-किस घर मे गोचरी के लिए गया सो दूसरे युगल को मालूम नही होता था। उस दिन संयोगवश तीनो युगल देवकी के घर गोचरी करने जा पहुँचे।

जो युगल सब से पीछे देवकी के यहाँ गया था, उसके दोनो मुनियो को देख कर देवकी ने उनसे कहा—'मुझे एक विचार आ रहा है। अगर आपकी स्वीकृति हो तो वह प्रकट करूं। मैं आशा करती हूं, आप मेरी बात का उत्तर अवश्य देंगे।'

मुनि बोले—'आप जो कहना चाहती हैं, निसंकोच होकर कहिए।'

देवकी—'इस द्वारिका नगरी मे लाखों आदमी धर्म की सेवा करने वाले और सन्तों की सेवा करने वाले मौजूद है। मेरा कृष्ण भी राज्य करता हुआ धर्म का प्रचार कर रहा है। ऐसा होने हुए भी मुझे आज यह विचार आ रहा है कि द्वारिकावासी इतने अनुदार और धर्मविमुख क्यो हो गये है? उनकी धर्मभावना और दानशीलता कहाँ चली गई है? अगर ऐसा न होता तो मुनियो को अपने नियम के विरुद्ध एक ही घर बार-बार भिक्षा के लिए क्यो आना पड़ता है? मैं अपना अत्यन्त अहोभाग्य मानती हूं कि मुनिराज मेरे यहाँ गोचरी के लिए पधारे, मगर नगर-निवासी जनों में क्या इतनी भी शक्ति शेष नहीं रही कि मुनियो को आहार-दान दे सकें?

मुनियो को देवकी की बात सुनते ही यह समझने में विलम्ब न लगा कि हमारे चार भाई पहले यहाँ गोचरी के लिए आ चुके है और इसी कारण देवकी के दिल मे यह बात पैदा हुई है। अतएव वे बोले—'महारानी के चित्त मे इतनी अधिक धार्मिक भक्ति विद्यमान है, वहा की प्रजा धर्म-विमुख कैसे हो सकती है ? जहां लौकिक धर्म मे भी किसी प्रकार की त्रुटि नही होने पाती, वहा आत्मिक धर्म मे कैसे कमी हो सकती है ? महारानी, नगरनिवासियो मे धर्मप्रेम की कमी नही हुई है और न हम वारम्वार आपके यहाँ आये है। पहले जो यहा आये होगे वह हमारे साथी दूसरे मुनि थे। हम दूसरे है। वे हम नही है और हम वे नही है।'

देवकी—मुनिराज ! आपका स्पष्टीकरण सुनकर मुझे संतोष है। आपका और उनका रूप-रग आदि सब समान है। यही देखकर मैंने समझा था कि वही-वही मुनिराज मेरे घर पुन पुन. आरहे है। मै इस के लिए क्षमा की याचना करती हूँ। आप सब महाभागी मुनियो का एक-सा रूप-यौवन देखकर मै चकित रह जाती हूँ ! वह कौन-सी पुण्यशालिनी और सौभाग्यभागिनी माता होगी जिसने आप सरीखे सुपुत्रो को जन्म दिया है ? आप छहो मुनि भाई-भाई जान पड़ते है। जब आप सब ने मुनि दीक्षा धारण की होगी तब उस माता के अन्तःकरण की क्या दशा हुई होगी ? आपके वियोग को उसने किस प्रकार सहन किया होगा ? मैंने आपको थोडी-सी देर देखा है, फिर भी मेरे हृदय में भक्तिभाव के अतिरिक्त वात्सल्य का भाव उमड़ रहा है। मै न जाने किस अनिर्वचनीय अनुभूति का आस्वादन कर रही हूँ ? तब आपकी जन्म देने वाली माता की क्या अवस्था होगी ? आपके माता-पिता ने किस हृदय से आपको दीक्षा धारण करने

की आज्ञा दी होगी । आपको संयम-पालन की आज्ञा देने वाले वे कैसे होगे ! उनका हृदय न जाने कैसा होगा । प्रथम तो इस अवस्था मे ही संयमी होना दुष्कर कार्य है, तिस पर इस दिव्य रूप–सम्पत्ति के होते हुए संयम अगीकार करना तो और भी कठिन है।

आपका रूप-रंग कृष्ण से जरूर मिलता है। कृष्ण के अतिरिक्त मुझे तो कोई और दिखाई नही देता, जिसके साथ आपके रूप की सदृशता हो सके । कृपा कर मुझे बतलाइए कि आपका जन्म कहॉ हुआ था? आपके माता-पिता का क्या नाम था ? और आपके घर की स्थिति क्या थी ? आपने किस तात्कालिक कारण से संयम स्वीकार किया है ?

साधारणतया कोई भी शिष्ट पुरुष आत्म-प्रशंसा नहीं करता। फिर मुनिराज अपनी प्रशंसा आप कैसे कर सकते है ? फिर भी जहाँ परिचय देना आवश्यक हो और उस परिचय मे ही प्रशंसा-सी ओतप्रोत हो तो क्या उपाय है ? अतएव मुनि बोले—महारानी, भद्दलपुर नामक नगर मे हमारा जन्म हुआ था। हमारे पिता का नाम गाथापति नाग था और माता का नाम सुलसा था। हम छहो मुनि उन्ही के अंगजात हैं। हमारा जन्म होने पर माता-पिता ने लोकोचित सभी संस्कार-व्यवहार किये। छहो भाइयो को बड़े–बड़े धनाढ्य सेठो ने अपनी-अपनी कन्याएँ प्रदान की ।

कुछ दिनों के अनन्तर भद्दलपुर में भगवान् अरिष्टनेमि पधारे। हमे भगवान् के प्रवचन को श्रवण करने का सौभाग्य मिला। उस प्रवचन के श्रवण से हमारा विवेक जागृत हुआ

और संसार से विरक्ति हो गई। तब से ऐसा मालूम होने लगा कि संसार जल के बुलबुले के समान क्षणभंगुर एवं निस्सार है। इस विरक्ति भावना से प्रेरित होकर हमने भगवान् अरिष्टनेमि के चरण-शरण मे जाकर दीक्षा ग्रहण कर ली है। हम शरीर मे रहते-रहते घबडा उठे है। चाहते है कि इस सुन्दर शरीर से सिद्ध होने वाले प्रयोजन को साध कर इसका भी त्याग कर दें। अतएव हम छहो ने बेले-बेले पारणा करने का निश्चय किया है। यो तो भगवान् के अनुग्रह से, स्थविर मुनि की सेवा मे रहकर हमने बारह अंगों का अध्ययन किया है और श्रुतकेवली हुए हैं, परन्तु पूर्वार्जित कर्मों का क्षय करने के लिए हमने इस विशेष तपस्या को अपनाया है।'

'हम छहो भाई बेले-बेले का पारणा कर रहे हैं। आज हमारे पारणे का दिन था, अतएव हमने दिन के प्रथम प्रहर मे स्वाध्याय किया, दूसरे प्रहर मे ध्यान किया और उसके पश्चात् भगवान् की आज्ञा लेकर छहो भाई तीन संघाडो मे विभक्त होकर, पृथक्-पृथक् भिक्षा के अर्थ नगरी मे निकले। यद्यपि चलते समय आपके यहाँ आने का कोई इरादा नहीं किया था, फिर भी फिरते-फिरते आपके भाग्य से यहाँ आ पहुँचे है। द्वारिका में मुनियो के लिए भिक्षा की कमी नही है और हम लोग दूसरी या तीसरी बार यहाँ नहीं आये है, दैवयोग से ही सब तुम्हारे यहाँ आ गये है।'

इतना कह कर मुनि वहाँ से चल दिये। देवकी विस्मित भाव से उन मुनियों की ओर देखती रही।

जब मुनि थोडी दूर चले गये तब देवकी सिंहासन पर बैठ कर सोचने लगी —

जिन्होंने मन, वचन, काय से मिथ्या-भाषण का परित्याग कर पूर्ण रूप से निरवद्य सत्य-भाषण का व्रत ग्रहण किया है उन अनगार महात्माओं के मुख से निकली हुई बात भी सत्य ही होगी। छल-कपट से अनभिज्ञ, सरल-हृदय बालक भी जो बात कहता है वह झूठी नहीं हो सकती।

ऐसा होते हुए भी मेरे मन मे एक सन्देह हो रहा है। जब मैं अपने पिता के घर थी तब मेरे चचेरे भाई, जो मुनि हो गये थे और जिनका नाम अतिमुक्तक था, एक बार गोचरी के लिए पधारे थे। उस समय मेरी भौजाई-कंस की पत्नी-ने अभिमान दिखलाते हुए कहा था कि—'तुम राजवंश मे उत्पन्न होकर भी भिक्षुक हुए हो। क्या भीख माँग कर खाना क्षत्रिय का धर्म है। तुम्हारा यह वेश देख-देख कर हमें लाज लगती है। इसे छोड़ो, राजोचित वस्त्राभूषण धारण करो।' भौजाई की यह बात सुनकर उत्तर देते हुए मुनिराज ने मेरे आठ अनुपम पुत्रों के होने की बात कही थी। वह बात कैसे मिथ्या ठहर रही है? मैं अपने आपको भाग्यशालिनी मानती थी, पर नहीं, भाग्यशालिनी माता वह है जिसने इन छह मुनियो को अपनी कोंख से जन्म दिया है। मै भला काहे की भाग्यशालिनी हूँ जिसने अपने पुत्रो को जन्म देकर भी उनका मुख तक न देख पाया। उस समय मुख देखती भी क्या। जानती थी दूसरे ही क्षण वे यमराज के अतिथि बनने जा रहे है। उस दशा मे भला मुख देख कर क्यो अपने हृदय को जलाती। हे परमात्मा। वह समय स्मरण आते ही रोम-रोम थर्रा उठता है।

इस प्रकार देवकी अपने अभाग्य पर देर तक विचार करती रही और मन ही मन सुलसा के सौभाग्य की सराहना करती

रही, जिसने साकार सौंदर्य के समान सुयोग्य पुत्रों को जन्म दिया !

विचार करते-करते उसे ध्यान आया कि इस समय भगवान् श्रीअरिष्टनेमि यही विराजमान है। वे सर्वज्ञ सर्वदर्शी भगवान् समस्त संदेहो का निवारण करने मे सर्वथा समर्थ है। मै सन्देह के जाल मे क्यो फँसी रहूँ, जब कि उसे निवारण करने का सुगम उपाय मौजूद है।

देवकी ने निश्चय कर लिया कि मै अपने संशय के विषय में भगवान् अरिष्टनेमि से अवश्य पूछूँगी। उसने विलम्ब नहीं लगाया और रथ मे बैठ कर भगवान् के समीप पहुँची। वहाँ पहुँचते ही उसने विधि के अनुसार भगवान् को वन्दन-नमस्कार किया।

भगवान् सर्वज्ञता के धनी थे। उन्होंने देवकी के संशय को पहले ही जान लिया था। अतएव उन्होंने देवकी से कहा–देवकी, आज तुम्हारे यहां छह मुनि तीन बार आहार लेने आये? उन्हें तुमने आहारदान दिया था? और तुम्हारे मन मे मुनि अतिमुक्तक के कथन के प्रति सदेह उत्पन्न हुआ था? तुमने अपने आपको भाग्यहीना और सुलसा को सौभाग्यशालिनी समझा था?"

भगवान् की बात सुन कर देवकी दंग रह गई। वह कहने लगी–'प्रभो! आपसे कौन-सा रहस्य छिपा है? आप सभी कुछ जानते है। आपने मेरे मन के विचारो को जान लिया है। मैं आपकी सेवा मे उपस्थित हुई हूँ, कृपया मेरा संशय निवारण कीजिए।'

भगवान् ने कहा—देवकी, तुम निश्चय समझो, यह पुत्र सुलसा के नहीं, तुम्हारे ही है। तुम और सुलसा एक ही साथ गर्भवती होती थीं। दोनो के गर्भ मे साथ ही साथ बालक भी बढ़ते थे। सुलसा को एक निमित्तवेत्ता ने बताया था कि तुम्हारे उदर से मृत बालको का जन्म होगा। निमित्तवेत्ता का वृत्तान्त सुनकर सुलसा को बहुत चिन्ता हुई। वह सोचने लगी, इससे संसार मे मेरा बडा अपयश होगा और मेरे पति सन्तानहीन रहेंगे। इससे मुझ पर उनका ऋण रह जायगा। मैं भी सन्तान के सुख से वंचित रहूँगी। इस चिन्ता का निवारण करने के लिए सुलसा ने हिरणगमेषी देव की तेला द्वारा आराधना की। सुलसा की तपस्या के प्रभाव से देव आया और सुलसा ने अपनी चिन्ता का कारण उसे सुनाया। सुलसा की बात सुनकर हिरणगमेषी देव ने कहा—'मृत पुत्रो को जीवित करना मेरी शक्ति से परे है। हाँ, मैं इतना करूँगा कि तुम्हे ऐसे पुत्र दूँगा जैसे त्रिलोक मे भी दुर्लभ है।'

भगवान् ने अपना कथन चालू रखते हुए कहा—'देवकी, तुम्हारे और सुलसा के गर्भ के बालक एक ही साथ उत्पन्न होते थे। पुत्र के प्रसव के समय तुम आँख मून्द लेती थी। उसी समय हिरणगमेषी देव सुलसा का मृत पुत्र लाकर तुम्हारे पास रख देता था और तुम्हारा जीवित पुत्र ले जाकर सुलसा को सौंप आता था। तुम उस मृत पुत्र को आँखें मून्दे ही मून्दे, कंस को सौपने के लिए राजा वसुदेव को दे देती थी और वसुदेव भी बिना बालक पर दृष्टि डाले कंस के हवाले कर देते थे। बालक को न तो तुम देखती थी, न वसुदेव देखते थे। अतएव तुम्हें यह पता नही चलता था कि बालक जीवित है या मृत हैं ?

कंस, उन मृत पुत्रो को देख कर अपने पुण्य के प्रकर्ष पर फूला नहीं समाता था। वह सोचता था—धन्य है मेरा पुण्य, जिसके प्रताप से मुझे मारने वाले स्वयं मरे हुए पैदा होते हैं। मै कितना तेजस्वी हूँ कि बिना हाथ उठाए ही ये बालक अपने आप काल के गाल मे समा जाते है।'

कंस के चापलूस सरदार कहा करते थे—'आप के भय के मारे देवकी पीपल के पत्ते की तरह कांपती रहती है। वह सदा भय-विह्वल रहती है और उसी भय के कारण बालक गर्भ मे मर जाते है।'

कंस बालको को मरा हुआ देखता था, फिर भी उसे संतोष नही होता था और वह उन बालको को भी पैर पकड़ कर पछाड़ डालता था।

देवकी, इस प्रकार तुम्हारे सब बालक सुलसा के यहाँ चले गये थे। वही यह बालक है। अतिमुक्तक मुनि की बात सत्य है, मिथ्या नहीं।'

भगवान् का कथन सुनकर देवकी के आनन्द का पार न रहा। भगवान् को उसने वन्दना की और वहाँ पहुँची जहाँ वे छह अनगार थे। यद्यपि ये मुनि वही थे जो देवकी के घर भिक्षा के लिये गये थे और जिन्हे देवकी ने अपने घर देखा था। देवकी भी वही थी। फिर भी उसकी तब की दृष्टि से अब की दृष्टि मे अन्तर था। उस समय सिर्फ भक्ति का भाव था और इस [illegible]त्सल्य की प्रबलता थी। ज्यो ही मुनियो पर उसकी [illegible] पडी, उसका रोम-रोम पुलकित हो उठा! आन्तरिक

प्रसन्नता के कारण उसका शरीर फूल गया, यहाँ तक कि उसकी चोली फट गई और उसके स्तनो से दूध की धारा वह निकली। देवकी की बाहे ऐसी फूली की चूडियाँ भी छोटी पड़ने लगी। देवकी उस समय वेभान थी। वह भूल गई थी कि मै साधुओ के सामने हूँ। पुत्रो के सुख से वञ्चित देवकी को अचानक पुत्र प्राप्त हो गये और वे भी असाधारण रूपसम्पत्ति से समृद्ध। इस करण वह लोकव्यवहार की भी परवाह न करती हुई एकटक दृष्टि से मुनियो की ओर देखती रही।

मित्रो! देवकी के व्यवहार पर विचार करो तो प्रतीत होता है कि संसार के समस्त सम्बन्ध, कल्पना के खेल हैं। देवकी पहले भी उन मुनियो की माता थी मगर उस समय उसे इस बात की कल्पना नहीं थी। भगवान् के कथन से उसे यह खयाल आया तो वह स्नेह से पगली हो उठी। वस्तुत. संसार मे अपना क्या है? कुछ भी नही। जिसे अपना मान लिया जाता है, वही अपना है और जिसे अपना न समझा, वह पराया है। जो कल तक पराया था वही आज अपना बन जाता है और जिसे अपना मान कर स्वीकार किया जाता है वह एक क्षण मे पराया बन जाता है। अतएव अपने-पराये की व्यवस्था केवल कल्पना है। तत्त्वज्ञ पुरुष इस कल्पना का रहस्य समझ कर वैराग्य धारण करते है।

देवकी बहुत समय तक मुनियो की ओर टकटकी लगा कर देखती रही। जब उसके स्नेह का नशा कुछ कम हुआ तो उसने सोचा—अब कहाँ तक मै इन्हे देखती रहूँगी। आज मेरा सौभाग्य फला-फूला है, कि ऐसे सुयोग्य, सुन्दर एवं संयम-शील

साधुओ की माता बनी हूँ ! मेरा भाग्य धन्य है, मैं कृतार्थ हुई। इन्हे भी धन्य है जो इस वय मे महान् एवं प्रशस्त कार्य मे लगे हुए है।

इस प्रकार विचार कर देवकी अपने घर लौटी। उसके मन मे कुछ विषाद, कुछ संतोष का विचित्र सम्मिश्रण हो रहा था। दोनो के द्वन्द्व के कारण देवकी का दिल उदास, खिन्न और अशान्त बना हुआ था।

घर आते ही देवकी चिन्ता मे डूब गई। भोजन के अभाव मे भूखा सहन करना सरल है पर जब भोजन सामने रक्खा हो उस समय भूख सह लेना कठिन है। वह सोचने लगी—मेरे सौभाग्य पर दुर्भाग्य की काली छाया पडी हुई है ! असाधारण पुत्र-रत्नो को जन्म देकर मेरा सौभाग्य कितना ऊँचा है ! पर हाय, उन्हे जन्म देना न-देने के ही समान हो गया ! सात पुत्रो का मैंने प्रसव किया, मगर एक के साथ भी मै मातृधर्म का निर्वाह न कर सकी।

मैंने शिशुओ के सरल और स्वच्छ स्मित से अपना मातृत्व सार्थक न कर पाया ! उनकी अस्फुट तोतली बातें सुनकर अपने श्रुतिपुटों मे अमृत न भर पाया। डगमगाती चाल देखकर नेत्रों को सार्थक न किया।

माता के हृदय मे एक प्रकार की अग्नि जलती रहती है, जो [illegible] से ही शान्त होती है, वह अग्नि आज भी मेरे [illegible] मे धधक रही है। मैने अपने बालको को अपने स्तनों का

पान भी नहीं कराया, जिससे कि उसमे मैं अपनी आत्मीयता स्थापित कर पाती ।

मैं हतभागिनी हूँ । मुझ-सी माता इस मही-मंडल पर दूसरी कौन होगी ? मेरे सात पुत्र जन्मे । उनमे से छह तो सुलसा के यहाँ चले गये और सातवे पुत्र कृष्ण को यशोदा के घर गोकुल मे भेज देना पड़ा । इस प्रकार मै अपनी सन्तान के साथ मातृ-धर्म का जरा भी पालन न कर सकी ।

देवकी की इस चिन्ता मे एक ओर मोह की चेष्टा दिखाई देती है और दूसरी ओर कर्त्तव्यपालन की चेष्टा । माता का पुत्र पर मोह होता अवश्य है, पर वह बालक की जो सेवा करती है वह मोह से प्रेरित होकर नही, किन्तु करुणा की प्रेरणा से । बालक पर करुणा करना वह अपना कर्त्तव्य समझती है। ज्ञाता-सूत्र मे मेघकुमार के अधिकार में यह बात स्पष्ट की गई है ।

देवकी की चिन्ता मे मोह की चेष्टा का अभाव है, यह तो कहा नही जा सकता, लेकिन उससे एक बात स्पष्ट लक्षित होती है । वह यह है कि देवकी सोचती है—या तो पुत्र उत्पन्न ही न करके ब्रह्मचर्य का पूर्ण पालन करना चाहिए था, और जब मैंने बालक उत्पन्न किये हैं—मोह का पाप किया है—तो उसका पालन-पोषण करके उन पर दया भी करनी चाहिए थी, जिससे वह मोहजन्य पाप कम हो । माता पुत्र की सेवा करके उसे जन्म देने के पाप को कम करती है। देवकी सोचती है—मैंने जन्म देने का पाप तो किया लेकिन उस पाप के प्रायश्चित्त के रूप में उनके पालन-पोषण की दया नहीं की; अतएव मेरा जन्म धिक्कार है ।

मै वसुदेव की प्रियतमा रानी और कृष्ण की आदरणीय माता होकर भी हतभागिनी हूँ—पुण्यहीना हूँ!

महापुरुषो की चिन्ता निष्फल नहीं जाती। देवकी की चिन्ता भी व्यर्थ न हुई। देवकी चिन्तामग्न बैठी ही थी कि इसी समय कृष्णजी महाराज उनके चरण-वन्दन के लिए आ उपस्थित हुए।

जब श्रीकृष्ण देवकी के समीप आये तो उन्होंने देवकी को उदास पाया। उसे उदास देखकर कृष्णजी कहने लगे-'माताजी, मै नित्य आता था तब तो तुम बड़े दुलार से भरी हुई दृष्टि से मुझे देखती थी, मेरे सिर पर हाथ फेरती थी और मुझे आशीर्वाद देती थी। मगर आज आपके मुख पर वह प्रफुल्लता नही है। वह शान्ति नही दिखाई देती। आप किस कारण से चिन्ता मे डूबी हुई हैं? आज आपने मेरी ओर आंख उठाकर भी नही देखा, जैसे मेरे आने की आपको खबर ही न पड़ी हो! कृपा कर मुझे समझाइए आपकी चिन्ता का कारण क्या है?'

कृष्णजी की स्नेह और आदर से भरी बात सुनकर देवकी के दिल मे जो दुःख भरा हुआ था वह उबल पड़ा। उसके हृदय मे तूफान-सा जाग उठा। वह रोने लगी।

श्रीकृष्ण—'माताजी, आज मै यह क्या देख रहा हूँ? आपके रोने का क्या कारण है? कृपा कर मुझे बतलाइए।'

देवकी—'वत्स, मै अपने छह पुत्रो को मरा समझती थी। ... बात नहीं। आज तुम्हारे वे छहो भाई यहाँ आये थे। ... नेमिनाथ के समीप दीक्षित होकर मुनि बन गये है।

भगवान् ने उनके विषय मे मुझे बताया कि वे मरे नहीं थे, वरन् सुलसा के यहाँ बड़े हुए हैं ।' देवकी ने भगवान् नेमिनाथ से सुना हुआ वृत्तान्त आद्योपान्त श्रीकृष्ण को कह सुनाया ।

'हे कन्हैया ! मै तुझे क्या बताऊँ ! तेरे सोलह वर्ष गोकुल मे बीते । जब मेरा मन नही मानता था, तब त्यौहार का मिष करके जाती थी और तुझे देख आती थी । यद्यपि तुम्हारे पिता अकसर रोका करते थे कि बार-बार जाने से पुत्र के प्रगट हो जाने की आशंका है, फिर भी मै उनसे आज्ञा ले ही लेती थी । तुझे देख देख कर मेरा हृदय तृप्त नही होता था । जब तेरे ऊपर नजर पडती तो मै अपने आपको धिक्कारने लगती थी कि मैंने तुझे जन्म तो दिया है पर तेरे प्रति अपना धर्म पालन नही किया । मातृ-कर्त्तव्य के पालन से मैं वंचित रही । इस प्रकार तुम्हारा पालन-पोषण तो गोकुल मे हुआ और वे छह पुत्र सुलसा के घर बड़े हुए । यही सोच कर मेरा दु ख उमड पड़ा है कि संसार में मुझ-सी दुःखिनी माता दूसरी कौन होगी ? मेरे दुर्भाग्य की बराबरी कोई नहीं कर सकता और दैव किसी को ऐसा दु ख न देवे ! ओह ! सात पुत्रो मे से किसी को भी खिलाने, खेलाने नहलाने धुलाने का अवसर मुझे न प्राप्त हो सका । आज यह चिन्ता विशेप रूप से उमड पड़ी है, इसी कारण मेरा मन स्वस्थ नही है ।'

कृष्णजी ने कहा—'माताजी, आप इसके लिए चिन्ता क्यो कर रही है ? यह तो वडी प्रसन्नता की वात है कि मेरे छह भाई कस के शिकार न बने और वे सकुशल जीवित है। उन्हे तुम देख आई हो। वे भगवान् नेमिनाथ के चरणकमलो के भ्रमर हैं। यद्यपि इस परिस्थिति मे, माता के भावुक और कोमल हृदय

को कष्ट पहुँचाना अस्वाभाविक नहीं है, पर लीजिए मै आपकी आकांक्षा पूरी करता हूँ। मै छोटा-सा बालक बनता हूँ, आप अपनी आकांक्षाएँ पूर्ण कर लीजिए।'

यह कह कर कृष्णजी बालक बन गये। देवकी को मानों मनमानी मुराद मिल गई। बड़ी प्रसन्नता के साथ उसने कृष्ण को नहलाया, धुलाया, खिलाया-पिलाया और कपड़े पहनाये।

अन्त मे कृष्ण ने सोचा— माता का हृदय बच्चे से कभी तृप्त नहीं हो सकता। माता के हृदय मे बहने वाला वात्सल्य का अखंड झरना कभी सूख नहीं सकता। वह सदैव प्रवाहित होता रहता है। अग्नि जैसे ईन्धन से कदापि तृप्त नहीं होती वरन् ईन्धन पाकर वह अधिकाधिक प्रज्वलित होती है उसी प्रकार माता का प्रेम, सन्तान से कभी तृप्त नहीं होता। वह सन्तान पाकर निरन्तर बढ़ता ही चला जाता है। माता का प्रेम सदा अतृप्त रहने के लिए है। और उसकी अतृप्ति से ही शायद जगत् की स्थिति है। जिस दिन मातृ-हृदय सन्तान-प्रेम से तृप्त हो जायगा,जगत् मे प्रलय हो जायगा। मेरा कोई भी प्रयत्न उसे तृप्त नहीं कर सकता। इसके अतिरिक्त मेरे माथे पर इतनी अधिक जिम्मेदारियाँ हैं कि मैं अगर बहुत दिनो तक बालक ही बना रहूँ तो काम नहीं चलने का।'

इस प्रकार सोच-विचार कर कृष्ण ने देवकी से कहा— [illegible]ा, दूद (दूध) ला। मैं दूद पिऊँगा।'

[illegible]वकी के घर दूध की कमी नहीं थी। वह मुस्कराती हुई और दूध ले आई।

तब कृष्ण बोले—'दूद मे मीथा (मीठा) नहीं है । यह तो फीका है। इसमें थोरा-सा मीथा और मिला।'

देवकी ने दूध में थोड़ी-सी शक्कर और डाल कर कृष्ण को दिया। कृष्ण ने उसे ओठो से लगाया और नाक-भौं सिकोड कर बोले—'छिः छिः, इसमे तो भौत मीथा हो गया। थोरा-सा मीथा इसमें से निकाल ले।'

देवकी ने कृष्ण को बहुत समझाया-बुझाया कि भैया, अब इस दूध मे से मीठा नहीं निकल सकता। मैं दूसरा दूध ला देती हूँ। मगर कृष्ण कब मानने वाले थे? उनकी नस-नस मे नट-खटपन भरा था। वे मचल पडे-न दूसरा दूध पीएँगे, न इतना अधिक मीठा पडा दूध पीएँगे, पर दूध पीए बिना न मानेंगे। उनके हठ के सामने देवकी हैरान थी। कृष्ण ने देवकी को थोडी देर मे इतना परेशान कर दिया कि वह कहने लगी—मैं भर पाई, बस माफ करो।

कृष्ण ने फिर अपना असली रूप धारण कर लिया। देवकी ने पूछा तुम अब तक कहाँ थे? और वह बालक कृष्ण कहाँ गया?

कृष्ण ने कहा—वही मै हूँ और मैं ही वह था। और मै यहीं मौजूद हूँ। मैं कहीं नहीं गया।

देवकी—तो तुम्हें यह भी नहीं मालूम कि दूध मे से फिर शक्कर नहीं निकल सकती?

कृष्ण—आप यह जानती हैं। बेचारा अबोध बालक इसे क्या समझे? माताजी, जिस प्रकार दूध मे पडी शक्कर निकल

नहीं सकती, और उसे निकालने का प्रयत्न करना निरर्थक है इसी प्रकार जो बात बीत चुकी है, उसके लिए दु:ख मनाना भी निरर्थक है।

देवकी—बेटा कृष्ण, बात तो सही है। पर दिमाग के लिये ही यह सही है, वही इसे मानता है। हृदय मानने को तैयार नहीं होता। हृदय तो यही चाहता है कि मुझे एक और पुत्र की प्राप्ति हो, जिससे मैं अपने मातृत्व को चरितार्थ कर सकूं। ऐसा हुए बिना वह अतृप्त रहेगा—अस्वस्थ रहेगा। उसे मनाना मैं अपनी सामर्थ्य के बाहर पाती हूँ। न जाने निसर्ग ने किन उपादानो से जननी के अन्त:करण का निर्माण किया है!

कृष्ण—माताजी, आपकी यह अभिलाषा पूरी होगी। मेरा छोटा भाई अवश्य जन्म लेगा। 'मैं प्रतिज्ञा करता हूँ कि यदि मेरे छोटा भाई न हो तो मेरी तपस्या निष्फल है।

कृष्ण की प्रतिज्ञा सुनकर देवकी को पूरा भरोसा हो गया। उसकी चिन्ता दूर हो गई। उसे पूर्ण विश्वास था कि कृष्ण की प्रतिज्ञा कभी अधूरी नहीं रह सकती। उसकी सामर्थ्य मे शंका नही की जा सकती। उसने प्रतिज्ञा की है तो अवश्य ही मेरा मनोरथ पूर्ण होगा।

कृष्णजी प्रतिज्ञा करके देवकी के पास से चले गये। वे लगे—'अब मुझे क्या करना चाहिये, जिससे मेरा छोटा जन्मे और मेरी प्रतिज्ञा की पूर्ति हो। इस दुष्कर कार्य की के लिए दैवी सहायता की आवश्यकता है और देव तपस्या से सन्न हो सकते हैं। इस प्रकार विचार कर कृष्ण ने ब्रह्मचर्य का

पालन करते हुए हिरणगमेषी देव का स्मरण करना और तेला की तपस्या करना निश्चय किया।

कृष्णजी पौषधशाला मे गये। अपने हाथ से पौषधशाला प्रमार्जन करके, घास का संस्तारक बिछाकर तेले की तपस्या अंगीकार करके बैठ गये।

कृष्णजी ने देव की आराधना की। देव आया। कृष्णजी ने उससे अपना प्रयोजन कहा। देव ने कहा—'आपके छोटा भाई अवश्य होगा, परन्तु वह युवावस्था मे पैर धरते ही मुनि दीक्षा अंगीकार करके कल्याण-मार्ग का साधन करेगा।'

देव की बात सुन कर कृष्ण बहुत प्रसन्न हुए। वे मन ही मन सोचने लगे—'मनुष्य-जन्म की सार्थकता स्व-पर कल्याण मे है। स्व-पर का कल्याण निरपेक्ष साधु अवस्था धारण करने से ही होता है। विलासमय जीवन व्यतीत करके, विलास की गोद मे ही मरना उस कीट के समान है, जो अशुचि मे ही उत्पन्न होकर अन्त मे अशुचि मे ही मरता है। विलासितापूर्ण जीवन आत्मा के लिए अहितकर तो है ही, साथ मे ससार के समक्ष अवाञ्छनीय आदर्श उपस्थित कर जाने से संसार के लिए भी अहितकर है। मेरे लिए बडी प्रसन्नता की बात है कि मेरा लघु-भ्राता सयमी बन कर जगत् मे एक स्पृहणीय आदर्श उपस्थित कर जायगा और अपना भी कल्याण करेगा। वह अपने आपको प्रकाशित करेगा और संसार मे भी प्रकाश की किरणें बिखेर जायगा।

कृष्णजी घर लौट आये और माता देवकी से कहने लगे—

माताजी, आप विषाद न कीजिए। मेरा छोटा भाई जन्म लेगा और वह संसार को मोहित करने वाला होगा।

एक रात को देवकी ने स्वप्न मे सिंह देखा। सिंह देखकर उसने गर्भ धारण किया और यथासमय पुत्र का प्रसव किया। नवजात पुत्र अत्यन्त सुकुमार था—ऐसा सुकुमार जैसे गज का तालु हो या जैसे इन्द्रगोप (वीरबधूटी नामक कीडा) सुर्ख, कोमल और सुन्दर होता है, उसी प्रकार वह पुत्र भी अनुपम सुन्दर, सुकुमार और सुर्ख रंग का था। जो यादव वंश उस समय संसार मे अद्वितीय था, जिसकी ऋद्धि अपार थी, उस वंश मे उत्पन्न होने वाले महाभाग्यशाली पुत्र का जन्मोत्सव किस धूम-धाम से मनाया गया होगा? जन्मोत्सव खूब खुले दिल से मनाया गया, मानो पहले के समस्त पुत्रो के जन्मोत्सव की कसर इसी समय पूरी की जा रही हो। वास्तव मे गजसुकुमार का जन्मोत्सव जिस आनन्द और उल्लास के साथ मनाया गया, वैसा उत्सव यादव वश मे किसी भी कुमार का नही मनाया गया। जन्मोत्सव का वर्णन करने के लिए समय नही है, अतएव संक्षेप मे इतना ही कहना पर्याप्त है कि गजसुकुमार का जन्मोत्सव संसार के उत्सवो मे एक महत्त्वपूर्ण वस्तु थी।

नवजात शिशु का जन्मोत्सव मनाये जाने के पश्चात् उसका नामकरण किया गया। शिशु गज के तालु के समान सुकुमार था, अत उसका नाम 'गजसुकुमार' रक्खा गया। गजसुकुमार ...बलदेव आदि के अन्तःपुर का तथा सांब, प्रद्युम्न आदि ...त यादवो की आँखो का तारा बन गया। बालक अपनी ...भाविक हँसी से तथा अन्य-बाल चेष्टाओ से देवकी को अपूर्व आनन्द पहुँचाने लगा और यादवकुल मे चहलपहल

मचाने लगा। गजसुकुमार मानो प्रसन्नता की मूर्ति था, जो औरों को भी प्रसन्नता प्रदान करता था। इस आनन्दोल्लास मे गजसुकुमार का शैशवकाल समाप्त हुआ। शैशव की समाप्ति हो जाने पर उसे समस्त कलाओं का शिक्षण दिया गया।

तदनन्तर जब वे कुमारावस्था से युवावस्था मे प्रवेश करने लगे तब उनके विवाह की तैयारी होने लगी।

इधर विवाह की तैयारी होने लगी उधर द्वारिका नगरी के बाहर भगवान् अरिष्टनेमि का पदार्पण हुआ मानो वे भी गजसुकुमार के लिए एक अलौकिक कन्या लाये हो। कृष्ण, वसुदेव आदि यादव गजसुकुमार का ऐसा विवाह करना चाहते थे जैसा अब तक किसी भी यादव-कुमार का न हुआ हो। किन्तु गजसुकुमार का यह विवाह नहीं होना था। उनका विवाह तो उस अलौकिक कन्या के साथ होना था जिसे स्वयं भगवान् अरिष्टनेमि लेकर पधारे हैं। जैसे अच्छे वर की बरात सभी अपने-अपने यहाँ बुलाना चाहते हैं, उसी प्रकार गजसुकुमार की बरात बुलाने के लिए भगवान् नेमिनाथ भी एक कन्या लाये हैं—ऐसी ही कुछ उपमा यहाँ बनती दिखाई देती है।

द्वारिका नगरी के बाहर भगवान् का समवसरण है। उसमें भगवान् शान्त-दान्त भाव से विराजमान हैं। आस-पास के वातावरण में पवित्रता है। सर्वत्र सात्विकता का साम्राज्य है। सौम्य वायुमण्डल मे एक प्रकार का आह्लाद है—उत्साह है, फिर भी गम्भीर है। अनेक भव्य जन आते है और भगवान् के मुख-चन्द्र से झरने वाले अमृत का पान करके कृतार्थ होते हैं।

भगवान् अरिष्टनेमि के पधारने का वृत्तान्त जब श्रीकृष्णजी को मालूम हुआ तो उनकी प्रसन्नता का पारावार न रहा। भगवान् अरिष्टनेमि का आदर करने तथा उन्हे वन्दना करने के लिए, भक्ति के आवेश मे वे भगवान् के सन्मुख जाने को तैयार हुए। कृष्णजी जाने की तैयारी मे ही थे कि गजसुकुमार भी अचानक वहाँ पहुँचे। गजसुकुमार ने कृष्णजी को तैयार होते देखकर पूछा—'भैया, आज कहाँ जाने की तैयारी है? यह बाजे क्यो बज रहे है? सेना किस लिए सजाई जा रही है?'

हिरणगमेषी देव ने कृष्णजी को पहले ही बता दिया था कि गजसुकुमार युवा अवस्था मे पैर धरते ही मुनि हो जाएँगे। फिर भी उन्होने भगवान् के आगमन का वृत्तान्त गजसुकुमार से गुप्त रखना उचित न समझा। उन्होने यह नही सोचा कि कहीं भगवान् के दर्शन करके यह मुनि न बन जाय, इसलिए इसे भगवान् का आगमन का हाल बताना ठीक नही है। श्रीकृष्ण साधुत्व को उत्कृष्ट समझते थे। गीता से भी इसका समर्थन होता है। फिर तो जो जिस दृष्टि से किसी ग्रंथ को देखता है-उसे उसमे वही दिखाई देने लगता है।

गजसुकुमार की बात का उत्तर न देते हुए कृष्ण ने कहा—भाई, नगरी के बाहर भगवान् अरिष्टनेमि का पदार्पण हुआ है; ी की वन्दना और सेवा के लिए जाने की तैयारी है। आज रिका का सौभाग्य जागा है तो उसका स्वागत करना ही चाहिए।

गजसुकुमार—'मैं समझता था आप ही संसार मे सर्वश्रेष्ठ हैं। आप ही सब से बड़े हैं, लेकिन आप भी उन्हे वन्दना करते है। अगर वे भगवान् इतने महान् हैं तो मैं भी उन्हें वन्दना करने चलूँगा। आप आज्ञा दे तो मैं भी तैयार हो लूँ।

श्रीकृष्ण ने कहा—अच्छी बात है, तुम भी चलो।'

श्रीकृष्णजी और गजसुकुमारजी एक ही हाथी पर सवार हुए। दोनो पर चमर ढोरे जाने लगे और छत्र तान दिया गया। इस प्रकार राजोचित वैभव के साथ, श्रीकृष्णजी भगवान् के दर्शनार्थ नगरी के बीचों बीच होकर रवाना हुए।

कृष्णजी गजसुकुमार की युवावस्था का विचार करके उसके विवाह सम्बन्धी मंसूबे बाँध रहे थे। नगर के मध्य भाग में उनका हाथी अपनी गंभीर गति से चला जा रहा था। इसी समय सोमल नामक ब्राह्मण की, जिसकी पत्नी का नाम सोमश्री था, कन्या सोमा राजमार्ग पर क्रीडागण मे गेंद खेल रही थी। सोमा क्या रूप मे, क्या गुण में और क्या उम्र मे-इतनी उपयुक्त और उत्कृष्ट कन्या थी कि कृष्णजी की नजर उस पर ठहर गई।

जिस पर कृष्णजी की नजर ठहर जाय, उसकी सुन्दरता कितनी अधिक होगी ? बड़ा हीरा वह है जिसे जौहरी बड़ा कहे। कोहनूर हीरे के नाम का अर्थ है—प्रकाश का पहाड़। यह नाम कोहनूर ने अपने-आप नहीं रख लिया है, किन्तु परीक्षकों ने उसकी परीक्षा करके, गुण की उत्कृष्टता के कारण उसे यह नाम दिया है। श्रीकृष्णजी इस कन्या के सुयोग्य परीक्षक

थे। उन्होंने उसे सुयोग्य समझा और सोचा—यह गजसुकुमार की सहधर्मिणी बनने योग्य है—सभी प्रकार से यह सम्बन्ध उपयुक्त होगा।

कृष्णजी ने अपने एक आदमी को बुलाया और सोमा की ओर संकेत करके कहा—'देखो यह कन्या किसकी है? जिसकी कन्या हो उससे गजसुकुमार के लिए मेरी ओर से इसकी याचना करो। यदि इसके माता पिता मेरी याचना स्वीकार करें और कन्या दें, तो इसे ले जाकर मेरे कुंवारे अन्तःपुर में पहुँचा देना।'

कृष्णजी का भेजा हुआ प्रतिनिधि सोमल के पास पहुँचा। उसने कृष्णजी की याचना सोमल के सन्मुख रख दी। सोमल बहुत प्रसन्न हुआ। भला रत्न के कटोरे में कौन भीख न देना चाहेगा? गजसुकुमार जैसा वर और श्रीकृष्ण जैसा याचक मिले तो कौन अभागा ऐसा होगा जो अपनी कन्या देना स्वीकार न करे! सोमल ने प्रसन्नता के साथ अपनी कन्या दे दी। वह कृष्ण के आदेशानुसार कृष्ण के कुँवारे अन्तःपुर में भेज दी गई।

इस ओर महाराज श्रीकृष्ण गजसुकुमार के साथ भगवान् अरिष्टनेमि के पास आये। जब भगवान् का समवसरण सन्निकट आया तो वे हाथी से नीचे उतर पड़े और गजसुकुमार को आगे करके भगवान् की सेवा में उपस्थित हुए। यथाविधि ... करके श्रीकृष्णजी नीचे आसन पर बैठे। भगवान् के ...-कमल से दिव्य वाणी प्रकट हुई। उसे श्रवण करके श्रीकृष्ण ... जीवन धन्य और कृतार्थ मानने लगे। उनके आनन्द का ... न रहा।

भगवान् का दिव्योपदेश जब समाप्त हो गया और सब श्रोता भगवान् को विनयपूर्वक वन्दना करके चल दिये, तब भी गजसुकुमार वहा बैठे रहे। कृष्णाजी भी उठे और अन्यत्र चले गये। उन्होने भी गजसुकुमार से चलने को न कहा।

महापुरुष के पास किसी को ले जाना तो उचित है पर ले जाने के बाद उसकी इच्छा के विरुद्ध उठा कर ले आना उचित नहीं समझा जाता। इसी नियम का खयाल करके श्रीकृष्णजी ने गजसुकुमार से उठ चलने के लिए नही कहा।

उस समय गजसुकुमार किसी दूसरी दुनिया में चक्कर लगा रहे थे। वे सोच रहे थे–'भैया श्रीकृष्णजी मेरा विवाह करना चाहते हैं लेकिन भगवान् नेमिनाथ ने अपना विवाह क्यो नहीं कराया? जिस परम प्रयोजन की सिद्धि के लिए भगवान् ने विवाह करना अस्वीकार कर दिया, उसी के लिए मुझे भी विवाह का त्याग क्यो नहीं कर देना चाहिए? भगवान् समुद्र-विजयजी के पुत्र हैं और मैं वासुदेव का पुत्र हूँ। दोनो एक ही कुल मे उत्पन्न हुए है। विवाह मे कोई तथ्य होता, तो भगवान् क्यो न करते? भगवान् का उपदेश उचित ही है कि यह शरीर विवाह करके भोगोपभोग भोगने के लिए नहीं है किन्तु ऐसा कल्याण करने के लिए है जिसमे अकल्याण का अंश मात्र भी न हो और जिसके पश्चात् अकल्याण की भावना तक न हो।

इस प्रकार मन ही मन सोच कर गजसुकुमार भगवान् के समक्ष खडे होकर कहने लगे—'भगवान्! मैं माता-पिता से

आज्ञा लेकर आपसे दीक्षा ग्रहण करूँगा—आपके चरण-शरण मे आऊँगा ।'

भगवान् पूर्ण वीतराग थे। उनके अन्तर मे किसी प्रकार की स्पृहा शेष नही रही थी। अतएव शिष्य के रूप मे राजकुमार को पा लेने की उन्हे लेशमात्र भी उत्सुकता न थी। उन्होने उसी गंभीर गिरा से कहा—'देवानुप्रिय ! जिस प्रकार तुम्हे सुख हो, वही करो ।'

संसार मे कई ऐसे होते है जो दीक्षा लेने वाले को घसीट कर, बलात्कार से या प्रलोभनो से संसार मे ही रखते है, तब कोई ऐसे व्यक्ति भी होते है जो ससार से विमुख करके उत्कृष्ट अवस्था मे पहुँचा देते है।

गजसुकुमार भगवान् के पास से विदा होकर देवकी के पास आये। महारानी देवकी ने गजसुकुमार को प्रेमपूर्वक पुचकारते हुए कहा—'बेटा ! आज अब तक कहाँ रहे ?'

गजसुकुमार—'माताजी, मै भगवान् नेमिनाथ के दर्शन करने गया था ।'

देवकी—'अच्छा किया जो भगवान् के दर्शन किये। आज तेरे नेत्र सार्थक हो गये ।'

गज०—भगवान् का उपदेश सुनकर मुझे बड़ी प्रसन्नता हुई ... पर उपदेश का खूब प्रभाव हुआ है। भगवान् से मुझे प्रेम हो गया है। मैंने भगवान् को प्रणाम क्या किया, ...नो अपना सर्वस्व उनके चरणो पर निछावर कर दिया है ।'

देवकी—'वत्स ! तू भगवान् का भक्त निकला, अतएव मेरा तुझे जन्म देना, नहलाना-धुलाना और पालन करना सब सार्थक हुआ ।'

महारानी देवकी के इस उत्तर से गजसुकुमार समझ गये कि माता ने अब तक मेरा अभिप्राय नहीं समझा । तब स्पष्ट कहने के उद्देश्य से गजसुकुमार बोले—'माताजी, मेरी इच्छा है कि अगर आप आज्ञा दें तो मैं भगवान् से मुनि-दीक्षा ग्रहण कर संसार का त्याग कर आत्मा का शाश्वत श्रेय साधन करूँ ।

देवकी, गजसुकुमार का कथन सुन कर गंभीर विचार में डूब गई । उन्होंने सोचा—'गजसुकुमार ने भगवान् से दीक्षा लेने का निश्चय कर लिया है तो निश्चय का बदलना सरल नहीं है । अब यह दीक्षा रुक न सकेगी ।' इस प्रकार विचार करने और पुत्र-वियोग की कल्पना से देवकी को मूर्च्छा आ गई । तदनन्तर जब देवकी होश में आई तो कहने लगी—'वत्स ! तू मेरा इकलौता पुत्र है । यों तो मैंने तुझ सहित आठ पुत्रों को जन्म दिया है, परन्तु तुझ अकेले को ही पुत्र रूप में लालन-पालन करने का अवसर मुझे मिल सका है । इस दृष्टि से तू ही मेरा एकमात्र पुत्र है । तू ही मेरा प्राणाधार है । मेरे जीवन का तू ही सहारा है । मैं यह कैसे सहन कर सकती हूँ कि तू चढ़ती जवानी में साधु बन कर संसार के सुखों से सर्वथा विमुख हो जाय ? बेटा ! जब हम यह पर्याय त्याग कर परलोक की ओर प्रयाण करें तब तू भले ही दीक्षा अंगीकार कर लेना । तब तक तू भुक्तभोगी भी हो जायगा । मैं इस समय दीक्षित होने की आज्ञा नहीं दे सकती ।'

गजसुकुमार—'माता ! आपका कथन सत्य है । आपके असाधारण एव लोकोत्तर वात्सल्य का पात्र होने का सौभाग्य मुझे प्राप्त है मगर मेरी एक बात सुन लीजिए। आप वीर-माता हैं। आप कायरो की माता नही हैं। मै पूछता हूँ—हमारे राज्य पर कोई शत्रु आक्रमण कर दे और प्रजा को लूटकर उसकी सुख-शान्ति का संहार करने लगे तो उस समय आपका कर्त्तव्य क्या होगा ? उस समय मैं आपकी सम्मति लेने आऊँ तो आप क्या सम्मति देंगी ? क्या आप यह कहेगी कि, ना बेटा, शत्रु के सामने मत जाना। आप यह आदेश दे सकेंगी कि—तू मुझे अत्यन्त इष्ट, प्रिय, कांत है। तू बाहर मत निकलना। राज्य उजड़ता है तो उजडे, तू घर ही मे छिपा रह ! मै जानता हूँ आप ऐसा कदापि नही कह सकतीं। उस समय आपका आदेश यही होगा कि—जाओ बेटा ! शत्रु का संहार करो, वीरतापूर्वक राज्य की रक्षा करो। तुमने मेरे स्तनो का दूध पिया है, उस दूध को लजाना मत। आप यही कहेगी या चढ़ती जवानी देखकर मुझे अपने अन्तःपुर मे छिपा रक्खेगी ? आपका धर्म उस समय क्या होगा ?'

देवकी—'वत्स ! तुमने जो प्रश्न किया है उसके उत्तर मे तो यही कहना होगा कि अगर ऐसा अवसर उपस्थित हो जाय तो मैं तुम्हे कर्त्तव्य के पालन के लिए, देश का संकट टालने के लिए, शूरवीर योद्धा की भाँति शत्रु के सन्मुख जाने की और डटकर करने की ही आज्ञा दूँगी। ऐसे अवसर पर वीर-प्रसविनी [illegible]ता कभी कायरता का उपदेश नहीं दे सकती और न अपने [illegible]लक को कायर होने दे सकती है। पर यहाँ कौन-सा शत्रु आ गया है, जिससे युद्ध करने की समस्या उठे ?'

गजसुकुमार—वीर माता का यही धर्म है। मैं आपसे इसी उत्तर की आशा रखता था। माताजी, मेरे सन्मुख शत्रु उपस्थित है वह मुझे पकड़ने और परास्त करने के लिए सतत प्रयत्न कर रहा है। वह चर्म-चक्षु से दिखाई नहीं देता, परन्तु भगवान् अरिष्टनेमि के वचनों से उसका प्रत्यक्ष हुआ है। अनन्त जन्म-मरण के चक्कर में डालने वाला वह काल-शत्रु है। वह मुझे पकड़ने के लिए मृत्यु रूपी पाश लेकर घूम रहा है।

मित्रो ! क्या आपसे बड़े, आपकी सदृश वय वाले और आपसे छोटी उम्र के लोगों का प्रतिदिन मरण नहीं हो रहा है ?

'अवश्य–हमेशा मरण होता रहता है।'

गजसुकुमार कहते हैं—'माताजी, उसके आने का कुछ भरोसा नहीं है। न जाने कब वह आ धमकेगा और जीवन को निश्शेष कर जायगा। अगर मैं इसी भाँति प्रमत्त दशा में रहूँगा तो वह किसी भी क्षण आकर मुझे ले जायगा। अतएव मैं ऐसा उपाय करना चाहता हूँ कि उस शत्रु से खुल कर युद्ध कर सकूँ और अन्त में मेरी विजय हो। माता, अब तू ही बता, मुझे क्या करना चाहिए ? तेरा निर्णय ही मेरा संकल्प होगा। तेरी आज्ञा के बिना मैं एक डग भी इधर-उधर न धरूँगा।'

देवकी वीर माता थी। क्षणिक मोह के पश्चात् उसका विवेक जागृत हो गया। उसने कहा—'वत्स ! तू धन्य है। तूने यदि दृढ संकल्प कर लिया है तो उसमें बाधा डालना उचित नहीं है। लेकिन मैं यह आशय चाहती हूँ कि कम से कम एक दिन के लिए भी तुझे राजा के रूप में देख लेती। बेटा, माता की ममता को माता ही समझ सकती है।'

देवकी की बात सुनकर गजसुकुमार ने हाँ तो नहीं भरी, पर मौन रह गये। उसके मौन को अर्ध-स्वीकृति का लक्षण समझ कर श्रीकृष्णजी ने गजसुकुमार को द्वारिका का राजा बना दिया।

एक दिन के लिए ही सही, पर राजा बना देने के अनेक कारण थे। प्रथम तो यह कि, कोई यह न सोचे कि गजसुकुमार को राजा बनने की हवस थी, वह पूरी न हो सकी, तो साधु बन गये। दूसरा कारण यह कि इससे उनके वैराग्य की परीक्षा हो गई। कच्चा वैराग्य होता तो राज्य पाते ही कपूर की भाँति उड़ जाता। तीसरा कारण यह है कि ऐसा करने से श्रीकृष्ण का बन्धु-वात्सल्य प्रकट हो गया। उनके लिए भाई बड़ा है, राज्य नहीं। इस प्रकार अनेक कारणो से गजसुकुमार को द्वारिकाधीश पद पर प्रतिष्ठित कर दिया गया।

जिस राज्य-वैभव के लिए भूतल पर अनेकानेक विकराल युद्ध हो चुके और होते रहते हैं, जिसकी प्राप्ति के लिए लोग रक्त की सरिताएँ बहाते हैं, जिस राज्य-श्री को अपनाने के लिए भाई अपने भाई का गला काटते नहीं झिझकता उसी विशाल राज्य-श्री का तृण की तरह त्याग देना हँसी-खेल नही है। श्रीकृष्ण ने प्रसन्नतापूर्वक राज्य का त्याग करके गजसुकुमार के वैराग्य की परीक्षा ही नहीं की है, वरन् उन्होने अपनी उदारता, अपने भ्रातृ-स्नेह और अपने कौशल की परीक्षा भी दी है और उसमें वे सफलता के साथ उत्तीर्ण हुए हैं।

गजसुकुमार को राजसिंहासन पर आरूढ़ करके श्रीकृष्ण ने कहा—'भाई! अब और क्या इच्छा है, सो स्पष्ट कहो। तत्काल उसकी पूर्त्ति की जायगी।'

गजसुकुमार बोले—'मुझे और किसी वस्तु की आवश्यकता नहीं है। सिर्फ ओघा, पात्र मँगवा दीजिए और मुंडन के लिए नाई बुलवा दीजिए।'

गजसुकुमार की बात सुनकर श्रीकृष्ण और देवकी ने भलीभाँति समझ लिया कि अब इनके हृदय में से ममता चली गई और समता आ गई है। राज्य का प्रलोभन कारगर नहीं हो सकता। इस स्थिति में वही करना उपयुक्त है जिससे इनका कल्याण हो, इन्हें शान्ति लाभ हो।

श्रीकृष्णजी ने गजसुकुमार की दीक्षा की तैयारी आरम्भ की। जिनके लौकिक विवाह की तैयारी थी, उनके लोकोत्तर विवाह की तैयारी होने लगी।

गजसुकुमार की दीक्षा का उत्सव मनाया जाने लगा। सब चकित होकर घटनाक्रम को देखने लगे।

राजकुमारजी का वरघोड़ा द्वारिका नगरी में चला। द्वारिका की प्रजा उनके दर्शन के लिए उलट पड़ी और सब ने एक स्वर से कहा—धन्य है! गजसुकुमारजी, जो ऐसी महान् ऋद्धि का त्याग कर मुनिधर्म में दीक्षित हो रहे हैं। इनका जीवन सार्थक है—कृतार्थ है!

आखिर गजसुकुमार सब के साथ भगवान श्रीअरिष्टनेमि की सेवा में उपस्थित हुए। गजसुकुमार को आगे करके वसुदेव और देवकी भगवान् नेमिनाथ के पास गये। देवकी की आँखें आँसू टपका रही थी उसने भगवान से विनम्र स्वर में कहा—'प्रभो! मेरा यह पुत्र गजसुकुमार पूरा गज ही है। अभी इस की

जवानी भी पूरी नहीं आई है। हमने न मालूम क्या-क्या आशाएँ इससे बाँध रक्खी थीं। न जाने कितने मनोरथ इसके सहारे लटक रहे थे। वे सब आज भग हो गये हैं। आपकी दिव्यवाणी के प्रभाव से प्रभावित होकर आज यह मुनिधर्म में दीक्षित होना चाहता है। अतएव हम आपको पुत्र की भिक्षा देते हैं। आप कृपापूर्वक इसे स्वीकार कीजिए।'

भगवान से इस प्रकार प्रार्थना करके देवकी ने गजसुकुमार से कहा—वत्स, यत्न और उद्योग करते रहना। जिस प्रयोजन को सिद्ध करने के लिए उद्यत हुए हो उसमे आलस्य न करना। यद्यपि तेरे विरह को सहन करना अत्यन्त कठिन है, फिर भी तू जिस परम मंगलमय धर्म की आराधना करने के लिए उद्योगशील हो रहा है उसमे विघ्न डालना भी उचित नहीं है। अब हम तुझे दीक्षित होने की आज्ञा देते हैं। मगर साथ ही यह भी कहती हूँ कि ऐसा पुरुषार्थ करना जिससे हमें छोड़कर दूसरे माता-पिता न बनाने पडे। ऐसा मत करना कि कोई दूसरी जननी तुम्हे गर्भ में धारण करे अर्थात् पुनर्जन्म का अवसर न आने देना। इसी भव में अनन्त, अक्षय और अव्याबाध सुखस्वरूप मुक्ति प्राप्त करने की चेष्टा करना।'

देवकी की शिक्षा के उत्तर मे गजसुकुमार ने कहा—'आपका आशीर्वाद मुझे फले। मै वही प्रयत्न करूँगा, जैसा आपका आदेश है।'

तत्पश्चात् गजसुकुमारजी ने भगवान् से मुनिधर्म की दीक्षा ली। सब यादव द्वारिका नगरी को लौट गये।

नवदीक्षित गजसुकुमार को एकान्त में बैठे-बैठे विचार आया—'क्या मैं इस शरीर में बना ही रहूँगा ? अगर यह शरीर नष्ट होगा ही तो क्या मुझे पुनर्जन्म लेकर नया शरीर धारण करना पड़ेगा ? मैं वीर यदुवंश में पैदा हुआ हूँ। मुझे ऐसे कर्त्तव्य करना चाहिए कि शीघ्र ही मेरा प्रयोजन पूर्ण हो जाय। मुझे जन्म-मरण के चक्र से छूट कर इसी भव में मोक्ष प्राप्त कर लेना चाहिए।'

इस प्रकार विचार कर गजसुकुमार मुनि ने भगवान् के समीप जाकर प्रार्थना की—

'हे प्रभो ! मुझे उपाय बतलाइए जिससे जल्दी ही आत्मा का कल्याण हो। अब मुझे एक क्षण भर इस शरीर में रहना नहीं सुहाता।'

गजसुकुमार मुनि की प्रार्थना के उत्तर में भगवान् अरिष्टनेमि ने भिक्षु की बारहवीं प्रतिमा को तत्काल मुक्ति-लाभ का उपाय बतला दिया।

गजसुकुमार मुनि बोले—'भगवान ! आप अत्यन्त दयालु हैं। मैं भिक्षु की इस प्रतिमा की आराधना करना चाहता हूँ। कृपा कर मुझे आज्ञा दीजिए।'

'दया होगी !'

इसी प्रकार भगवान् अरिष्टनेमि को गजसुकुमार मुनि के पूर्वभव, भविष्य आदि सभी कुछ का परिपूर्ण ज्ञान था। उन्हें विदित था कि इन मुनि की कितनी आयु शेष है, इनका भविष्य

क्या है और उसका फल क्या होगा ? इसी कारण भगवान् ने गजसुकुमार मुनि को श्मशान में जाकर बारहवीं प्रतिमा की आराधना की आज्ञा दे दी। यह भगवान् की निर्दयता नहीं किन्तु पूर्ण दया ही थी।

भगवान् की आज्ञा मिलते ही मुनिवर गजसुकुमार श्मशान की ओर चल पड़े। वहाँ पहुँच कर उन्होंने अपनी नासिका पर दृष्टि स्थिर की और निश्चल होकर खड़े रहे।

यद्यपि विशिष्टज्ञानी भगवान् को यह विदित था कि मुनिराज गजसुकुमार पर सोमल द्वारा उपसर्ग किया जायगा, फिर भी उन्होंने उन्हे अकेले ही भेज दिया। उनके साथ किसी दूसरे मुनि को नहीं भेजा। इसका एक मात्र कारण यही था कि भगवान् जानते थे कि यह मुनि आज ही मुक्ति प्राप्त करने वाले हैं।

संध्या का समय था। सोमल ब्राह्मण होम के निमित्त लकड़ी लेने जंगल गया था। उसे विदित है कि मेरी कन्या सोमा कृष्णजी के कुँवारे अन्तःपुर में पहुँच गई है और उसका गज-सुकुमार शीघ्र ही पाणिग्रहण करेंगे। संयोगवश सोमल उसी श्मशान में जा पहुँचा जहाँ मुनिराज गजसुकुमार ध्यानारूढ़ खड़े थे। गजसुकुमार मुनि को साधु के वेष में ध्यानावस्थित देख सोमल के आश्चर्य का पार न रहा। वह सोचने लगा—मैं यह ...य देख रहा हूँ ! कुमार गजसुकुमार और श्मशान भूमि में, ... का वेष धारण किये हुए ! यह कुमार क्या विशाल राज्य त्याग कर साधु बन गया है ? इसकी मूढ़ता का क्या ठिकाना

है! धिक्कार है इस अप्रार्थ्य-प्रार्थी को धिक्कार है इस पुण्य-हीन को! इसने मुझे चौपट कर दिया। मेरी कन्या का घोर अपमान किया! इसे इस अपमान का बदला चखाऊँगा! आज ही इसे परलोक में न पहुँचाया तो मेरा नाम सोमल नहीं!

मित्रो! भवितव्य की गति को सावधान होकर देखो। सोमल के अन्त करण में यह प्रेरणा कहाँ से उत्पन्न हुई? सोमल क्यों इस प्रकार के उद्गार निकाल रहा है? उसके इतने उग्र क्रोध और भीषण संकल्प का वास्तविक कारण क्या है?

वास्तव में सोमल जो कुछ विचार रहा है, उसके मुख से जो उद्गार निकल रहे हैं वे सब गजसुकुमार के कल्याण के लिए ही। वह गजसुकुमार की भलाई का निमित्त बन रहा है। ज्ञानी-जन, जो वस्तु के वास्तविक स्वरूप के ज्ञाता हैं, ऐसे व्यक्ति पर क्रोध नहीं करते। होनहार की प्रबलता का विचार करके साम्य-भाव के अवलम्बन से अपने अन्तःकरण को स्थिर रखते हैं।

अगर कोई धोबी स्वयं परिश्रम करके, अपनी गाँठ का साबुन लगाकर आपसे बदले में कुछ भी न लेकर आपके वस्त्र स्वच्छ करदे तो आप उस पर प्रसन्न होंगे या क्रोध करेंगे?

'प्रसन्न होंगे।'

सोमल ब्राह्मण, गजसुकुमार मुनिराज का आपकी दृष्टि में भले ही अनिष्ट रहा हो पर भगवान् नेमिनाथ की दृष्टि में उनका मैल धो रहा है। ऐसी अवस्था में गजसुकुमार मुनि या भगवान नेमिनाथ उस पर क्रोध क्यों करेंगे? वह तो इष्टसिद्धि में निमित्त बन रहा है।

सोमल का क्रोध नही दबा। वह प्रचण्ड रूप धारण करता गया। उसने पास के सरोवर से गीली मिट्टी निकाली और गजसुकुमार के माथे पर पाल बाँध डाली। इसके बाद श्मशान भूमि से लाल-लाल जलते हुए अंगार लाकर मुनि के मस्तक पर रख दिये।

मित्रो! मुँह से कथा कह देना सरल है, पर विचार कीजिए उस समय गजसुकुमार को कैसा अनुभव हुआ होगा? उनके कोमल मस्तक की क्या दशा हुई होगी? किन्तु धन्य है मुनिवर गजसुकुमार, जिन्होने उफ् तक न किया। यही नहीं, वे विचारने लगे—'धन्य हैं भगवान् नेमिनाथ, जिन्होने अनुपम दया करके मुझे आत्महित की साधना का यह सुअवसर दिया!' इस प्रकार विचार कर उन्होने अपने साम्य-भाव रूपी दिव्य जल से जलते हुए अगारो को भी शीतल बना लिया!

यहाँ यह कहा जा सकता है कि सत्य के प्रभाव से अग्नि शीतल हो जाती है, शस्त्र मौंथरे बन जाते हैं और विष अमृत के रूप में परिणामन हो जाता है। यह सत्य गजसुकुमार मुनि के विषय में चरितार्थ क्यों नहीं हुआ? इसका समाधान यह है कि सत्य सदा सत्य ही रहता है। वह कभी असत्य नहीं बन सकता। अगर गजसुकुमार चाहते तो अग्नि क्षण भर में शीतल बन जाती, मगर उनकी भावना क्या थी इसका विचार करो। गजसुकुमार मुनि अगर जीवित रहना चाहते तो अग्नि की क्या मजाल थी कि उन्हे जला सके। तप के प्रभाव से अभिभूत होकर वह पानी-पानी बन जाती। किन्तु मुनिवर गजसुकुमार ऐसा नहीं चाहते थे। उनकी इच्छा शीघ्र से शीघ्र मोक्ष जाने की थी। वे अपावन

शरीर में कैद नहीं रहना चाहते थे और इसी उद्देश्य से भगवान् की आज्ञा लेकर वहाँ आये थे।

जिनका मस्तक जल रहा है वे तो यह कहते नहीं कि दुनियाँ से धर्म उठ गया—मेरी कोई सहायता करने नहीं आया; अन्यथा क्यों मेरा मस्तक जलता। फिर भी दूसरे लोग बीच ही में कूद पड़ते हैं और कहने लगते हैं—धर्म में कुछ भी सामर्थ्य नहीं है! यह तो वैसी ही बात है कि राम ने सीता को अग्नि में प्रवेश करने की आज्ञा दी, द्रौपदी को पाण्डवों ने जुए में हारा और दमयन्ती को राजा नल ने जँगल में छोड़ दिया फिर भी सीता, द्रौपदी और दमयन्ती ने अपने पति के कार्य को श्रेष्ठ समझा और दूसरे लोगों ने उनके कार्य की भरपेट बुराई की।

गजसुकुमार मुनि की घटना सुनकर हम आश्चर्य करने लगते हैं। हम सोचते हैं—इतनी भीषण वेदना कोई कैसे सहन कर सकता है! माथे पर अंगार रक्खे हों और मुनि तपस्या में लीन हों, यह कैसी भयकर कल्पना है! परन्तु हमारी यह असंभावना, निर्बलता को प्रकट करती है। हमने शरीर और आत्मा के प्रति अभेद की भावना स्थिर कर ली है। हमारे अन्तःकरण में देहाध्यास प्रबल रूप से विद्यमान है। हम शरीर को ही आत्मा मान बैठे हैं। अतएव शरीर की वेदना को आत्मा की वेदना मान कर विकल हो जाते हैं। परन्तु जिन्होंने परमहंस की वृत्ति स्वीकार करके, स्व-पर भेद विज्ञान का आश्रय लेकर, अपनी आत्मा को शरीर से सर्वथा पृथक् कर लिया है—जो शरीर को भिन्न और आत्मा को भिन्न अनुभव करने लगे हैं, उन्हें इस प्रकार की शारीरिक वेदना तनिक भी विचलित नहीं कर सकती। वे सोचते

है—शरीर के भस्म हो जाने पर भी मेरा क्या बिगड़ता है ? मैं चिदानन्दमय हूँ, मुझे अग्नि का स्पर्श भी नहीं हो सकता।

गजसुकुमार मुनि ने शुक्लध्यान की भावना जगाई और उससे उनमें केवलज्ञानादि लब्धियें प्रकट हो गईं। इस प्रकार शुक्लध्यान में अवस्थित होकर, शैलेशी अवस्था प्राप्त करके पाँच लघु अक्षरों (अ, इ, उ, ऋ, लृ) के उच्चारण मे जितना समय लगता है उतने समय की आयु भोगकर, सिद्धि को प्राप्त हुए। देवो ने आकर उनका अन्तिम सस्कार किया और अपने मस्तक पर उनकी चरणरज लगाकर कृतार्थता का अनुभव किया।

मित्रो ! मैं आपसे पूछता हूँ कि आप किसके पुजारी हैं ?

'संयम के !'

'संयम, तप, क्षमा आदि सद्गुण धारण करने वालो के तथा जिन्होंने ऐसे विकटतर प्रसंग उपस्थित होने पर भी अपना भंग न होने दिया, ऐसे महापुरुषो के आप पुजारी हैं। इनके पुजारी होकर के भी यदि आपका यह विचार हो कि—धर्म मांगलिक कहलाता है पर सचमुच ही यदि धर्म मंगलमय होता तो गजसुकुमार मुनि का घात क्यो होता; तो समझना चाहिए कि अभी आपके विश्वास में कमी है। अब तक आपके अन्तःकरण में परिपूर्ण और जागृत श्रद्धा का आविर्भाव नहीं हुआ है। वास्तव मे घात वह है जिसके पश्चात् पुनर्जन्म धारण करना पड़े और पुनः पुनः जन्म-मरण का शिकार होना पड़े। गजसुकुमार के ाथे की आग ठण्डी हो जाती तो आज उनके नाम से न हम का मस्तक झुकता और न इतनी जल्दी उन्हे सिद्धि-लाभ होता।

त्याग की शक्ति

भगवान के ज्येष्ठ पुत्र भरत ने जब अपने भाइयों से अपनी अधीनता स्वीकार करने को कहा, तब उन्होंने उत्तर दिया—पिताजी ने हमें आपका भाई बनाया है, दास नहीं बनाया। हम लोग आपके भाई बन कर रह सकते हैं। हम दास बन कर नहीं रह सकते।

भरत चौदह रत्नों के स्वामी थे। उन्हें अपने रत्नों का गर्व हुआ। वह कहने लगे—मैं चक्रवर्ती हूँ। षट् खण्ड भरत क्षेत्र का अद्वितीय अधिपति हूँ। सम्पूर्ण भरत क्षेत्र में ऐसी कोई भी सत्ता कायम नहीं रह सकती जो मेरी अधीनता स्वीकार न करे। जो मेरी आन (आज्ञा) न मानेगा, मैं उसे कुचल दूँगा।

भरत ने अपने भाइयों के पास संदेश भेज दिया—या तो मेरी अधीनता स्वीकार करो या युद्ध करने के लिए उद्यत हो जाओ। यह संदेश जब मिला तो ९८ भाइयों ने मिल कर

परामर्श किया—इस स्थिति में हमें क्या करना चाहिए? अन्त में उन्होंने निश्चय किया—'अगर हम लोग रहेंगे तो स्वतन्त्र होकर ही रहेंगे, अन्यथा युद्ध करके अपनी बलि चढ़ा देंगे। हम भगवान् ऋषभदेव के पुत्र गुलाम होकर जीवित नहीं रह सकते। हम गुलामी स्वीकार करके भगवान के उज्ज्वल यश में कालिमा नहीं लगने देंगे। गुलामी अन्ततः गुलामी ही है, भले ही वह सगे भाई की ही क्यों न हो! पिताजी ने हमें स्वतन्त्र किया है अतएव स्वतन्त्र ही रहेंगे। परन्तु हमको तथा भरतजी को पिताजी ने राज्य दिया है। अतएव युद्ध करने से पहले, इस विषय में पिताजी से सम्मति ले लेना आवश्यक है। पिताजी का निर्णय हमारा अन्तिम निर्णय होगा। अगर उन्होंने युद्ध करने की सम्मति दी तो हम लोग अपनी सम्पूर्ण शक्ति लगा कर युद्ध में जूझ पड़ेंगे और उनके अनुग्रह से इन्द्र भी हमें पराजित नहीं कर सकेगा। कदाचित् उन्होंने भरतजी के अधीन होने की सलाह दी तो फिर सम्पूर्ण भाव से भरतजी की अधीनता स्वीकार कर लेनी होगी। पिताजी के निर्णय को हम लोग बिना किसी संकोच के, बिना ननु न च किये अंगीकार करेंगे।'

अट्ठानवे भाई इस प्रकार निर्णय करके पिता के पास गये। विशिष्ट ज्ञानी भगवान् पहले से ही सब बातें जानते थे। जैसे ही यह लोग उनके पास पहुँचे, भगवान् ने कहा—तुम भरत द्वारा सताये गये हो! वास्तव में मैंने तुम्हें स्वतन्त्र ही किया है और स्वतन्त्र रहना ही क्षत्रिय का धर्म है। अगर सर्वश्रेष्ठ स्वतन्त्रता दूसरी ही वस्तु है। चौदह रत्न और नौ निधियाँ प्राप्त र लेने पर भी भरत को सन्तोष नहीं हुआ है, यह देख कर भी क्या तुम्हारी आँखें नहीं खुली? संसार के समस्त पदार्थों की

प्राप्ति कदाचित् किसी को हो जाय तब भी सन्तोष के बिना शान्ति नहीं मिलती। इससे विपरीत सन्तोषवृत्ति जिसके अन्तःकरण में व्याप्त हो जाती है वह अकिंचन होने पर भी सुख का उपभोग करता है। असन्तोष वह लपलपाती हुई ज्वाला है जिसमें घृत की आहुति देने से निरन्तर वृद्धि ही होती जाती है। अतएव तुम लोग स्थिर-चित्त होकर विचार करो।

अपने भाई भरत पर क्रुद्ध होना वृथा है। उस पर दया करके उसे सुधारो। भरत को राज्य के टुकड़े पर अभिमान आ गया है। उसने तुम्हें सताया है, यह अपराध उसका नहीं, वरन उसमें अहंकार उत्पन्न कर देने वाले राज्य का है। यह राज्य ऐसे-ऐसे अनेक अपराधों और अवगुणों को उत्पन्न करता है। अगर तुम्हें इन अपराधों और अवगुणों से घृणा है तो तुम स्वयं राज्य की लालसा मत करो। तुम राज्य को तुच्छ समझो और मेरी शरण में आओ। मेरी शरण में आ जाने पर न तो तुम्हें भरत की अधीनता स्वीकार करनी पड़ेगी और न युद्ध ही करना पड़ेगा। इतना ही नहीं, तुम सब प्रकार की परतन्त्रता से मुक्त हो जाओगे। सच्ची स्वाधीनता का यही एक मात्र राजमार्ग है। निस्पृह एवं निरपेक्ष भाव में ही स्वाधीनता है। जहाँ पर-पदार्थों के साथ सम्बन्ध है, वहाँ पराधीनता अनिवार्य है। पराधीनता की बेड़ियों को काटने का उपाय है—आत्म-निर्भर बनना। तुम पर-पदार्थों के अधीन रहो—संसार की वस्तुओं को अपने सुख का साधन समझो और फिर पराधीनता से भी बचना चाहो, यह सम्भव नहीं है। पूर्ण स्वाधीनता पूर्ण स्वावलम्बन से ही आती है। अतएव अपनी मिथ्या धारणाओं को त्यागो और मैं जिस पथ का आचरण द्वारा प्रदर्शन कर रहा हूँ, उस पर चलो।

भगवान् का उपदेश सुन कर ६८ भाई मुनि बन गये। भरत को जब अपने भाइयो के मुनि वन जाने का संवाद मिला तो वह मूर्छित होकर सिंहासन से गिर पडा। आँखो से अविरल अश्रुधारा प्रवाहित होने लगी। वह भागा हुआ पिता के पास आया। जब उसने अपने भाइयों को मुनि के वेष में देखा तो वह काँप उठा। उसके संताप और पश्चात्ताप का पार न रहा। उसने कहा—भाइयो, मै अपराधी हूँ। मैंने तुम्हारे ऊपर अत्याचार किया है। तुमने मेरे अत्याचार को विचित्र तरीके से सहन किया है। साम्राज्य की सुरा के मद में मत्त होकर मैंने तुम्हे घोर कष्ट पहुँचाया है। मैं इन चक्र आदि के चक्कर में फँस गया। चौदह रत्नों ने अपने ६८ भाइयों को भुला दिया! मुझे क्षमा का दान दो भाइयो, चक्रवर्त्ती भरत आज तुम्हारे समक्ष क्षमा का भिखारी बना है!

इस प्रकार भरत का अभिमान चूर-चूर हो गया। उसका गर्व गल गया। भरत के भाइयों ने भरत का गर्व किस प्रकार चकनाचूर कर दिया? इस प्रश्न का एक ही उत्तर है—त्याग से। त्याग में अनन्त बल है, अमित सामर्थ्य है। जहाँ संसार के समस्त बल बेकार बन जाते हैं, अस्त्र-शस्त्र निकम्मे हो जाते हैं, वहाँ भी त्याग का बल अपनी अद्भुत और अमोघ शक्ति से कारगर होता है।

इस प्रकार भगवान् ऋषभदेव ने अपने ६८ पुत्रो को जैनेन्द्री दीक्षा से दीक्षित किया। बाद में बाहुबली और भरत ने भी संयम धारण किया।

विश्वास-बल

भगवतीसूत्र में वर्णनाग नतुआ का उदाहरण है। वर्णनाग नतुआ श्रावक था और बेला-बेला पारणा करता था—दो दिन उपवास रख कर एक दिन भोजन करता था। कोणिक और चेड़ा का जो भयानक संग्राम हुआ था उसमें वर्णनाग नतुआ भी चेड़ा राजा का एक रथी था। यद्यपि यह तपस्वी श्रावक दुनियादारी से दूर-सा रहता हुआ अपना जीवन व्यतीत करता था, फिर भी इतना स्वामी-भक्त था कि चेड़ा की ओर से युद्ध का निमंत्रण पहुँचने पर उसने 'नहीं' नही की। उसके मुख से यह नहीं निकला कि—'मैं संसार से अलग-सा रहता हूँ, मै युद्ध में न जाऊँगा। मुझे युद्ध से क्या प्रयोजन है ?' उसने सोचा—'शान्ति के समय चाहे किसी काम के लिए मनाई कर दूँ, किन्तु लड़ाई के समय नाहीं करना कायरता है। लोग श्रावक को कहीं कायर न समझ लें।'

वर्णनाग नतुआ सदा बेला-बेला पारणा करता था, पर युद्धभूमि मे जाते समय उसने तेला किया। वह रथ में बैठ कर

युद्ध के लिए चल दिया। उसने यह प्रण अवश्य कर लिया कि युद्ध मे मै उसी को मारूँगा जो मुझे मारेगा। जो मुझे न मारेगा उसे मैं भी न मारूँगा।

युद्ध मे कोणिक के सैनिक ने वर्णनाग नतुआ को बाण मारा। आघात के बदले प्रतिघात तो इसने भी किया, मगर वह बुरी तरह घायल हो गया। वर्णनाग नतुआ ने सोचा—'बस अब मेरा काम पूर्ण हुआ। अब मेरी गणना कायरों में नहीं होगी और न मेरे कारण कोई श्रावको को बदनाम कर सकेगा।'

यह सोचकर वर्णनाग नतुआ अपना रथ लेकर जङ्गल में चला गया।

इसका एक बाल-मित्र भी इस युद्ध मे सम्मिलित हुआ था। वह भी घायल हो गया था। उसने देखा, मेरा मित्र बाण से घायल होकर जँगल की ओर जा रहा है। बस, वह भी अपना रथ लेकर उसके पीछे-पीछे जँगल की तरफ चल दिया।

वर्णनाग नतुआ मे मित्र स बात करने की शक्ति भी नहीं रह गई थी। उसके मित्र ने परमात्मा की शरण मे आत्मा को लेकर ज्यों ही बाण खींचा, त्यों ही प्राण-पखेरू उड़ गये।

वर्णनाग नतुआ ने सोचा—'मेरे मित्र ने जिस विधि से प्राण त्यागे हैं वह विधि मै नहीं जानता। लेकिन मेरा मित्र सच्चा, धर्मात्मा और ईश्वर का भक्त है। वह झूठी विधि हर्गिज काम मे नही ला सकता।' इस प्रकार विचार कर सरल भाव से उसने संकल्प किया—'मेरे मित्र के सब नियम-धर्म मुझे भी हों।'

इस प्रकार अज्ञात अपरिचित नियम-धर्म का आश्रय लेकर उसने भी अपने शरीर से बाण खींचा और वह भी मर गया।

शास्त्र में प्रश्न किया गया है कि इन दोनो मित्रों को कौन-कौन सी गति मिली ? एक ने विधिपूर्वक नियम-धर्म का अनुष्ठान किया था और दूसरे ने विना किसी विधि के ही। तब इन दोनो की गति में क्या अन्तर पड़ा ? शास्त्र में इस प्रश्न का समाधान यह है कि वर्णनाग नतुआ प्रथम स्वर्ग मे गया है और उसका मित्र महाविदेह क्षेत्र में जन्म लेकर मुक्त होगा।

भावना और विश्वास की प्रचण्ड शक्ति प्रदर्शित करने के लिए यह उदाहरण पर्याप्त है। वास्तव में सत्य पर सम्पूर्ण श्रद्धा होने और असत्य को आग्रहपूर्वक त्यागने में ही एकान्त कल्याण है। सब महापुरुषो के जीवन के अन्तस्तत्त्व में यही तथ्य समाया हुआ है।

५

अर्जुन का तपोबल

मित्रो ! जो मूर्ख अमूल्य अतर गधे को लगा देगा वह बादशाह की इज्जत किससे करेगा ? जो मनुष्य अपने अनमोल वीर्य रूपी अतर को नीच वेश्याओ को सौप देगा वह संसार की पूजा—सेवा—किससे करेगा ? याद रक्खो, वीर्य मे बड़ी भारी शक्ति है । इस शक्ति के प्रभाव से इन्द्र आदि बड़े बड़े देवता भी पीपल के पत्ते की भाँति थरथर काँपने लगते है ।

महाभारत में एक स्थल पर वर्णन है कि अर्जुन ब्रह्मचर्य का पालन करता हुआ तप कर रहा था । उसकी उग्र तपस्या देख कर इन्द्र को भय हुआ कि कही अर्जुन मेरा राज्य न छीन ले । मैं कहीं इन्द्र-पद से भ्रष्ट न कर दिया जाऊँ ! इस प्रकार भयभीत होकर इन्द्र ने बहुत विचार किया । जब उसे कोई उपाय न सूझ पड़ा तब उसने रम्भा नामक एक अप्सरा को बुलाकर कहा—'रम्भे, जाओ और अपने छल-कौशल से अर्जुन का ब्रह्मचर्य खण्डित करके उसे तपोभ्रष्ट कर डालो ।

रम्भा सुसज्जित होकर अर्जुन के पास गई। वह अपना हावभाव दिखा कर बोली—'हा हा नाथ! मेरे प्रियतम! यह नाशकारी मन्त्र आपको किस गुरु ने बतलाया है? इस मन्त्र के पीछे पड़ कर मनुष्यत्व से क्यो हाथ धो रहे हो? मैं आपकी सेवा मे उपस्थित हूँ तपस्या करके भी मुझ से बढ़िया कौन-सी चीज पा जाओगे? जब मैं उपस्थित हो गई हूँ तब तपस्या करना निष्फल है। इस कायक्लेश को त्यागिये और मुझे ग्रहण कर मानव-जीवन को सफल बनाइये!'

अर्जुन अपनी तपस्या मे मगन था। वह रम्भा को माता के रूप मे देख रहा था।

रम्भा ने अपना सारा कौशल आजमा लिया। उसने विविध प्रकार के हाव-भाव दिखाये और अर्जुन को तपस्या से च्युत करने के लिए सभी कुछ कर डाला, पर अर्जुन नहीं डिगा सो नहीं डिगा। अर्जुन मानो सोच रहा था—माता अपने बालक को किसी प्रकार मनाना चाहती है!

रम्भा सब तरह से हार गई। वह अर्जुन का वीर्य न खींच सकी। तब उसने अपना अन्तिम अस्त्र काम में लिया, क्योंकि वह सिखलाई हुई थी, गुलाम थी, पुरुष की विषय-वासना की दासी थी। वह नग्न हो गई।

रम्भा अप्सरा थी। उसका रूप-सौन्दर्य कम नहीं था। तिस पर अर्जुन को तपोभ्रष्ट और ब्रह्मचर्य-भ्रष्ट करने के उद्देश्य से उसने अपने दैवी बल से अद्भुत आकर्षक रूप धारण किया। उसने कामदेव की ऐसी फुलवाड़ी खिलाई कि न मोहित होने वाला भी मोहित हो जाय। परन्तु वीर अर्जुन तिलमात्र

भी न डिगा। उसका मन-मेरु रंच मात्र भी विचलित नहीं हुआ। उसने मुस्किरा कर कहा—'माता! अगर आपने इस सुन्दर शरीर से मुझे जन्म दिया होता तो मुझ मे और अधिक तेज आ जाता।'

रम्भा लज्जित हुई। वह अर्जुन से परास्त हुई। उसने अपना रास्ता पकड़ा।

अर्जुन की प्रतिज्ञा थी कि जो मेरे गांडीव धनुष की निन्दा करेगा उसका मै सिर उड़ा दूंगा। मित्रो! अर्जुन यदि वीर्यशाली न होता तो क्या ऐसी भीषण प्रतिज्ञा कर सकता था? कदापि नहीं! वीर्यबल के सामने शस्त्र का बल तुच्छ है। अर्जुन जब अपने धनुष की निन्दा नहीं सह सकता था तब क्या वह अपने वीर्य की निन्दा सहन कर लेता? नहीं। क्योंकि वीर्य के विना धनुष काम नही आ सकता। अतएव धनुष कम कीमती है और वीर्य अधिक मूल्यवान् है।

६

माता और संतति

प्राचीन काल की माताएँ बचपन से ही अपने बालक को सदुपदेश दिया करती थी। वे मनचाही सन्तति उत्पन्न कर सकती थीं। मार्कण्डेय पुराण मे मदालसा का चरित्र वर्णन किया गया है। उससे विदित होता है कि मदालसा अपने पुत्र को आठ वर्ष की उम्र में तपस्या करने के लिए भेजना चाहती थी। उसके जब पुत्र उत्पन्न हुआ तभी से उसने उसे अपने भावो का पाठ पढ़ाना आरम्भ कर दिया। यही पाठ उसे पालने मे लौरियों के रूप में सिखाया गया। गर्भ के सस्कारो से तथा शैशव काल के प्रदत्त संस्कारों के कारण वह पुत्र इतना तेजस्वी और बुद्धिशाली हुआ कि आठ वर्ष की उम्र मे संसार त्याग कर वनवासी हो गया। इस प्रकार मदालसा ने अपने सात पुत्रों को तपस्या करने के लिए जगल मे भेज दिया। एक वार राजा ने रानी मदालसा से कहा-'मदालसे' तू सब पुत्रो को जंगल मे भेज देती है। मेरा राज्य कौन सम्भालेगा ?"

हँस कर मदालसा ने कहा—नाथ, आप चिन्ता न कीजिये। मैं आपको एक ऐसा पुत्र दूंगी जो महा तेजस्वी महाराजा कहला सकेगा।

मदालसा ने ऐसा ही आठवाँ पुत्र पैदा किया। उसने बड़ी योग्यता के साथ राज्यकाज सम्भाला और प्रजा का पालन किया।

भावना क्या नहीं कर सकती? 'यादृशी भावना यस्य सिद्धिर्भवती तादृशी।' जैसी जिसकी भावना होती है उसे वैसी ही सिद्धि मिलती है।
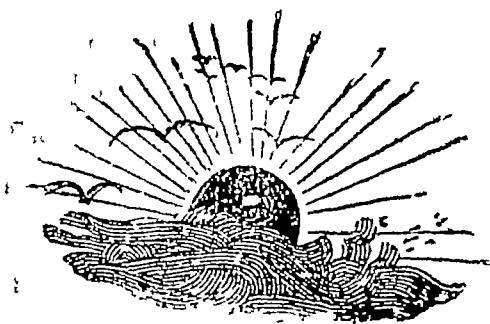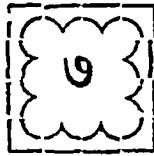
दैवी शक्ति

धर्म के भीतर एक महान् तत्त्व है। उस महान् तत्त्व की उपलब्धि सब को नहीं होने पाती-कोई विरला ही उसे प्राप्त करता है। जिसमे धर्म के प्रति प्रगाढ़ श्रद्धाभाव और हिमाचल की सी अचलता है वही उस गूढ़तर तत्त्व को पाता है।

जब प्रह्लाद पर अभियोग लगाया गया तब हिरण्यकश्यपु ने पुरोहितों को आज्ञा दी कि कोई ऐसा अनुष्ठान करो जिससे प्रह्लाद का अन्त हो जाय। जिस धर्म का अन्त करने के लिए मैंने जन्म लिया है, प्रह्लाद उसी को फैला रहा है। मेरे ही घर में जन्म लेकर मेरे शत्रु—धर्म को प्रश्रय दे यह मुझे असह्य है। मैं धर्म को जीवित नहीं रहने दूंगा। अगर प्रह्लाद उसे जीवित रखने की चेष्टा करेगा तो उसे भी जीवित न रहने दूंगा।

हिरण्यकश्यपु ने प्रह्लाद को बुलाकर समझाया—अरे! इस धर्म को तू छोड़ दे। मैं ही प्रभु हूँ, मैं ही ईश्वर हूँ। मेरे

विपरीत आचरण करने से यह भूलोक ही तेरे लिए पाताल लोक—नरक बन जायगा। मेरा कहना मान। बाल-हठ मत कर। धर्म तुझे ले डूबेगा।

प्रह्लाद ने निर्भय और निश्चिन्त भाव से कहा—तुम और हो, प्रभु कुछ और है। धर्म के अनुकूल आचरण करना मेरे जीवन का उद्देश्य है। धर्म का अनुसरण करने से ही अगर कोई विरोध समझता है तो मेरा क्या दोष है? मैं आपसे नम्र प्रार्थना करता हूँ कि आप अपना दुराग्रह त्याग दें। धर्म अमर है, अविनाशी है। वह किसी का मारा मर नहीं सकता। वह किसी के नाश किये नष्ट हो नहीं सकता। जो धर्म का नाश करने की इच्छा करता है, वह अपने ही विनाश को आमंत्रित करता है। आप अपना अनिष्ट न करें, यही प्रार्थना है।

प्रह्लाद की नम्रतापूर्ण किन्तु दृढ़ता से व्याप्त वाणी सुनकर हिरण्यकश्यपु क्रोध के मारे तिलमिला उठा। उसने अपनी लाल-लाल भयानक आँखें कर प्रह्लाद की ओर देखा, मानो अपने क्रोधानल से ही प्रह्लाद को जला देगा। फिर कहा-विद्रोही छोकरे? अब अपने धर्म को याद करना। देखें तेरा धर्म तेरी क्या सहायता करता है? अभी तुझे धर्म का मधुर फल चखाता हूँ।

इतना कह कर उसने पुरोहितों को आज्ञा दी—'इसे आग में डाल कर जीवित ही जलाकर खाक कर दो!' पुरोहितों ने तत्काल हिरण्यकश्यपु के आदेश का पालन करना चाहा। उन्होंने धधकती हुई आग में प्रह्लाद को बिठलाया। उस समय की प्रह्लाद की धर्मश्रद्धा एवं समभावना से आकृष्ट होकर दैवी शक्ति ने चमत्कार दिखाया। वह अग्नि अपनी भीषण ज्वालाओं से पुरोहितों को ही जलाने लगी। प्रह्लाद के लिए वह जल

के समान शीतल बन गई। आग से बचने के लिए प्रह्लाद ने एक श्वास भी प्रार्थना में नहीं लगाया। उसने अपने बचाव के लिए परमात्मा से एक शब्द मे भी प्रार्थना न की। 'हे ईश्वर! मेरी रक्षा करो' इस प्रकार की एक भी कातर उक्ति उसके मुख से नहीं निकली। वह जानता था—आत्मा जलने योग्य वस्तु नहीं है। वह अमर है—आत्मा का कोई कुछ बिगाड़ नहीं सकता। उसे कोई हानि नहीं पहुँचा सकता।

क्षण भर मे पुरोहितो के हाहाकार और चीत्कार से आकाश व्याप्त हो गया।

हिरण्यकश्यपु ने अपनी प्रतिष्ठा को कायम रखने के लिए प्रह्लाद को उखाड़ना चाहा। पर उसकी दैवी शक्ति इतनी प्रबल थी कि उसके सामने हिरण्यकश्यपु की राजकीय शक्ति कातर बन गई।
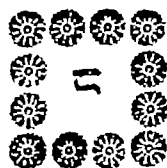
कष्टसहिष्णु कर्ण

कर्ण वास्तव में कुन्ती का पुत्र था किन्तु संयोगवश वह दासरथी का पुत्र कहलाया। वीर पांडव और कर्ण द्रोणाचार्य से शस्त्र-विद्या सीखते थे। द्रोणाचार्य पाण्डवों को मन लगा कर सिखाते, पर कर्ण को नहीं। कर्ण को यह बात बहुत बुरी लगी। आखिर कर्ण से न रहा गया और उसने आचार्य से इस पक्षपात का कारण पूछा। द्रोणाचार्य ने कहा—'हंस का भोजन कौवों को नहीं दिया जाता।'

कर्ण तेजस्वी पुरुष था। उसने यह उत्तर सुना तो उसके क्रोध का ठिकाना न रहा। वह अपना अपमान न सह सकने के कारण वहाँ से चल दिया। उसने मन ही मन प्रतिज्ञा की—देखें, शस्त्र-विद्या मे अर्जुन बढ़कर निकलता है या मैं ?'

उन दिनो परशुराम धनुर्वेद के आचार्य माने जाते थे। पर उनका प्रण था—सिवा ब्राह्मण के यह विद्या किसी और को नहीं सिखाऊँगा।

कर्ण को परशुराम के प्रण का पता था। वह ब्राह्मण का रूप धारण करके परशुराम के आश्रम मे पहुँचा और उनसे धनुर्विद्या सिखाने की प्रार्थना की।

परशुराम ने उसका परिचय पूछा तो उसने अपने को ब्राह्मण बतला दिया। अन्त मे परशुराम ने उसकी प्रार्थना अंगीकार करली और कर्ण आश्रम में रहने लगा।

कर्ण परशुराम की अनन्य-भाव से सेवा करता था। परशुराम उसकी सेवा पर मुग्ध हो गया और उसे दिल खोल कर सिखाने लगा। कुछ दिनो बाद कर्ण ने सेवा और अधिक करना आरम्भ कर दिया। पर उसका असर उल्टा हुआ। सेवा की अधिकता ने परशुराम के हृदय मे शंका उत्पन्न कर दी। वह सोचने लगा—ब्राह्मण-कुमार इतनी कठोर सेवा नहीं कर सकता। कदाचित् ब्रह्मणेतर न हो!

एक दिन की बात है कि परशुराम कर्ण की गोद में सिर रखकर सो रहे थे। एक कीडे ने कर्ण की जांघ पर ऐसा काटा कि खून बहने लगा। जांघ इधर-उधर करने से गुरुजी की निद्रा भग होने का उसे भय था। गुरु-भक्त कर्ण ने अपने कष्ट की परवाह न करते हुए धैर्य रक्खा और निश्चल बैठा रहा।

जांघ से बहा हुआ खून परशुराम के शरीर को छू गया। खून की तरी से परशुराम चौंक कर उठ बैठे। कर्ण से खून बहने का कारण पूछा। कर्ण ने कीड़े के काटने का हाल कह सुनाया।

परशुराम ने क्रोध से कहा—ब्राह्मणकुमार इतना धैर्य नहीं रख सकता। सच-सच बता, तू कौन है?

कर्ण ने हाथ जोड़ कर मस्तक झुका कर कहा—अपराध क्षमा हो। मैं क्षत्रिय-पुत्र हूँ।

परशुराम—तो मेरे आश्रम में आकर तूने असत्य-भाषण क्यों किया ? असत्य भाषण की सजा तेरे लिये यही है कि इसी समय आश्रम से बाहर हो जा। आज, अभी, तुझे निर्वासित किया गया। दूसरे को इस घोर अपराध की सजा बहुत कठोर दी जाती पर तूने मेरी बहुत सेवा की है। जा, तेरी विद्या सफल होगी।
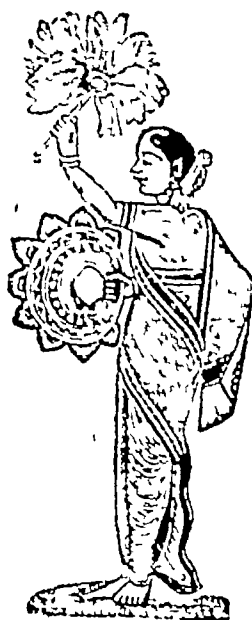
सत्यनिष्ठा

महाराज हरिश्चन्द्र का धर्म-मर्यादा का पालन कौन नहीं जानता ? जिस समय राजा हरिश्चन्द्र, महारानी तारा और कुमार रोहिताश्व राज्य त्याग कर जाते हैं, उस समय समस्त नर-नारियाँ आँसू बहाती है। स्त्रियाँ रानी से कहती हैं—महारानीजी, आप कहाँ पधारती हैं ? आप हमारे घर में टिकिये। यह आप ही का घर है।

महारानी उत्तर देती हैं—'बहिनो ! आपके आँसू, आँसू नहीं, वरन् मेरे धर्म का सत्कार है। यह आँसू मेरे पतिव्रत धर्म का अभिषेक है। अगर मै राजसी ठाठ के साथ राजमहल मे विराजी रहती तो मेरे साथ आपकी इतनी सहानुभूति न होती। बहिनो ! यदि आप मेरे प्रति सच्ची सहानुभूति रखती हैं तो आप भी अपने घर मे सच्चे धर्म की स्थापना कीजिए।'

मित्रो ! आपने महारानी तारा के वचन सुने ? वह धर्म की रक्षा के लिए कितने हर्ष के साथ राजपाट त्याग कर रही है ? इसे कहते है वैराग्य ! लाखो करोड़ो के आभूषण पहनने वाली महारानी तारा ने ठीकरो की तरह उन्हे उतार कर फैंक दिया और मन मे तनिक भी मलीनता न आने दी। आप सामायिक करते समय पगड़ी तो उतारते है पर कभी दो घड़ी के लिए अभिमान भी उतारते है ? अगर नही, तो आप वैराग्य का अर्थ कैसे समझ सकते है ?

हरिश्चन्द्र की समस्त प्रजा विश्वामित्र को कोस रही थी। हरिश्चन्द्र चाहते तो अपने एक ही इशारे से कुछ का कुछ कर सकते थे। मगर नहीं। उन्होने प्रजा को आश्वासन दिया कि— घबराओ नहीं। धर्म का फल कटुक कभी नहीं हो सकता।

राजा हरिश्चन्द्र दृढ़ आस्तिकता के कारण ही हजारो वर्ष बीत जाने पर भी आज हम लोगो के मनोमन्दिर मे जीवित है। उनकी पवित्र कथा हमे धर्म की ओर इङ्गित कर रही है, प्रेरित कर रही है।

धर्म के खातिर राजा हरिश्चन्द्र ने राज-पाट ही नहीं छोड़ा पर विश्वामित्र को दक्षिणा चुकाने के लिए आप अपनी पत्नी सहित बिक गये। धर्म की रक्षा त्याग से होती है, तलवार से नहीं।

तलवार की शक्ति राक्षसो के लिए काम मे आती है। दैवी प्रकृति वाली प्रजा मे प्रेम ही अपूर्व प्रभाव डाल देता है।

ओह ! जिस समय रानी बाजार में बिकने के लिए खड़ी होती है, उस समय राजा तो मुँह से कुछ नही बोलते, पर रानी कहती है—'लो' मैं बिक रही हूँ। जिसकी इच्छा हो मुझे दासी बनाने के लिए खरीद लो।'

धन्य है महारानी तारा का त्याग ! ऐसी पतिव्रता, धर्मपरायणा रमणी आर्यावर्त को छोड़ कर और कहाँ उत्पन्न हो सकती है।

जिस समय रोहिताश्व का देहान्त होजाता है, उस समय महाराज हरिश्चंद्र मरघट में अपने स्वामी-श्वपच-चांडाल की आज्ञा के अनुसार कर (टैक्स) लेने के लिए बैठे थे। तारा रोहिताश्व को लेकर वहाँ आती है। राजा सामने आकर पैसा माँगता है। रानी कहती है—

'मुझसे पैसे माँगते है आप ?'

राजा—हाँ।

रानी—क्या आप मुझे भूल गये हैं ?

राजा—नही तारा, इस जीवन मे तुझे कैसे भूल सकता हूँ।

रानी—तो आप मुझे इस कर से बरी नही कर सकते ?

राजा—तारा, यही करना होता तो राज्य क्यों त्यागता ? जब राज्य के लिए असत्य का आचरण न किया तो क्या एक टके के लिए सत्य गँवाना उचित होगा ?

रानी—टका तो मेरे पास है नहीं। यह साड़ी है। कहिए तो आधी फाड दूं !

राजा—अच्छा, यही सही। एक टके की तो हो ही जायगी।

ज्यो ही रानी अपनी साड़ी फाडने को होती है त्यो ही आकाश से पुष्पवर्षा होने लगती है। इन्द्र आदि देवता उनकी सेवा में उपस्थित होते है। श्मशानभूमि स्वर्ग बन जाती है !
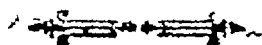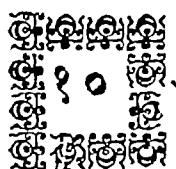
धन का अभिशाप

अगर आपके पास धन है तो उसे परोपकार मे लगाओ। यह धन आपके साथ जाने वाला नहीं है। इस धन के मोह में मत पड़ो। यदि इसके मोह मे पड़ गये तो आपको मोक्ष प्राप्त नहीं हो सकेगा।

ईशु के पास एक आदमी आया। उसने कहा—आपने स्वर्ग का द्वार खोल दिया है। मैं स्वर्ग मे जाना चाहता हूँ। मुझे वहाँ भेज दीजिए।

ईशु—तुम स्वर्ग में जाना चाहते हो ?

आगन्तुक—जी हाँ।

ईशु—जाना चाहते हो ?

आगन्तुक—जी।

ईशु—जरा सोचलो। जाना चाहते हो ?

आगन्तुक—खूब सोच लिया। मै स्वर्ग जाना चाहता हूँ।

ईशु—अच्छा, सोच लिया है तो अपने घर की तिजोरियों की चाबी मुझे दे दो।

आगन्तुक—ऐसा तो नहीं कर सकता।

ईशु०—तो जाओ, तुम स्वर्ग नहीं जा सकते।

सुई के छेद में से ऊँट का निकल जाना कदाचित् सम्भव हो पर कंजूस धनवानों का स्वर्ग मे प्रवेश होना नितान्त असम्भव है।
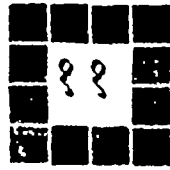
कुसंगति ❀

कैकेयी के साथ उसके पीहर से मन्थरा नाम की एक दासी आई थी। उसने महल की अटारी पर चढ़कर रामचन्द्र के राजतिलक की नगर में होने वाली तैयारी देखी। उसके दिमाग में कुछ विचित्र भाव उदित हुए। वह दौड़ती-दौड़ती कैकेयी के पास आई। बोली—अरी अभागिनी! तेरे सर्वनाश का समय आ पहुँचा है और तुझे किसी बात का होश ही नहीं है! तू इतनी निश्चिन्त बैठी है? तुझे नहीं मालूम, अयोध्या में आज यह उत्सव किसलिए हो रहा है? संपूर्ण अयोध्या आज ध्वजा-पताकाओं से क्यों सुशोभित हो रही है? सुन, कल प्रातःकाल राजा दशरथ राम को राजसिंहासन पर बिठला देंगे।

सरल-हृदया कैकेयी पर इन वचनों का कुछ भी असर न होता देख मन्थरा फिर विष उगलने लगी—मेरे लिए तो राम और भरत दोनों समान हैं। पर तू अपने पैर पर कुल्हाड़ा मार रही है। तू अपना भविष्य अन्धकारमय बना रही है।

❀ तुलसी-रामायण के आधार पर। विशेष जिज्ञासु 'रामवनगमन' शिक्षा १४ तथा १५ देखें।

मन्थरा के चेहरे पर क्रोध और विरक्ति के चिह्न देख कर पहले तो सरलहृदया कैकेयी कुछ न समझी और पूछने लगी—आज तो तुझे प्रसन्न होना चाहिए; पर देखती हूँ कि तू बड़ी चिन्तित हो रही है। तेरी बातें मेरी समझ मे ही नहीं आ रही हैं। मुझे राम, भरत की तरह ही प्यारे है। कौशल्या बहिन की भाँति ही वह मेरी सेवा करते है। राम की ओर से मुझे किस बात का डर है?

दुष्टमना मन्थरा ने उत्तर दिया—राजा तेरे मुँह पर तेरा आदर करते हैं पर हृदय से वे कौशल्या के प्रेमी हैं। तुझे मालूम है कि राम के राज्याभिषेक का समाचार भरत को क्यों नहीं दिया गया? अरी भोली! तू राजा के जाल को नहीं समझ सकती। वास्तव में वे तुझे तनिक भी नहीं चाहते। अगर ऐसा न होता तो इतना छल-कपट क्यो करते?

दुष्टो के संसर्ग से क्या-क्या अनर्थ नहीं होते? कैकेयी के हृदय पर मन्थरा के वचनो का असर हो गया।

मंत्रियों को आवश्यक सूचना देकर जिस समय राजा दशरथ सर्व-प्रथम कैकेयी के महल मे गये, सहसा कैकेयी का विकराल रूप देखकर सहम उठे। जो रानी मेरे लिये सदा सिंगार किये करती थी, महल के द्वार पर पैर धरते ही मुस्कराती हुई सामने आ जाती थी और हाथ पकड़ कर मुझे भीतर ले जाती थी, आज उसने यह विकराल रूप क्यों धारण किया है? आज वह आँख उठाकर भी मेरी ओर नहीं देखती। केश बिखरे हुए हैं। कपड़े मैले-कुचैले और अस्तव्यस्त है। मुँह उतरा हुआ, होठों पर पपड़ी जमी हुई और नाक से दीर्घ श्वास! यह सब क्या मामला है?

राजा ने डरते-डरते उसके शरीर को हाथ लगा कर पूछा-प्रिये ! आज तुम नाराज क्यों हो ? तुम्हारी यह हालत क्यों है ? मैं राम की शपथ पूर्वक कहता हूँ-'जो तुम चाहोगी, वही होगा ।'

अब तक कैकेयी चुप थी । 'राम' शब्द राजा के मुँह से सुनते ही सर्पिणी-सी फुंकार कर बोली-मैं और कुछ नहीं चाहती। आपने पहले दो वचन माँगने को कहे थे, आज उन्हें पूरा कर दीजिए ।

दशरथ—अवश्य, बोलो क्या चाहती हो ?

कैकेयी—पहले अच्छी तरह सोच लीजिए, फिर हाँ भरिये।

दशरथ—प्रिये ! सोच लिया है । माँगो ।

कैकेयी—फिर नाहीं तो न की जायगी ?

दशरथ—वचन देकर मुकर जाना रघुकुल की मर्यादा के विरुद्ध है । तुम निर्भय होकर माँगो ।

कैकेयी—अच्छा तो सुनिये । कल प्रातःकाल होते ही भरत को राजसिंहासन पर आरूढ़ कीजिए ।

कैकेयी के हृदयवेधक शब्द सुनते ही दशरथ मूर्छित हो गये ।

भाइयो ! बहनो ! जो कैकेयी दशरथ को प्राणों से अधिक [प्या]र करती थी और राम को भरत से ज्यादा चाहती थी, उसीने आज दुष्ट-शिक्षा के कारण कैसा भयानक दृश्य उपस्थित कर दिया !

प्रातःकाल, अरुणोदय के समय, राम माता कैकेयी के महल में दर्शन करने जाते है। वहाँ कुहराम मचा हुआ देख नम्रतापूर्वक पूछते है—माताजी! आज आप उदास क्यों दीख पड़ती हैं? पिताजी बेभान से क्यों पड़े हुए है?

ककेयी चुपचाप बैठी रही। उसके मुँह से कुछ नहीं निकला।

रामचन्द्र फिर बोले—माताजी, बोलिए। आज तो आप बोलती भी नहीं।

कैकेयी—राम, तुम बड़े मीठे हो। जान पडता है, बाप-बेटे ने एक ही शाला में शिक्षा पाई है। पर तुम्हारी चापलूसी की बातो में अब मैं नहीं आने की!

राम—माताजी, क्षमा कीजिए। मेरी समझ मे कुछ नहीं आया। कृपा कर मुझे साफ-साफ सुनाइए।

कैकेयी—समझे नहीं? समझना यही है कि तुम राजाजी के पुत्र हो और भरत नहीं। कौशल्या राजाजी की रानी है, मैं नहीं। मैं तो दासी के सदृश हूँ। अगर भेदभाव न होता तो मेरे भरत को राज्य क्यों नहीं मिलता? मैंने तुम्हारे पिताजी से भरत के लिए राज्य माँगा, बस वे नाराज हो गये।

राम—विशालहृदय राम—कैकेयी की कठोर बात सुन कर कहते है—माताजी! आप ठीक कहती है। भरत को अवश्य राज्य मिलना चाहिए। इसमें बुरा क्या कहा? मै आपका अनुमोदन करता हूँ। भरत मेरा भाई है। आपने किसी पराये के लिए थोड़ा ही राज्य माँगा है!

राम वनवास के लिए तैयार हो गये। उन्होंने राज्य तिनके की तरह त्याग दिया। उसी निस्पृहता के कारण शान्ति के दूत राम को लोग पुरुषोत्तम और ईश्वर कहते है। सच है, प्रकृति का विजय करने वाला ही महापुरुष कहलाता है।

राम के वनवास की खबर जब सीता को हुई तो वह पुलकित हो उठी। उसने सोचा—मै कितनी भाग्यशालिनी हूँ। मुझे सेवा करने का कैसा अच्छा अवसर मिला है? गृह-वास मे दास-दासियों की भीड़ के कारण पतिसेवा का पूरा सौभाग्य प्राप्त न होता था, वन-वास करने से यह सौभाग्य प्राप्त हो सकेगा।

बहिनो! सीता के त्याग की तरफ ध्यान दीजिए। वह आज की नारी नहीं थी कि सुख मे राजी-राजी बोले और विपदा पड़ने पर मुँह मोड़ ले। इसीलिए कहते है—राम मे जो शक्ति थी वह सीता की शक्ति थी।

भगवती सीता ने कभी कष्ट का अनुभव न किया था। वह चाहती तो अपने मायके चली जा सकती थी या अयोध्या मे ही रह सकती थी। उनके लिए कहीं भी किसी वस्तु की कमी नहीं थी। पर नहीं, सीता को त्याग का आदर्श खड़ा करना था, जिसके सहारे स्त्री समाज त्यागभावना और पतिपरायणता का पाठ सीख सके।

राम और सीता को वन जाते देख वीर लक्ष्मण भी तैयार हो गये। उनकी माता सुमित्रा ने उन्हे उपदेश देते हुए कहा—"जाओ बेटा, राम को दशरथ के समान समझना,

जानकी को मेरी जगह मानना, वन को वन नहीं अयोध्या मानना। जाओ पुत्र! तुम्हारा कल्याण हो।"

अहा! इन रानियों की तारीफ किस प्रकार की जाय! आज की माताएँ अपने पुत्रों को कैसी नीच शिक्षा देती हैं? बहनो! इन रानियों के उदार चरित का अनुकरण करो, तुम्हारा घर स्वर्ग बन जायगा।

राम, लक्ष्मण और सीता ने वन की ओर प्रस्थान कर दिया। दशरथ का देहान्त हो गया। जब भरत की फटकार मिली तब कैकेयी की बुद्धि ठिकाने आई। वह पछताने लगी—हाय! मैंने यह क्या कर डाला! मैंने अपनी सोने की अयोध्या को श्मशानभूमि बना दिया और प्यारे राम को वनवास दिया! आह! कितना गजब हो गया! हाय! मैं राम को कैसे मुँह दिखला सकूँगी। ओ मेरे राम, क्या तुम मुझे क्षमा कर दोगे? मैं किस मुँह से राम को 'मेरे राम' कह सकती हूँ? जिसे पराया मानकर मैंने वनवास के लिए भेज दिया उसे अपना मानने का मुझे क्या अधिकार रहा? राम! राम! ओ राम! क्या तुम इस दुर्घटना को भूल सकोगे? क्या तुम फिर मुझे माता कह कर पुकारोगे? हाय! मैं दुष्टा हूँ, मैं पापिनी हूँ। मैं पति और पुत्र की द्रोहिनी हूँ। मैंने निष्कलंक सूर्यवंश को कलंकित किया! मेरे प्यारे राम! इस अभागिनी माता की निष्ठुरता को भूल जाना! भरत भी मुझे 'माँ' नहीं कहता तो राम मुझे कैसे माता मानेगा? मैंने उसके लिये क्या कसर छोड़ी है? फिर भी राम मेरा विनीत बेटा है। वह अपनी माता को माफ कर देगा।

इस प्रकार अपने आपको धिक्कार कर कैकेयी ने भरत से कहा—'मुझे रामचन्द्र से मिला दो। मैं भूली हुई थी। मैंने

घोर पाप किया है। मेरी बुद्धि भ्रष्ट हो गई थी। राम को देखे विना मेरा जीवन कठिन हो जायगा। अगर तुमने राम से मुझे न मिलाया तो मैं प्राण त्याग दूँगी।

पहले तो भरत ने साफ इन्कार कर दिया, पर बाद में यह जान कर कि माता का अहंकार चूर-चूर हो गया है और वह सच्चे हृदय से पश्चात्ताप कर रही है, रामचन्द्र के पास ले जाना स्वीकार किया।

भरत चित्रकूट पहुँचे। कैकेयी मारे लज्जा के राम के सामने न जा सकी। वह एक वृक्ष की आड़ मे खड़ी हो गई। उसकी दोनो आँखों से आँसुओ की धारा प्रवाहित हो रही थी। वह मन ही मन सोचने लगी—बेटा राम! क्या अब मेरा अपराध क्षमा नहीं किया जा सकता? क्या तुम मेरा मुँह भी देखना पसन्द न करोगे? मै तुम से मिलने आई हूँ,पर सामने आने का साहस नहीं होता। राम! क्या इस अपराधिनी माता को दर्शन न दोगे? मैं जानती हूँ, कि हाय! मैंने अपनी लाड़ली बहू जानकी को अपने हाथ से छाल के वस्त्र पहना कर वन की ओर रवाना किया है। इससे बढ़कर निठुरता और कोई क्या कर सकता है?

रामचन्द्र माता कैकेयी का विलाप सुन कर घूमते-घूमते उसके पास जा खड़े हुए और 'वंदे मातरम्' कह उसके पैरों मे गिर पड़े। कैकेयी चौंक उठी। दुःख, पश्चात्ताप और लज्जा के त्रिविध भावो से उसका हृदय जलने लगा।

राम रूपी प्रचण्ड सूर्य के तेज से कैकेयी के हृदय मे आये हुए दुष्ट विचार रूपी गंदला जल सूख गया। कैकेयी का कलुषित हृदय पिघल कर आँखो के रास्ते बह गया। कैकेयी के

आँसुओं ने उसके अन्तःकरण की कालिमा धोकर साफ कर दी। कैकेयी के पश्चात्ताप की आग में उसकी मलीनता भस्म हो गई। कैकेयी अब सोने के समान निर्मल बन गई।

कैकेयी ने रामचन्द्र से कहा-वत्स, अयोध्या लौट चलो और राज्यभार अपने सिर पर ले लो।

राम—माताजी, इस समय अयोध्या लौटना, अयोध्या से त्याग के आदर्श को देश निकाला देना होगा। जहाँ त्याग का आदर्श न होगा वहाँ शान्ति नहीं रह सकती।

कैकेयी और राम में बहुत देर तक इसी प्रकार की बातें होती रहीं। राम अपने संकल्प पर दृढ़ थे और कैकेयी उन्हें मनाने में व्यस्त थी। एक ओर माता की नाराजी और दूसरी ओर आदर्श का हनन। तिस पर मुसीबत यह थी कि भरत राज्य स्वीकार न करते थे। जटिल समस्या थी। वह कैसे हल हो?

इतने में सीता को युक्ति सूझी। राम से कहा—नाथ, भरत राज्य स्वीकार न करेंगे तो अराजकता फैलना अवश्यंभावी है। इस अनिष्ट को टालने के लिए अगर आप अपने सिर पर राज्यभार लेकर फिर भरत को सौंप दें तो क्या हानि है? आपका दिया हुआ राज्य भरत सम्भाल लेंगे। इससे आपका प्रण भी भंग न होगा और अराजकता भी न फैलेगी।

मित्रो! भरत जैसे भाई अभी कहीं दिखाई पड़ते हैं? आज हाथ भर जमीन के टुकड़े के लिए एक भाई दूसरे भाई पर हाथ साफ करने में व्यस्त दिखाई देता है। सड़ी सड़ी बातों पर

मुकदमेबाजी होती है। लाखों रुपये कचहरियों में भले ही नष्ट हो जाएँ पर भाई के पल्ले पैसा भी न पड़े। यह है आज की भ्रातृभावना!

हमें मंथरा के समान शिक्षिकाओं की आवश्यकता नहीं है। शिक्षा में दोष का प्रवेश न होने पाए, इस बात का पूरा ध्यान रखना आवश्यक है। निर्दोष स्त्रीशिक्षा का सूर्य उदय होने पर समाज का अंधकार नष्ट हो जायगा और समाज सुख-शान्ति का अधिकारी बनेगा।

१२
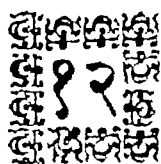
एकाग्रता

द्रोणाचार्य ने कौरवों और पाण्डवों को धनुर्विद्या सिखाई थी। एक दिन वे अपनी शिक्षा की परीक्षा लेने लगे। उन्होंने एक कड़ाह में तेल भरवाया और अपने सब शिष्यों को एकत्र किया। उस तेल के कड़ाह में एक खंभा खड़ा किया गया और खंभे पर चन्दा वाला मोर का पंख लगा दिया गया।

इतना सब कुछ करने के पश्चात् आचार्य ने घोषणा की कि तेल भरे कड़ाह में प्रतिबिम्बित होने वाले मोर के पंख को देख कर जो शिष्य पंख के चन्दा को बाण से भेद देगा, उसी ने मेरी पूर्ण शिक्षा ग्रहण की है। वही परीक्षा में उत्तीर्ण हुआ समझा जायगा।

दुर्योधन को अभिमान था। वह सब से पहले चन्दा भेदने के लिए आगे आया। उसने बाण चढ़ाया। इसी समय

द्रोणाचार्य ने पूछा—तुम्हे कड़ाह के तेल मे क्या दिखाई देता है ?

दुर्योधन ने कहा—मुझे सभी कुछ दिखाई दे रहा है। खम्भा, मोर-पंख, मैं, आप और मेरे आसपास खड़े हुए, मेरी हँसी करते हुए यह सब दिखाई दे रहे है। इसके अतिरिक्त मैं उस चन्दा को भी देख रहा हूँ, जो मेरे बाण का लक्ष्य है।

दुर्योधन का उत्तर सुन कर द्रोण ने कहा—चल, रहने दे। तू परीक्षा मे सफल न होगा। पहले तू अपना विकार दूर कर।

मगर अभिमानी दुर्योधन नही माना। उसने हर्ष के साथ मोर-पंख के चन्दे को, तेल-भरे कडाह मे देखते हुए बाण मारा। किन्तु वह लक्ष्य को भेद न सका। इसी प्रकार एक एक करके सभी कौरव इस परीक्षा मे अनुत्तीर्ण रहे।

कौरवो के पश्चात् पांडवो की बारी आई। युधिष्ठिर आदि चारो पांडवो ने अर्जुन को कहा—हम सब की तरफ से अकेले अर्जुन ही परीक्षा देगे। अगर अर्जुन इस परीक्षा मे उत्तीर्ण हुए तो हम सभी उत्तीर्ण है। अगर अर्जुन उत्तीर्ण न हो सके तो हम लोग भी अनुत्तीर्ण ही हैं।

आचार्य द्रोण पांडवों की बात सुन कर प्रसन्न हुए। उन्होंने कहा—परीक्षा में इन्हे उत्तीर्णता मिले या न मिले। मगर इन पाँचो का ऐक्य प्रशंसनीय है।

आखिर अर्जुन कड़ाह के पास आया। द्रोणाचार्य ने स्नेह से गद्गद होकर कहा—'मेरी शिक्षा की इज्जत तेरे हाथ है।'

अर्जुन ने विनम्रता प्रकट करते हुए कहा—गुरुदेव, अगर मैंने सच्चे अन्तःकरण से आपकी सेवा की होगी, आपका स्नेह सम्पादन किया होगा, तो आपकी कृपा से मैं उत्तीर्ण होऊँगा।

इस प्रकार अर्जुन ने तेल के कड़ाह में मोरपंख देखते हुए बाण साधा। द्रोणाचार्य ने पूछा—तुम्हें कड़ाह में क्या दीख पड़ता है?

अर्जुन बोला—मुझे मोरपंख का चन्दा और अपने बाण की नोंक ही दिखाई दे रही है। इसके सिवाय और कुछ भी नजर नहीं आता।

आचार्य ने कहा—तेरी तरफ से मुझे आशा बँधी है। बाण चला।

गुरु की आज्ञा पाकर अर्जुन ने बाण लगाया। बाण लक्ष्य पर लगा और मोरपंख का चन्दा भिद गया।

इसी विद्या के प्रताप से अर्जुन ने पांचाली के स्वयंवर में राधावेध साधा था और पांचाली (द्रौपदी) प्राप्त की थी।

चन्दा वेध देने से पांडवों को तो प्रसन्नता हुई ही, साथ ही द्रोणाचार्य भी बहुत प्रसन्न हुए। अपने शिष्य की विशिष्ट सफलता से कौन गुरु प्रसन्न नहीं होता?

कहने का तात्पर्य यह है कि जिस एकाग्रता—एकनिष्ठा से या जिस ध्यान से अर्जुन ने मोरपंख का चन्दा बेधा था, उसी एकनिष्ठा के साथ ईश्वर का ध्यान करने से आत्मा को

ईश्वरत्व की प्राप्ति हो सकती है। बल्कि अर्जुन का लक्ष्य स्थूल था। परमात्मा मोरपंख के चन्दा की अपेक्षा भी बहुत अधिक सूक्ष्म है। अतएव अर्जुन ने जिस एकाग्रता को प्राप्त किया था, उससे भी अधिक एकाग्रता परमात्मा का ध्यान करने लिए अपेक्षित है। इतनी एकाग्रता प्राप्त करके जो ईश्वर का ध्यान करेगा उसे स्वयं ईश्वर बनने मे देरी नहीं लगेगी। जब आत्मा और परमात्मा के अतिरिक्त कुछ भी नजर नही आता, बल्कि आत्मा और परमात्मा भी एकमेक मालूम होने लगते है, तब एकाग्रता की पूर्ण सिद्धि होती है। इस प्रकार की एकाग्रता साधने वाला, फिर चाहे वह कोई भी क्यो न हो, परमात्मपद का अधिकारी बन जाता है।
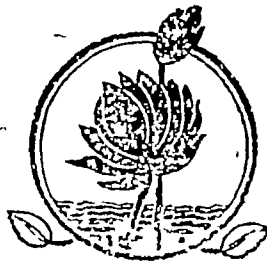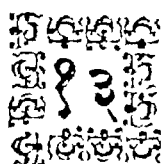
१३

विश्वास-बल

भगवतीसूत्र मे वर्णनाग नतुआ का उदाहरण है। वर्णनाग नतुआ श्रावक था और बेला-बेला पारणा करता था—दो दिन उपवास रख कर एक दिन भोजन करता था। कोणिक और चेडा का जो भयानक संग्राम हुआ था उसमे वर्णनाग नतुआ भी चेड़ा राजा का एक रथी था। यद्यपि वह तपस्वी श्रावक दुनियादारी से दूर सा रहता हुआ अपना जीवन व्यतीत करता था, फिर भी इतना स्वामी-भक्त था कि चेडा की ओर से युद्ध का निमन्त्रण पहुँचने पर उसने 'नाहीं' नहीं की। उसके मुख से यह नहीं निकला कि—'मैं संसार से अलग-सा रहता हूँ, मैं युद्ध मे न जाऊँगा। मुझे युद्ध से क्या प्रयोजन है?' उसने सोचा—'शान्ति के समय चाहे किसी काम के लिए नाहीं कर दूँ, किन्तु लड़ाई के समय नाहीं करना कायरता है। लोग श्रावक को कहीं कायर न समझ ले।'

वर्णनाग नतुआ सदा बेला-बेला पारणा करता था, पर रणभूमि में जाते समय उसने तेला किया। वह रथ में बैठ कर

युद्ध के लिए चल दिया। उसने यह प्रण अवश्य कर लिया कि युद्ध मे मै उसी को मारूँगा जो मुझे मारेगा। जो मुझे न मारेगा उसे मैं भी न मारूँगा।

युद्ध मे कोणिक के सैनिक ने वर्णनाग नतुवा को बाण मारा। आघात के बदले प्रतिघात तो इसने भी किया, मगर वह बुरी तरह घायल हो गया। वर्णनाग नतुआ ने सोचा-'बस अब मेरा काम पूर्ण हुआ। अब मेरी गणना कायरो मे नहीं होगी और न मेरे कारण कोई श्रावको को बदनाम कर सकेगा।'

यह सोचकर वर्णनाग नतुआ अपना रथ लेकर जङ्गल मे चला गया।

इसका एक बाल-मित्र भी इस युद्ध में सम्मिलित हुआ था। वह भी घायल हो गया था! उसने देखा, मेरा मित्र बाण से घायल होकर जंगल की ओर जा रहा है। बस, वह भी अपना रथ लेकर उसके पीछे-पीछे जङ्गल की तरफ चल दिया।

वर्णनाग नतुआ में मित्र से बात करने की शक्ति भी नही रह गई थी। उसने परमात्मा का नाम लेकर ज्यो ही बाण खींचा, त्यों ही प्राण-पखेरू उड़ गये।

वर्णनाग नतुआ के मित्र ने सोचा-'मेरे मित्र ने जिस विधि से प्राण त्यागे हैं वह विधि मै नहीं जानता। लेकिन मेरा मित्र सच्चा, धर्मात्मा और ईश्वर का भक्त है। वह झूठी विधि हर्गिज कांम मे नही ला सकता।' इस प्रकार विचार कर सरल भाव से उसने संकल्प किया—'मेरे मित्र के सब नियम-धर्म मुझे भी हो।' इस प्रकार अज्ञात अपरिचित नियम-धर्म का आश्रय

लेकर उसने भी अपने शरीर से बाण खींचा और वह भी मर गया।

शास्त्र मे प्रश्न किया गया है कि इन दोनो मित्रो को कौन-कौन-सी गति मिली ? एक ने विधिपूर्वक नियम धर्म का अनुष्ठान किया था और दूसरे ने बिना किसी विधि के ही। तब इन दोनो की गति मे क्या अन्तर पडा ? शास्त्र मे इस प्रश्न का समाधान यह है कि वर्णनाग नतुआ प्रथम स्वर्ग मे गया है और उसका मित्र महाविदेह क्षेत्र मे जन्म लेकर मुक्त होगा।

भावना और विश्वास की प्रचण्ड शक्ति प्रदर्शित करने के लिए यह उदाहरण पर्याप्त है। वास्तव मे सत्य पर सम्पूर्ण श्रद्धा होने और असत्य को आग्रहपूर्वक त्यागने मे ही एकान्त कल्याण है। सब महापुरुषो के जीवन के अन्तस्तत्त्व में यही तथ्य समाया हुआ है।

ग्राम--सेवा❀

मगध देश के एक गाँव मे एक किसान के घर पुत्र का जन्म हुआ। पुत्र का जन्म मघा नक्षत्र में हुआ था, अतएव उसका नाम भी 'मघा' रक्खा गया। जैन साहित्य मे आये हुए उल्लेख से ज्ञात होता है कि प्राचीन काल के लोग उसी नक्षत्र के आधार पर नाम रखते थे, जिस नक्षत्र मे बालक का जन्म होता था। आज नाम रखने की प्रथा और ही प्रकार की चल पड़ी है, पर पहले ऐसी प्रथा नही थी।

मघा पूर्व जन्म के विशेष संस्कार लेकर जन्मा था। उसकी आकृति-प्रकृति को परखने वाले लोग कहा करते–बालक त्यन्त होनहार है। भविष्य मे उसके द्वारा कोई उत्तम कार्य
ा।

❀ एक बौद्ध जातक कथा।

मघा की बाल-क्रीड़ा उसके संस्कारो के अनुसार समाप्त हुई। वह कुछ बड़ा हुआ। अब वह पहाड, चन्द्र, सूर्य, नदी, सरोवर, वृक्ष, आदि निसर्ग की रचना देखकर आनन्द अनुभव करने लगा।

ज्ञानी और अज्ञानी के बीच यह एक महान् अन्तर है कि अज्ञानी जिन पदार्थों को अपने विनोद और आमोद-प्रमोद का साधन समझता है, ज्ञानी उन्ही पदार्थों को अपनी जीवन-साधना का कल्याणकारी साधन मानते है। किसी झरने का झर-झर शब्द सुनकर साधारण आदमी उसे विनोद का कारण मानकर थोडी देर खुश हो लेता है। परन्तु ज्ञानी जन उसी ध्वनि को सुन कर गम्भीर विचार करते है। वे सोचते है—'यह झरना, मेरे आने से पहले भी झर-झर ध्वनि कर रहा था, इस समय भी यही ध्वनि कर रहा है और जब मैं यहॉ से चल दूँगा तब भी इसका यह नाद निरन्तर जारी रहेगा। यह झरना न निन्दा की परवाह करता है न प्रशसा की; यह तो इसी प्रकार संगीत करता हुआ सागर मे समा जाता है। एक ओर मैं हूँ, मनुष्य—प्रकृति का राजा! जो जरा-सी प्रशसा सुनकर फूल कर कुप्पा हो जाता हूँ और तनिक-सी निन्दा सुनते ही ज्वालाएँ उगलने लगता हूँ।' ज्ञानी-जन प्रकृति के प्रगाढ़ परिचय से ऐसा पाठ सीखते है।

मघा भी प्रकृति की पाठशाला मे ऐसा पाठ पढ़ने लगा। विशाल सरिताएँ देखकर वह सोचने लगता—'यह गगा-यमुना आदि नदियॉ कह रही है—हम पहाड़ में से निकल कर समुद्र से मिलने जा रही हैं। मार्ग मे हमे जितनी गंदगी मिलती है, उसे अपने में मिलाकर अपना-सा रूप प्रदान कर देती हैं। गन्दगी

से मिलकर हम स्वयं गन्दी नहीं बनतीं, वरन् गन्दगी को ही अपनी पवित्रता दान कर अपनी-सी बना लेती है अर्थात् गन्दगी भी हमारे संसर्ग से पवित्र बन जाती है।'

इस प्रकार प्रकृति से शिक्षा पाकर मघा ने निश्चय किया—जैसे प्रकृति अपना कर्त्तव्य निरन्तर पालन करती रहती है, इसी प्रकार मैं भी अपने कर्त्तव्य का अप्रमत्त भाव से पालन करूँगा।

इस प्रकार निश्चय करता हुआ मघा बड़ा हो गया। वह अपने हाथ मे झाड़ू लेकर अपना और अपने पड़ौसियो का आँगन झाड-बुहार कर साफसुथरा कर दिया करता। मघा, यह काम किसी की जोर-जबर्दस्ती से नहीं, निष्काम भावना से करता।

मान लीजिए, नगर मे जाने के दो मार्ग हैं—एक गन्दा है, दूसरा साफ है। तुम साफ रास्ते से जाना पसन्द करोगे, पर जिन्होने उसे साफ किया है उन्हे पसन्द नहीं करोगे—उनसे घृणा करोगे। यह कितनी बडी विडम्बना है।

मघा किसी आशा से प्रेरित होकर नहीं, पर निष्काम भाव-से अपना और अपने पडौसी का आँगन साफ करता था। मघा के इस कार्य से उसके घर वाले आग-बबूला हो उठते और उसे उलहना देते। इतना ही बस न था। कोई-कोई अपढ़ घर वाला तो उसे थप्पड़ भी जड देता। यह सब होने पर भी मघा अपने कर्त्तव्य मे तन्मय रहता और प्रकृति से पाई हुई शिक्षा की परीक्षा हो रही है, यह मानकर सभी कष्टों को शान्तिपूर्वक सह लेता। प्रारंभ मे तो वह अपना और अपने पड़ौसी का ही

आँगन साफ करता था, पर ज्यो-ज्यो उसकी शक्ति का विकास होता गया; त्यों-त्यो उसने अपना कार्य-क्षेत्र भी बढ़ा दिया।

मघा की शक्ति ज्यो-ज्यो बढ़ती गई, त्यो-त्यो वह अधिक विस्तृत कार्य करने लगा। लोग आध्यात्मिकता के नाम पर क्रिया की अवहेलना करते है, परन्तु सच्चा ज्ञान वही है जिसमे सक्रियता हो। मघा को जो ज्ञान था, वह उसके अनुरूप कार्य भी करता था। मघा कहने की अपेक्षा कर दिखाने मे विश्वास करता था। गली-कूचों मे पड़े हुए कचरे को वह उठाता और बाहर फैंक आता था। गलीच जगह को साफ कर देता था। कई बार गलियो मे रहने वाली स्त्रियाँ, साफ की हुई जगह में कूडा-कचरा फैंक देती थीं, और मघा उसे उठा कर बाहर डाल आता था। ऐसा करते समय मघा को जरा भी क्रोध न आता था। उल्टे, वह समझता कि यह स्त्रियाँ मेरे कार्य मे वेग ला रही हैं। स्त्रियाँ मघा के इस मूक और निस्वार्थ सेवा-भाव को देखकर लज्जित हो जातीं और दुबारा ऐसा अनुचित कार्य न करतीं। उनमें से कोई-कोई तो उसके कार्य मे हाथ बँटाने लगी।

मघा ज्यो-ज्यो अपना कार्य-क्षेत्र बढ़ाता गया त्यों-त्यो उसकी निन्दा का क्षेत्र भी बढ़ता चला गया। जहाँ-कहीं लोगो की टोली जमा होती वहीं मघा की निंदा होने लगती। लोग निंदा से घबराते हैं। अगर निंदा से घबराहट न हो तो वह पौष्टिक पदार्थ की तरह शक्ति प्रदान करती है। मघा निंदा से जरा भी विचलित नहीं होता था। वह अपने विकास में निंदा को भी एक साधन ही समझता था।

लोगों में होती हुई अपनी निन्दा सुनकर मघा सोचता— अब मेरे काम की कद्र हो रही है। ऐसा सोचकर वह नया

उत्साह और नई स्फूर्ति प्राप्त करता। घबराहट उसके पास तक न फटकने पाती।

मघा की निन्दा सुनकर वहाँ के दो नवयुवको ने आपस मे विचार किया—'क्यो मघा की निन्दा की जाती है? उसने कौनसा निन्दनीय दुष्कर्म किया है? क्या वह मदिरापान करता है? वेश्यागमन करता? जुआ खेलता है? वह क्या चिलम या हुक्का,पीता है? (वर्तमान युग की भाषा मे) क्या बीडी-सिगरेट पीता है? या होटलो मे जाकर चाय और सोडा-लेमन डकारता है? मघा इनमे से किसी भी व्यसन का का सेवन नहीं करता। इसके अतिरिक्त और कोई बुराई भी उसमे नहीं पाई जाती। फिर लोग क्यो उसे बदनाम करते है? इस गाँव के सभी लोग तो मघा के निन्दक हैं, फिर किसके सामने उसके सत्कार्य की प्रशंसा की जाय? सारा गाँव मघा के कार्य को घृणा की दृष्टि से देखता है, तो देखता रहे, मगर उसका कार्य वस्तुत लोकोपयोगी है और इसलिए उसके कार्य को वेग अवश्य मिलना चाहिए।''

इस प्रकार विचार कर दोनो नवयुवक मन ही मन मघा की सराहना करने लगे। एक नवयुवक ने दूसरे से कहा—भाई, इस विषय मे तुम्हारा और मेरा मत एक है। और एक मत होने से हम ११ के समान बन गये है। यदि हम दोनो मघा के साथ मिल जाएँ तो एक सौ ग्यारह के बराबर कार्य कर सकेंगे। अगर तुम अन्त:करण से मघा के कार्य की सराहना करते हो, तो उस ``ह को वचन तक ही सीमित नहीं रखना चाहिए। चलो मघा के साथ हम लोग मिल जावें और अपने अन्त.करण की भावना एवं वचन को क्रिया का रूप प्रदान करें।

दूसरे नवयुवक ने उत्तर देते हुए कहा—मघा के साथ मिलने की क्या आवश्यकता है ? वह जो कार्य कर रहा है, वही कार्य हम लोगों को भी आरम्भ कर देना चाहिए।

पहला युवक—तो क्या मघा अपना गुरु बनेगा ?

दूसरा युवक—वेशक !

पहला युवक—सुनते है, गुरुपद का अधिकारी वही हो सकता है जिसने घर-द्वार त्याग दिया हो और जो भिक्षा-वृत्ति करके जीवन-निर्वाह करता हो। मघा ने तो अभी घर-द्वार नही त्यागा है। इस अवस्था मे उसे गुरुपद पर किस प्रकार स्थापित किया जा सकता है ?

दूसरा युवक—अगर हमे गृह-त्याग कर निवृत्तिमार्ग पर चलना हो तो गृह-त्यागी—अनगार पुरुष को ही गुरु बनाना चाहिए। जब हम प्रवृत्तिमय जीवन व्यतीत करना चाहते है तो मघा के समान सत्य प्रवृत्ति करने वाले गुरु की ही आवश्यकता है। मघा जैसे सत्पुरुष को गुरु बनाने से ही, 'प्रवृत्ति' करते हुए भी अन्तरात्मा को पवित्र मार्ग पर लगाया जा सकता है।

इस प्रकार विचार-विनिमय करके दोनो युवक मघा के पास आये। मघा उस समय सफाई के काम मे लगा था। दोनो युवको ने मघा को प्रणाम किया। विनीत भाव से मघा ने उत्तर दिया—"भाइयो, मैं एक साधारण मनुष्य हूँ। मुझे तो तन ढँकने को पूरे कपड़े भी नसीब नही होते। मुझ जैसे गरीब को आप किसलिए नमस्कार करके आदर दे रहे है ?"

मघा की इतनी अधिक नम्रता देख दोनो युवक चकित रह गये और भीतर ही भीतर उसकी निरभिमानता की प्रशंसा करने लगे।

मघा ने दोनो युवको को लक्ष्य कर कहा—भाइयो, जैसा मेरा काम है वैसी ही मेरी पोशाक है। कीमती कपड़े पहन कर मै अपना काम करता तो मेरा काम पार ही न पड़ता। कारण यह है कि कीमती कपडे आलस्य की वृद्धि करते है, और आलस्य बढ़ाने वाले बहुमूल्य वस्त्र कार्यकर्ताओं को नही मोहते। इसी कारण मैंने अपनी पोशाक, अपने कार्य के अनुरूप ही रख छोड़ी है।

मघा की यह सीधी और सच्ची बात सुनकर दोनो युवक मित्र अत्यन्त प्रसन्न हुए। उन्होने प्रसन्नता के साथ मघा से कहा-'हम दोनो आपके शिष्य बनने आये है। हम आपकी आज्ञा के अनुसार ही वर्ताव करेगे।

मघा ने कहा—भाइयो, आप मेरे शिष्य बनना चाहते है, पर मेरे पास क्या धरा है? मै ऐसी भी स्थिति मे नही हूँ कि आपको खाने के लिए रोटी का टुकड़ा दे सकूँ। मेरे घर वाले बड़ी मुश्किल से मुझे भोजन देते है। वे कहते है-'काम तू औरो का करता है और खाने को यहाँ आ धमकता है।' पर मै उनके इन कटु वाक्यो की परवा नही करता। मै सोचता हूँ-घर वाले मुझे रूखी-सूखी रोटी के साथ यह वाक्य रूपी घी भी दे रहे है। जब मै अपने घर का काम करता हूँ तो मेरे घर वालो को खुशी होती है। वे सिर्फ दूसरो का काम कर देने से नाराज होते हैं। पर मुझे अपना और पराया दोनो का काम करना आनन्दप्रद मालूम होता है। मेरे और मेरे घर वालो के विचार मे यही बड़ा भारी भेद है। हाँ, तो मैने अपनी स्थिति साफ-साफ आपके सामने रख दी है। क्या फिर भी आप मेरे शिष्य बनना पसन्द करते है?

युवको ने कहा—आपने हृदय खोल कर जो बाते कही है, उन्हे हम लोग सुन-समझ चुके है। हम आपके चरणो का अनुसरण करना चाहते है और इसी कारण आपके शिष्य बनना चाहते है।

मघा ने युवकों से कहा—'अगर आप निखालिस दिल से मेरे शिष्य बनना चाहते है तो आपको मेरी आज्ञा का अनुसरण करना होगा। आप यह स्वीकार करते हैं ?'

युवको ने अपनी हार्दिक स्वीकृति जताई।

मघा का यह कथन सुन दोनो युवक आपस मे कहने लगे—'गुरु हो तो ऐसा हो, जो चेला मूण्डने के लिये दूसरे को झूठे प्रलोभन मे न डाले।' इस प्रकार विचार कर दोनो ने मघा से कहा—'आपका स्पष्ट कथन सुनकर शिष्य बनने की हमारी भावना अधिक बलवती हो गई है। कृपा कर अब हमे गुरु-मंत्र सुनाइए और दीक्षा दीजिए।'

मघा ने कहा—भाइयो ! मै पढा-लिखा तो हूं नही, फिर तुम्हे क्या गुरु-मंत्र सुनाऊँ।'

युवक—'पढ़ो-लिखो के मन्त्र तो हमने बहुत बार सुने हैं। उन्हे सुनते-सुनते ऊब से गये है। अब हमे आप सरीखे कर्त्तव्य-परायण व्यक्ति का मंत्र सुनने की उत्सुकता है। अतः अपने कर्त्तव्य का मन्त्र हमे सुनाइए। बताइए, आपका शिष्य बन जाने पर हमे क्या कार्य करना होगा ?

मघा—सुनो ! तुम्हे जो कुछ करना होगा वह बतलाता हूँ।

१—'जो काम अपने लिए अनुकूल हो वह दूसरो के लिए करना चाहिए और जो अपने लिए प्रतिकूल हो वह दूसरो के लिए भी नही करना चाहिए।'

मघा बोला—प्रकृति से मैने यह पाठ सीखा है। मुझे लगा—साफ-सुथरा रास्ता मुझे पसन्द है तो दूसरे लोग रास्ता साफ करें और मै उस पर चलूॅ, इसकी अपेक्षा क्या यही संगत और समुचित न होगा कि मै स्वयं रास्ता साफ करूँ। 'जो बात अपने लिए अनुकूल हो वह दूसरो के लिए भी करना' यह मेरी पहली शिक्षा है।

२—'ससार के समस्त प्राणियो को अपने समान ही समझना' यह मेरी दूसरी शिक्षा है। ऐसा नही होना चाहिए कि अपने लिए तो पाँच-पाँच दस गिने और जब दूसरो की बारी आवे तो ग्यारह गिनने लगे। ऐसा करने वाला आत्म-वंचना तो करता ही है, साथ ही विश्वासघात भी करता है और अपनी आत्मा को अपराधी बनाता है। इसलिए जैसा व्यवहार तुम अपने लिए चाहते हो वैसा ही तुम दूसरो से करो। तुम्हारे पास दो कोट है। उनमे से एक फालतू है। अगर तुम्हारे सामने कोई गरीब आदमी सख्त सर्दी का मारा थर-थर कॉप रहा हो, तो अपना फालतू कोट उसे दे देने की इच्छा तुम्हारे अन्तःकरण मे उत्पन्न होनी चाहिए। अगर तुम इस अवस्था मे उसे अपना कोट नही दे सकते, तो यह समझा जायगा कि तुम अब तक परायी पीडा को पहचान नही पाये हो। भोजन से तुम्हारा पेट ठस भर गया हो, फिर भी बची हुई रोटी किसी गरीब को देने की भावना तुम्हारे हृदय मे पैदा न हुई और रोटी सैक कर या सुखा रखकर दूसरे दिन खाने की तृष्णा बनी रही, तो

माना जायगा कि अभी तुम दूसरे की आत्मा को अपनी आत्मा के समान समझने मे समर्थ नहीं हो सके हो।

३—अगर तुम मेरे शिष्य बनना चाहते हो तो तुम्हें समस्त प्राणियो को आत्मा-तुल्य समझना होगा। इतना ही नहीं, तुम्हें सब प्रकार के दुर्व्यसनों से भी दूर रहना होगा, क्योंकि व्यसन के नशे मे कर्त्तव्य-अकर्त्तव्य का भान नहीं रहता। अतएव सब प्रकार के मादक पदार्थों से तुम्हे बचना होगा। जो पदार्थ बुद्धि को भ्रष्ट करते है, वे सब मादक पदार्थ है। कहा भी है:—

बुद्धिं लुम्पति यद् द्रव्यं मदकारि तदुच्यते।

जिन पदार्थों को सूंघने से, खाने से, पीने से बुद्धि भ्रष्ट या नष्ट होती है, वे सब मादक द्रव्य हैं। मादक कहे जाने वाले पदार्थों में ही मद हो सो बात नही है, हृदय की भावना में भी मद होता है। ग्रन्थो मे रावण को हजार विद्या वाला बतलाया गया है, फिर भी वह सीता को देखकर-बेभान हो गया। इस प्रकार भान भूल जाना हृदय का मद है। हृदय के इस मद से बचना अपेक्षाकृत अधिक कठिन होता है, पर तुम्हे इस मद से भी हमेशा बचते रहना होगा।

मवा ने युवकों को कर्त्तव्य-बोध कराते हुए कहा—जिन पदार्थों के सेवन से कृत्याकृत्य का भान नष्ट हो जाता हो, ऐसे पदार्थों का सेवन न करना, यह मेरा गुरु-मन्त्र है। यह मन्त्र उँगलियों के पौरो पर गिनने या जाप करने के लिए नहीं है। इसे अच्छी तरह याद रखकर कार्यरूप में परिणत करना होगा। मैंने यह निवृत्ति का मन्त्र समझाया है। इसके साथ ही प्रवृत्ति का मन्त्र भी तुम्हें सीखना है। वह मन्त्र यह है:—

४—'तुम्हे स्वामी वनकर नही, वरन् सेवक वनकर जन-समाज की सेवा करनी चाहिए । सेवा करते-करते अगर प्राणो का उत्सर्ग करना पड़ जाय तो वह भी प्रसन्नता पूर्वक करना चाहिए ।'

मघा ने जो शिक्षा वताई है उसमे किसी भी धर्म या दर्शन का विरोध नहीं हो सकता। जो व्यक्ति अपना जीवन-व्यवहार इस शिक्षा के अनुसार चलाता है, वह निस्सन्देह स्व-पर कल्याण कर सकता है।

मघा की इन तात्त्विक बातो को सुनकर युवक कहने लगे—'ईश्वर कहाँ है, यह सोचते-सोचते हम थक गये, पर अब ज्ञात पड़ता है, वह आपके भीतर विराजमान है। आपके निर्मल अन्तरःकरण मे जिन उदार भावो का वास है, उन भावो मे ईश्वर का दिव्य दर्शन हो रहा है।'

मघा के दिल की बाते सुनकर दोनो युवक आश्चर्य के साथ आनन्द का अनुभव करने लगे। मघा के पैरो पडकर, गद्गद होकर बोले-'हमारे सिर पर आशीर्वाद का हाथ रखिए। हम लोग आपके शिष्य बनना चाहते है। हम प्रतिज्ञा करते है कि हमारी प्रवृत्ति आपके आदेश के अनुसार ही होगी।'

मघा खडा हुआ। दोनो को छाती से लगाया और अपने शिष्य के रूप मे स्वीकार कर लिया। इस प्रकार मघा को दो शिष्य मिले। मघा अब षट्-भुज (छह भुजा वाला) हो गया।

मघा को दो साथी मिले, पर इससे वह जरा भी आलसी न वना। वह अब पहले से भी अधिक काम करता था। उसे

यह भलीभाँति ज्ञात था कि मै जैसा व्यवहार करूँगा, मेरे शिष्य भी मेरा अनुकरण करके वैसा ही व्यवहार करेंगे। ऐसा विचार कर वह आदर्श कार्य करता था। वह बहुत वार सोचा करता—'हे प्रभो! इन युवको के अन्तःकरण मे किसने प्रकाश की किरणे भरी है कि ये मेरे साथी बन गये है? दयाधन! जान पडता है, यह तुम्हारे असीम अनुग्रह का ही परिणाम है।'

कुछ दिनो बाद पहले वाले दो युवको की तरह तीस युवक और मघा के शिष्य बन गये। अब कुल बत्तीस शिष्य और एक स्वय, इस प्रकार तेतीस जने हो गये। मघा सुबह मे तडके ही उठ बैठता। अपने शिष्यो के साथ पहले परमात्मा की प्रार्थना करता और फिर दिन भर के काम का बँटवारा कर देता। वह किसी को कहता-तुम शराबियो से अनुनय-विनय करके, शराब पीने की हानियाँ समझा कर, उन्हें शराब पीने से रोकना। किसी को गांव के दीन-दुखियो और रोगियो की सार-सँभाल का काम सौंपता, किसी को गाँव के रास्ते साफ करने का और किसी को जनता का हित करने वाली शिक्षा देने का काम सौंपता था।

निष्काम भाव और हृदय की सच्ची लगन से किये जाने वाले कार्य का प्रभाव बिना पडे नही रहता। मघा की निष्काम भावना के कारण गाँव भर मे एक भी शराबी वेश्यागामी और चोर न रहा।

मघा के सतत प्रयास से उस गाँव मे से मदिरा, परस्त्री-गमन और चोरी आदि भूत भाग गये। मघा ने उस गाँव के निवासियो को यह भी सिखाया—तुम इतना अधिक खर्च मत

रक्खो जिससे तुम्हे कर्ज लेना पड़े। आय के परिमाण मे व्यय करो। अनिवार्य आवश्यकता के समय कर्ज लेना पड़े तो उसे नियत समय से पहले ही चुका डालो। अगर कर्ज सिर पर चढ़ा लोगे और समय पर चुक न सकेगा तो लेनदार तुम पर दावा करेगा। इसमें तुम्हारा पतन है। इस प्रकार लोगो के घर-घर जाकर मघा ने यथासमय कर्ज चुका देने के लाभ और न चुकाने के नुकसान उन्हे समझाए। इसके अतिरिक्त लोगो मे आपस मे कभी कोई रगडा-झगडा हो जाता, तो मघा या उसके शिष्य बीच-बचाव कर देते थे। अब मघा पर लोगो की आस्था बढ़ चली थी और लोग उसका कहना मानने लगे थे।

इस प्रकार मघा ने और उसके शिष्यो ने अपना जीवन लोक-सेवा के लिए समर्पित कर दिया। लोग भी उनके कार्य मे सहायता पहुँचाने लगे। गाँव मे इतनी अधिक शान्ति और अमन-चैन फैल गया कि जो लोग गाँव छोड़कर दूसरी जगह जा बसे थे वे लौटने लगे। पहले पुरुष स्त्रियों को बहुत कष्ट देते थे पर मघा के उपदेश से स्त्रियों ने भी शान्ति का श्वास लिया। जो स्त्रियाँ पहले मघा के काम मे रोड़ा अटकाती थीं, वही अब मघा को आसीस देने लगीं और अपने किये पर पछताने लगीं। वे कहतीं—'हम तो मघा की साफ की हुई जगह मे कचरा बिखेर देती थीं, पर वह चुपचाप उसे उठा ले जाता था। मघा ने बाहर का ही कचरा साफ नहीं किया है किन्तु हमारे हृदय का कचरा भी साफ कर दिया है। परमात्मा इस पुण्यजीवी मघा को रायु करे।'

इस प्रकार मघा के लिए लोग परमात्मा से प्रार्थना करते और प्रभात मे उसके दर्शन करने आते थे। पर मघा अपनी

कीर्ति से फूल जाने वाला व्यक्ति न था। वह तो सदा की भाँति अपने काम मे लीन रहता था। उसके पास इतना समय ही न था कि लोगो को दर्शन देने के लिए वह कही एक जगह बैठा रहता। लोग जब उसके दर्शन करने आते तो वह यही कहता—आप लोग अपने घर-द्वार को और हृदय को साफ स्वच्छ रखिए, यही मेरा सच्चा दर्शन है।

मघा की सत्यवृत्ति से लोगो मे अपूर्व शान्ति फैल गई। इस कारण मघा सब का प्रेम-पात्र बन गया। पर उस गाँव मे तीन प्रकार के पुरुष ऐसे थे जिन्हे मघा अप्रिय ही नहीं वरन् कडुआ जहर सा लगता था। वे यह थे—शराब बेचने वाले, वेश्याएँ और कचहरी के राजकर्मचारी। ये लोग मघा की सत्य-वृत्ति से बहुत नाराज रहते थे। शराब की विक्री एकदम बंद हो जाने के कारण शराब बेचने वाले की आमदनी मारी गई थी। वेश्यागामियों का अभाव हो जाने से वेश्याएँ नाराज रहती थी और झगडा-फसाद न होने के कारण राजकर्मचारी दिन भर हाथ पर हाथ धरे बैठे रहते थे। इस प्रकार ये लोग मघा पर दाँत पीसते रहते थे और किसी उपाय से मघा यहाँ से भाग जाय तो बला टले और हमारा धंधा फिर से चमक उठे, इसी उधेड़-बुन मे लगे रहते थे। मघा को गाँव से हटाने के लिए वे प्रयत्न करने लगे।

अच्छा काम करने वाले का भी विरोध करने के लिए कोई न कोई खडा हो जाता है। जैसे दिन की थकावट दूर करने के लिए रात की जरूरत है उसी प्रकार सत्कार्य का विरोध करने वालो की भी आवश्यकता है। ज्ञानी-जन इस प्रकार के विरोध से या निंदा से रंच मात्र भी नही घबराते, बल्कि विरोध

को अपने कार्य का सहायक मानकर दुगुने उत्साह से उसे सफल बनाने में जुट पड़ते हैं। वे संकटों को परमात्मा की प्रार्थना करने का प्रेरक मान कर प्रसन्न होते हैं।

आखिर उन्होंने एक मंडल बनाया और मघा को दूर करने के उपाय सोचे। अन्त में राजा की शरण लेना निश्चित हुआ। पर उसका और उसके शिष्यों का कोई अपराध भी तो होना चाहिए ? राजा से निर्वासन के लिए कहा जायगा तब वह कहेंगे—'मघा साधु पुरुष है, उसे गाँव बाहर क्यों निकाला जाय ?' तब राजा के सामने यह कहना ठीक होगा—'मघा और उसके सब चेले उचक्के और लुटेरे हैं और उसके कारण प्रजा को अत्यन्त त्रास हो रहा है। उनके त्रास के आगे राज-सत्ता भी झख मारती है।' यह सुन कर राजा, मघा के ऊपर कुपित होंगे और हमारी योजना सफल हो जायगी, क्योंकि राजा हमारे ऊपर विश्वास करते हैं।

इस प्रकार निश्चय करके, राज-कर्मचारियों ने अपना संगठन और सुदृढ़ करने का निश्चय किया। संगठन-शक्ति अच्छे कार्य के लिए भी प्रयुक्त की जा सकती है और किसी अच्छे कार्य में रोड़ा अटकाने के लिए भी प्रयुक्त की जा सकती है, क्योंकि शक्ति वह दुधारी तलवार है जिससे रक्षण और भक्षण दोनों काम लिये जा सकते हैं। राजकर्मचारियों के स्थापित किये हुए मण्डल में पाप-प्रवृत्तियों द्वारा धन उपार्जन रने वाले कुछ लोग और शामिल हो गये। सब ने मिलकर ा और उसके शिष्यों के विरुद्ध एक आवेदन-पत्र तैयार किया और राजा के पास ले गये। और सब कर्मचारी पुकार मचाने लगे-'अन्नदाता ! राज्य में अत्यन्त विग्रह फैल गया है।

चारो ओर राज्य मे लुटेरों ने उत्पात मचा रक्खा है। प्रजा इससे बहुत दु:खी हो गई है। इस त्रास को मिटाने के लिये प्रजा ने हमे यह निवेदन-पत्र लेकर आपकी सेवा मे भेजा है। इसे पढ़कर उचित प्रबंध करने की कृपा कीजिए।'

मगध-नरेश मदिरा के नशे मे चूर था उसने न कुछ सोचा, न विचारा और राजकर्मचारियो की बातो पर सहसा विश्वास करके तत्काल हुक्म सुना दिया। उन्हे जाँच-पड़ताल करने की आवश्यकता प्रतीत ही नहीं हुई। राजा ने कहा-'सेना की एक टुकड़ी ले जाओ और राज-विद्रोहियो को पकड़ मँगवाओ।' राजा का यह नादिरशाही हुक्म सुनकर राजकर्मचारियों के हर्ष का पार न रहा और सभी 'मेरी युक्ति काम कर गई' इत्यादि कहते हुए अपनी-अपनी बडाई करने लगे।

रास्ते मे कर्मचारियों ने सेना-नायक को सूचित कर दिया था कि—'देखिए, दूसरे किसी भी आदमी की न तो आप बात सुने, और न किसी से कुछ पूछने के लिए रुके। अगर आप ऐसा न करेगे तो बदमाशो को पकड़ना असंभव हो जायगा। हम जिसकी ओर संकेत करे, बस उसी को गिरफ्तार कर लीजिए। अगर हम प्रगट रूप से उन बदमाशो के नाम आपको बताएँगे तो हमारी जान की खैर नहीं। ये बदमाश बहुत चालाक है। इन्होने गाँव वालो को भी विद्रोही बना दिया है। राज-मर्यादा की उन्हे रंचमात्र परवाह नहीं है। अतएव किसी के कहने पर कान न देकर जिसकी ओर इशारा किया जाय, उसी को आप गिरफ्तार करते जाइए।'

कच्चे दिल का कोई आदमी सशस्त्र सेना के आगमन की बात सुनते ही घबड़ा उठता है, पर सभी कच्चे दिल का

आदमी नही था। वह जो सत्कार्य कर रहा था उसमे उसका अटूट विश्वास था। वह किसी का डिगाया डिगने वाला नही था। जब उसने अपने पकड़ने के लिए सशस्त्र सेना के आने का समाचार सुना, तो वह सोचने लगा—'मेरी परीक्षा का समय आ पहुँचा है।' उसने अपने साथियो को बुलाकर कहा- आज हम सब की परीक्षा का समय आ गया है। अब छोटे-छोटे काम छोड़ो। अब हमे एक महत्वपूर्ण कार्य करना है। छोटे-छोटे कार्य करते बहुत दिन बीत गये है। अब एक बड़े कार्य मे हाथ डालना होगा।

इस प्रकार अपने साथियो को सावधान करके मघा राज कचहरी के आगे जा बैठा। उसने अपने शिष्यों से फिर कहा- 'हम लोगो को पकड़ने के लिए हथियारो से लैस सेना आ रही है। अब तुम क्या करोगे ?'

शिष्यो ने कहा—'आप गुरु है। हम आपके शिष्य है। जहाँ गुरु-शिष्य का पवित्र नाता होता है, वहाँ तर्क-वितर्क को स्थान ही नहीं रहता। तर्क-वितर्क करना पंडितो का काम है, हमारा नहीं। आप जो-कुछ करने को कहे, वही हम करने को तैयार है।'

मघा—'तुम सबने मिलकर तो अकेले मुझ पर ही सारी जिम्मेदारी डाल दी है। तो मुझे यही कहना है कि अब हमे एक महान् कार्य करना है। अतएव मै जो करूँ वही तुम सब भी रते चलना। ऐसा करने मे न तो तुम डरना और न पीछे पैर ा। मैं तुम सबसे आगे रहूँगा। बस, दृढ़ प्रतिज्ञा करो तुम सब मेरा ही अनुकरण करोगे, मै जो कुछ करूँगा वही तुम भी करोगे।'

शिष्य—'हम लोग तो सब-कुछ अपने सिर ओढ़ लेना चाहते थे और आपको सब प्रकार के संकटो से बचा लेना चाहते थे, पर जब आप हमारे आगे रहने वाले हैं तो हम आपके पीछे चलने मे क्यों आनाकानी करने लगे ?'

जैसे युद्ध में सच्चा सेनापति आगे रहता है, उसी प्रकार कष्ट-सहन करने मे सच्चा सेवक सदा आगे रहता है।

मघा अपने शिष्यों के साथ न्यायालय के सामने बैठा ही था कि सेना आ पहुँची। राजकर्मचारियो ने सेना-नायक से कहा—'देखिये, सब बदमाश इकट्ठे होकर वहाँ बैठे हुए हैं। वे इतने लापरवाह हैं कि सेना से भी नहीं डरते। वे बहुत बहादुर और निडर है, अतएव उन्हे पकड़ते समय सावधानी रखने की आवश्यकता है।'

सेना-नायक ने कहा—'यह बहुत अच्छा हुआ, जो उन्हे खोजने के लिए हमें भटकना नहीं पड़ा।'

राजकर्मचारी बोले—'हमें भय है, ये लोग कहीं आपके ऊपर हमला न कर बैठें।'

सेना-नायक ने उत्तर दिया—'हम लोग इतने कायर नहीं कि उनके हमले से भाग खड़े हों। हम लोग शूरवीर हैं। इसके अतिरिक्त महाराज ने हमे अधिकार दे रक्खा है कि हमला होने की हालत में हम गोली चला सकते हैं।'

एक ओर जहाँ ऐसी शूरवीरता बघारी जा रही थी, वहाँ दूसरी ओर मघा अपने शिष्यो को समझा रहा था—'तुम्हे

पूर्ण शान्ति रखनी चाहिए। जरा भी शान्ति भग न होने देना और जैसा मै कहूँ, वैसा ही करना।'

सैनिक मघा और उसके साथियो के सन्निकट आ पहुँचे। उन्हे देखते ही सैनिक आपस मे कहने लगे—'ये तो विद्रोही से नही जॅचते। इनकी मुख-मुद्रा पर विद्रोह की रेखा तक दिखाई नही देती। जो कुछ हो, हमे आज्ञा-पालन करना है। इनके विद्रोही होने न होने का उत्तरदायित्व हम पर नही है। यह उत्तर-दायित्व तो इन राजकर्मचारियो पर है।'

सेना-नायक ने मघा और उसके शिष्यो से कहा—'तुम लोगो ने गाँव मे बडा जुल्म ढाया है। अब विलम्ब किये बिना फौरन ही हथकडी-बेड़ी पहन लो और हमारे साथ चलो। महाराज ने तुम्हे गिरफ्तार कर लाने का आदेश दिया है।'

सेना-नायक की बात सुनते ही मघा और उसके साथियो ने अपने-अपने हाथ लम्बे कर दिये। सैनिको ने उन्हे हथकड़ी पहना दी। इसके बाद बेडी पहनने को कहा गया तो सब ने पैर लम्बे कर दिये। उनके पैर बेडियो से जकड दिये गये। हथकड़ियाँ और बेडियाँ पहना कर सैनिक ऐसे प्रसन्न हुए मानो बड़ा जग जीत लिया हो। इधर मघा और उसके शिष्य सत्य के आभूषण पाकर प्रसन्न हुए। चोरी, अत्याचार या अन्याय करके हथकडी-बेडी पहनना बुरी बात है, पर चोरी, अत्याचार या अन्याय का प्रतिकार करने के उपलक्ष्य मे हथकड़ी-बेड़ी पहननी पडे तो सच्चे सेवक को इन्हे 'सेवा के आभूषण' समझकर प्रसन्न होना चाहिए। हथकड़ी-बेड़ी ही सच्चे सेवक के सर्वश्रेष्ठ आभूषण है।

सैनिको ने जब मघा और उसके शिष्यो को गिरफ्तार करके हथकड़ी-बेड़ी पहनाई, तब तक गाँव-भर के लोग जमा हो गये थे। वे सब मघा की ओर एक इशारे की प्रतीक्षा करते हुए देख रहे थे। मघा एक इशारा करे, और सारी फौज को मार के मारे भागने की जगह न मिले। सेना कदाचित् हमे मारने दौडेगी तो भी कितनो को मारेगी? मघा ने जनता के भाव समझ लिये। उसने भड़की हुई भीड़ मे कहा—'अगर आप लोग हमारा हित चाहते है तो जरा भी अशान्ति न होने दें। हम आपसे यही सहायता चाहते है कि आप सब लोग एकदम शान्त रहे। अगर आपने शान्ति-भग की, तो इतने दिनों के किये पर पानी फिर जायगा और हमारे साथ आपका भी अहित होगा। अतएव सब की भलाई के खातिर आप सब लोग पूर्ण रूप से शान्त रहे।'

सैनिक यह अद्‌भुत और अपूर्व दृश्य देखकर आश्चर्य मे पड गये। यह सब है क्या मामला? उनकी समझ से कुछ न आया। इतने अधिक शान्त मनुष्यो को विद्रोही कैसे करार दिया गया है? उन्होने सोचा—हमारा कर्त्तव्य आज्ञा-पालन है।

सेना-नायक ने मघा और उसके साथियो से चलने को कहा। तेतीसो सेवक हथकड़ी-बेडी खनखनाते हुए धीरे-धीरे रवाना हुए। उनकी बेड़ियो की आवाज बीकानेरी स्त्रियो के गहने की झन्कार-सी सुनाई पडने लगी। लोग उनको हथकडी बेडी पहने जाते देख आपस मे कहने लगे—'राज्य-शासन कैसा अत्याचारी और राक्षसी है, जो ऐसे सत्पुरुषो को भी ऐसी असह्य यातानाएँ दे रहा है।' ग्राम-वासियो को दुखी होते देख

मघा ने कहा—'भाइयो, आप दुखी न हो। हम लोग अकेले नहीं है। हमारे साथ परमात्मा भी है।'

जब सैनिक मघा के दल को लेकर रवाना हुए तो गाँव वालो मे से कितनेक रोने लगे, कितनेक चीख मारने लगे और कुछ समझदार लोग दूसरो को समझाने लगे—'हमे घबड़ाना नही चाहिए। आज रात्रि का अंधकार है तो कल सत्यरूपी सूर्य का आलोक होगा और आपत्तिरूपी अधकार हट जायगा। सत्य-सूर्य का उदय होने पर सब का कल्याण होगा। अतएव हमें रोना-चीखना नहीं चाहिए। धीरज रखना उचित है। अगर हम मघा का सचमुच सन्मान करते है, तो हमे मघा ने जिस मार्ग का प्रदर्शन किया है उसी मार्ग पर और अधिक दृढ़ता से अग्रसर होना चाहिए।'

मघा-दल को लेकर सैनिक राजग्रह आ पहुँचे। कर्मचारी पहले ही राजा के पास जा पहुँचे थे। उन्हें भय था, कही कोई राजा के कान न भर दे। अतएव राजा के पास आकर वे बोले 'महाराज! आपकी विजय हुई है। विद्रोही सब पकड़े गये हैं। भला, आपके प्रबल प्रताप के सामने उनकी क्या चल सकती है? आपकी सेना भी बहुत योग्य है। उसकी बदौलत वे लोग इतनी जल्दी पकड़ में आ सके है। यो उन्हे काबू में लाना कोई सरल काम न था।'

मघा और उसके साथियों को भयंकर अपराधियो की भाँति राजा के सामने उपस्थित किया गया। राजा, कर्मचारियो की बातो मे आ गया और अपराध की जाँच-पड़ताल किये बिना ही, जोश मे आकर कहने लगा—'नागरिक लोगो के

सामने इन तेतीसो लुटेरो को हाथियो के पैरो के नीचे दबोच कर कुचलवा डालो।'

राज्य-कर्मचारियो ने राजा की आज्ञा के अनुसार सारी व्यवस्था कर डाली। नगर के नर-नारियो की भीड़, राजमहल के मैदान मे, राजा का नया कौतुक देखने के लिए जमा हो गई। मघा और उसके साथी यथासमय मैदान मे लाये गये। उनसे कहा गया—'अपने इष्ट देव का अंतिम समय मे स्मरण करलो। अब तुम्हे, तुम्हारे कृत्यो का फल मिलने ही वाला है।'

मघा यह सुन कर बहुत प्रसन्न हुआ। वह विचारने लगा 'आज हमे, अपने कृत्यो का फल मिलेगा; यह बड़ी अच्छी बात है।' फिर उसने अपने शिष्यों से कहा—'तुम लोग मेरे कहने से नही, वरन् अपनी-अपनी इच्छा से मेरे शिष्य बने हो। तुम्हे संकट के समय जरा भी घबराना नही चाहिए। मैं सब से आगे सोऊँगा। हाथी सब से पहिले मुझे ही रौंदेगा। तुम सब मेरे पीछे रहोगे। देखो, घबराना नहीं। धीरज रखना।'

मेरे प्यारे शिष्यो! इस प्रसंग पर उच्च भावनाओ द्वारा अपना चित्त खूब प्रसन्न रखना। उच्च भावनाएँ चित्त की प्रसन्नता के लिए अत्यन्त आवश्यक है।' हमने भलाई का काम किया और हमें ही घोर दण्ड क्यो मिल रहा है'—ऐसा बुरा विचार मन मे उदित न होने देना। यह भी मत सोचना कि—'क्या अच्छे कामो का बुरा फल मिलना ही धर्म या ईश्वर की आराधना का फल है? जब हम हाथी के पैरों तले रौंदे जा रहे हैं, तब भी धर्म अगर आड़े नहीं आता, तो फिर धर्म कहाँ है?' —ऐसी दुर्भावना मन मे न उगने देना।

अनेक जन्म संसिद्धिस्ततो याति परां गतिम् ।

—गीता

बुरी भावना को अपने पास न फटकने देना। तुम सामान्य वृक्ष और पृथ्वी से भी हीन सिद्ध न होना। पत्थर मारने वाले को वृक्ष लौट कर पत्थर नहीं मारता। इसके विपरीत वह उसे मधुर फल देता है। वृक्ष कभी यह नहीं सोचता कि मैं पत्थर मारने वाले को मधुर फल क्यों दूं ?

'यह न समझना कि यह अपने कर्तव्य-पालन का परिणाम है। यह संकट कर्तव्य-निष्ठा की परीक्षा है, फल नहीं। प्रकृति से मैंने यह सीखा है कि जब आम में बौर आते हैं तो कोयल 'कुहू-कुहू' कर मधुर स्वर में कून्जने लगती है। कोयल का मधुर स्वर सुन कर कौवे उसे सताने दौड़ते हैं। किन्तु कोयल यह कभी नहीं सोचती कि यह मुसीबत मेरे मधुर स्वर का फल है। कौवे उसे सताते हैं, आक्रमण करते हैं फिर भी कोयल अपना मधुर कून्जना नहीं त्यागती।'

मघा ने अपने शिष्यों को धर्म की महत्ता समझाते हुए कहा—'भाइयों! हर्गिज यह न समझना कि इस संकट काल में हमारा कोई सहायक या रक्षक नहीं है, अथवा सभी पाप रूपी राजा के ही अनुचर हैं। यहाँ पाप का ही राज्य है और उससे डर कर हमारी कोई सहायता नहीं कर रहा है। विश्वास रखना हमारा कोई सहायक और संरक्षक है, और वह है—सत्य धर्म।'

मघा ने अपने शिष्यों को भावना द्वारा आत्मिक शक्ति का परिचय दिया। मघा के हृदय में तो यह भावना साकार रम रही थी। वह दूसरों को उपदेश देने में विश्वास नहीं करता

था। वह उपदेश को अपने जीवन मे मूर्त रूप देता था। मघा ने जब मदोन्मत्त हाथी को सामने दौड़ते आते देखा तो, सबसे पहले मेरे ऊपर पैर रक्खे—इस विचार से वह सबके आगे लेट गया। उसने शिष्यो से अपने पीछे लेट जाने को कहा। यह हाल देख कर उपस्थित जनता मे कोलाहल मच गया। लोग आपस मे कहने लगे—'क्या यह चोर-लुटेरे-से जान पड़ते है? इनके चेहरे शान्ति से सुशोभित हो रहे है—कैसी अनूठी शान्ति और उज्ज्वलता है! पापियो के मुख पर क्या ऐसी अनुपम आभा दृष्टिगोचर हो सकती है? लोगो की सहानुभूति मघा-दल की ओर उत्पन्न हुई और वे उस दल के सत्य के प्रबल प्रभाव से प्रभावित होकर चिल्लाने लगे। उनमे से कितनेक लोग करुणापूर्ण रुदन करने लगे। जान पड़ता था—मघा ने अपनी भव्य भावना से सबका हृदय जीत लिया है।

मदिरा के नशे मे उन्मत और सत्ता के मद में मस्त राजा अभिमान पूर्वक कहने लगा—'देरी न करो, इन बदमाशो पर हाथी पेल दो और इनका कचराधान कर डालो।'

राजा के आदेश से महावतो ने हाथी छूटा छोड़ दिया। मदमस्त हाथी दौडता-दौड़ता मघा-दल के पास आया। उसने मघा को सूंघा। जैसे नाग-दमनी को सूंघते ही भाग जाता है, उसी प्रकार वह मघा को सूघ ते ही पीछे लौट पड़ा। यह अद्भुत दृश्य देख कर दर्शकों की प्रसन्नता का पार न रहा। पर मघा के विरोधी कर्मचारी कहने लगे—'अन्नदाता! देखी आपने इन बदमाशो की बदमाशी! ये लोग तो जादू भी जानते है।'

राजा के हुक्म से दूसरा हाथी लाया गया, पर वह भी पहले हाथी की तरह मघा को सूंघ कर वापस भाग गया।

इस प्रकार तीसरा, चौथा, पाँचवा, छठा और अंत में सातवाँ हाथी लाया गया। किन्तु तव आश्चर्य का ठिकाना न रहा, जब वे सव पहले हाथी की ही तरह मघा को सूंघ-सूंघ कर वापस लौट भागे।

चकित कर देने वाली यह अभूतपूर्व घटना घटते देख राजा सोच-विचार मे पड गया। उसने मन ही मन कहा—'यह प्रभाव जादू का नही हो सकता। इस घटना का कारण कुछ और ही होना चाहिए।' इस प्रकार विचार कर राजा ने मघा को अपने पास बुलाया।

राजा की आज्ञा पाते ही एक सिपाही मघा के पास गया और उससे कहने लगा—'उठो, उठो, महाराज तुम्हे बुला रहे हैं।'

मघा—'हमे बुलाकर महाराज क्या कहना चाहते है? हमे तो यह देखना है कि वास्तव मे हमारे भीतर पाप है या नहीं? अगर हम पापी है, तो हाथी के पैरो तले कुचल जाना ही योग्य है।'

सिपाही—'तुम्हे जो कहना हो, महाराज से ही कहना।'

मघा—'ठीक, चलिए। तैयार हूँ।'

मघा उठा, उसने अपने शिष्यो से कहा—'मै अभी लौट र आता हूँ। तुम लोग इसी प्रकार लेटे रहना, रंचमात्र भी रना नही। यह न समझना कि मै तुम्हे छोड़ कर जा रहा हूँ। मैं अभी लौट आता हूँ।'

मघा राजा के पास आया। राजा ने मघा से पूछा-'तुम कोई मंत्र जानते हो ?'

मघा—'जी हाँ।'

राजा—'कौन-सा मंत्र जानते हो ?'

मघा—'जो काम अपने-आपको अच्छा लगता हो, वही काम दूसरों के लिए करना।' यही मेरा मत्र है।

राजा—और क्या जानते हो ?

मघा—इसके सिवाय तो मंत्र के साधन जानता हूँ।

राजा—साधन कौनसे है ?

मघा—किसी की हिंसा न करना, असत्य भाषण न करना, किसी की चोरी न करना, व्यभिचार न करना और मदिरापान न करना। इस मंत्र के यह साधन हैं।

राजा—क्या केवल यही मत्र जानते हो ?

मघा—जी हाँ, मै तो यही एक मंत्र जानता हूँ। इसे जान लेने पर किसी अन्य मन्त्र की आवश्यकता ही नही रह जाती।

राजा ने मघा के हाथ अपने हाथ मे लेकर—'मन्त्र तो तुम्हारा बड़ा उत्तम है। क्या तुम इसी मन्त्र का प्रचार करते थे ?'

मघा—'जी हाँ, मैं इसी मन्त्र का प्रचार करता था।'

राजा—'तब तो तुम राज्य की सहायता करते थे। इसमे तुमने बुरा क्या किया है ?'

मघा के साथ बातचीत करके, उसके विरुद्ध शिकायत करने वाले गाँव के कर्मचारियों को बुलवा कर, राजा ने उनसे पूछा—इन लोगो ने क्या अपराध किया था ? इन्होंने गाँव वालो को क्या हानि पहुँचाई थी ?

कर्मचारी लोग राजा का प्रश्न सुनते ही हड़बड़ा गये। उन्हे यही न सूझ पड़ा कि क्या उत्तर दे ?

इस प्रकार घबरावट मे पडा देख राजा ने समझ लिया कि वास्तव में यह कर्मचारी झूठे है। इन लोगों ने इस पर मिथ्या आरोप किया है। गाँव वालों से पूछ कर पता लगाना होगा।

राजा ने गाँव वालो को बुलाया। उनसे पूछा—सच-सच बताना, इन तेतीस अभियुक्तों ने कभी तुम्हे हानि पहुँचाई है ? या दूसरो को हानि पहुँचाते तुमने इन्हे कभी देखा है ?

गाँव वाले एक स्वर से कहने लगे—अन्नदाता ! इन लोगो ने हमें मदिरापान से,वेश्यागमन से, जूआ खेलने से और झगडा-टन्टा करने से रोका है। यह हमारी हानि हो, तो इन्होने हमे हानि पहुँचाई है। इसके अतिरिक्त और कोई हानि नहीं पहुँचाई।

राजा ग्राम-वासियो की बात सुनकर चकित रह गया। उसने कर्मचारियों से कहा—'इन लोगो ने क्या अपराध किया है, साफ-साफ बयान करो। ग्राम-वासियों का कथन तुमने सुना है। मैंने तुम्हारा विश्वास करके बेचारे निर्दोष लोगों को सताया है। इसका उत्तरदायित्व तुम्हारे ऊपर है। भविष्य मे इस प्रकार की झूठी फरियाद करने का साहस कोई कर्मचारी न करे, इस

लिए यह आवश्यक है कि तुम लोगो को हाथी के पैरों तले कुचलवा डाला जाय।'

यह कथन सुनकर मघा ने राजा से निवेदन किया— महाराज ! यह आप क्या गजब कर रहे हैं ?

राजा—ऐसे अपराधियो को ऐसी ही सख्त सजा मिलनी चाहिए।

मघा—राजन ! यह लोग अपराधी क्या, हमारे महान् उपकारी है। जिन लोगो ने आपके साथ मेरा साक्षात्कार कराया है, उन उपकारक पुरुषों को ऐसी सख्त सजा नहीं मिलनी चाहिए। इसके अतिरिक्त सत्य की प्रभावना मे ये निमित्त बने हैं।

राजा—भाई, तुम्हारी नीति अलग है और हमारी राजनीति अलग है। ऐसे अपराधियो को दण्ड न देकर माफ छोड़ दिया जाय, तो राज्य मे अत्याचारों की धूम मच जायगी। इसे रोकने के लिए ऐसे शैतानो को दण्ड मिलना ही चाहिए।

मघा—आपका कथन सत्य है। पर नम्रतापूर्वक मैं यह कहना चाहता हूँ कि अगर ये लोग वास्तव में शैतान ही हैं, तो यह शैतानियत आई कहाँ से ? आपने राज्य के कायदे-कानून बनाये हैं और आपने ही इन्हे कर्मचारी बनाया है। इस दृष्टि से तो सर्व-प्रथम अपराधी आप ही ठहरते है।

राजा सच्चा क्षत्रिय था। उसने मघा के वाक्यों की सचाई स्वीकार की और अपने को अपराधी मान लिया।

कहा—मैं भी दड लेने को तैयार हूँ और इन सब से पहले मैं हाथी के पैरो से कुचले जाने को तैयार हूँ।

मघा—आप किसलिए हाथी के पैर के निचे रुँदने को तैयार होते है?

राजा—मैंने पाप किया है। उस पाप का प्रायश्चित्त करने के लिये।

मघा महाराज! हाथी के पैर के नीचे आकर आत्म-हत्या करने से पाप का प्रायश्चित्त नहीं होता। पाप के लिए पश्चात्ताप करने से पाप का विनाश होता है। अज्ञान के कारण आपने पाप किया था। अब आपका अज्ञान छूट गया है और उसकी जगह ज्ञान प्रगट हो गया है। अगर आप ज्ञान-पूर्वक पश्चात्ताप करेंगे, तो निस्संदेह पाप का नाश हो जायगा। फिर हाथी के पैर के नीचे कुचल कर प्राण-त्याग करने की क्या आवश्यकता है?

राजा—तुम यथार्थ मे सत्पुरुष हो। जान पड़ता है, मानो साक्षात् ईश्वर सामने आ खड़ा हो। जब तुम्हे देखता हूँ, तब ऐसा लगता है जैसे ईश्वर को देखता होऊँ। सचमुच तुमने सच्चा आत्मबल पा लिया है।

राजा इतना अधिक प्रभावित हुआ कि उसने सिंहासन से उठकर मघा का हाथ पकडा और कहने लगा—'यह राजसिंहासन तुम्हारे योग्य है। तुम्हारे सामने मुझे तो जमीन पर बैठना चाहिये।'

मघा ने नम्रतापूर्वक कहा—'राज्य का भार मुझ पर न दये। राज्य का भार सिर पर लादने से मैं जो सेवा-कार्य र रहा हूँ वह न कर सकूँगा। आप अब निष्पाप बन गये हैं। आ ही सुख से राज्य कीजिए और प्रजा को सुखी बनाइए।'

राजा ने कहा—'हे सत्पुरुष ! आपके दर्शन से मुझे परमात्मा की जैसी प्रतीति हुई है वैसी प्रतीति लाखो पुस्तके पढ़ने से और लाखो विचार करने से भी नहीं हुई थी। वास्तव मे आपके भीतर ईश्वरीय वल है।

अन्त मे राजा ने मघा से कहा—राज्य-शासन अपने हाथ मे लीजिए और मुझे वताइए कि राज्य-शासन किस प्रकार करना चाहिये ?

मघा ने कहा—राज्य-शासन किस प्रकार चलाना चाहिए ?, आप यही जानना चाहते है न ? ठीक है। मैं यह वताऊँगा।

ग्रंथो मे ऐसा उल्लेख मिलता है कि राजा ने मघा को अपना प्रधान-मन्त्री वनाया और उसके साथियो को महत्वपूर्ण पदो पर नियुक्त किया।

मघा ने अपने शिष्यों से कहा—देखो, हम लोग निष्पाप थे, इसलिये हाथी हमे न कुचल सका। जव हाथी जैसा पशु भी पाप और पुण्य का भेद समझता है तो हमे कम से कम इतना अवश्य समझना चाहिए कि—परिश्रम किये विना खाना हराम है, और पाप-प्रवृत्ति से सर्वथा वचने के लिए प्रतिज्ञा-वद्ध होना चाहिए।

मघा ने प्रधान का पद स्वीकार कर मगध देश को खूव सुखी और सम्पन्न वना दिया। मगध देश की प्रजा सुख मे रहने लगी।

धर्मवीर धन्ना

जिसमे मनुष्य की दया प्रकट होगी वह धन्ना की तरह त्याग करेगा। पहले बतलाया जा चुका था कि धन्ना ने अपने भाइयो को प्रसन्न करने के लिए बहुत प्रयत किया, पर वे लोग उससे प्रसन्न न हुए। उनका विरोध निरन्तर बढ़ता ही चला गया।

धन्ना भाइयो का सारा वैर पीकर शिव बन गया। पुराणो से कहा है कि समुद्र मथने पर रत्न और अमृत आदि पदार्थ निकले। उन पदार्थों को तो सब ले गये, पर जहर निकला उसे कौन पिये ? अगर उसे न पिया जाय तो मनुष्यो को मरना पड़ेगा। तब सब ने मिलकर महादेव से प्रार्थना की-यह विष आप पी जाइए। महादेव इस विष का पान कर गये और मरे भी नहीं। वे उसे हजम कर गये। यह अलकार है। भगवान् महावीर ने भी चण्डकौशिक का सारा जहर पी लिया था।

धन्ना अपने भाइयोका जहर पी गया। वह लंगोटा लगा-र, भिखारी का भेष बनाकर दरिद्रनारायण बन गया। उसने घर की समस्त सम्पदा भाइयो के लिए छोड़ दी।

धन्ना ने विचार किया—त्याग से मेरा जीवन सुधरेगा। वास्तव मे मेरे भाई नहीं बिगड़े हैं, मै बिगड़ा हूँ। मैंने अपने भाइयो को 'आप' कहा है और मेरे बिगडने से वे आप बिगड रहे है। उनको सुधारने के लिए पहले मुझे सुधरना होगा। जो स्वयं बिगडैल है वह दूसरो को क्या सुधारेगा? अतएव उन्हे सुधारने के लिए पहले, अभय, अहिंसा आदि सद्गुणो का लाभ करके मै सुधरूँगा और सब से प्रेम करके 'विश्वराज' बन जाऊँगा।

जहाँ कही तुझे आर्त्तनाद सुनाई पडेगा, कोई पीडित पुरुष पुकार रहा होगा, वही मै भागा-भागा जाऊँगा और उन दुखियो के आँसू पोंछूँगा। जो पंगु है उनका पैर बनूँगा, जो निस्सहाय है उनका यथाशक्ति सहायक बनूँगा। जिन्हे सेवक की आवश्यकता होगी उनकी आवश्यकता पूरी करूँगा। मै दुखियो का दुःख दूर करूँगा।

धन्ना अपने भाइयो की अनेक बुराइयो और विरुद्ध व्यवहारो को पी गया और आप लोग अपने दोषो के प्रति अन्ध बनकर दूसरे के दोषो को देखने मे कितनी कुशलता धारण करते है!

धन्ना कहता है—मुझ मे ऐसी शक्ति उत्पन्न हो जाय कि मैं डर को ही डरा दूँ, मगर स्वयं न डरूँ। मेरा नाम सांसारिक प्राणियों मे ही रहे, पर मेरे कर्त्तव्य विरक्तो से भी बढ़कर हो।

धन्ना कहता है—मै अपना बाह्य वेष तो गृहस्थ का ही रक्खूंगा, फिर भी ज्योति जगाऊँगा। आज वीरोचित वैराग्य के विषय मे जो सन्देह फैला हुआ है, मै उसका निवारण

अपनी साधना द्वारा करूँगा कि अहिंसा वीरो की है या कायरो की।

धन्ना कहता है—मैंने स्नेह का धन और स्नेह की झौपड़ी छोड़ दी है, अतएव मेरे स्नेह की संकीर्ण सीमाएँ आज समाप्त होती है। अब सारा संसार मेरे लिए समान है। संसार के सभी प्राणी मेरे भाई है, समस्त संसार मेरा घर है और सारे संसार का वैभव ही मेरा वैभव है। आज से मैं अपने व्यक्तित्व को विस्तीर्ण बनाता हूँ।

धन्ना कहता है—प्रभो! मेरे अन्त करण मे अत्यन्त शुचि भावना उत्पन्न हुई है, लेकिन स्वार्थ की भावना उत्पन्न होकर कहीं इस भावना को दबा न देवे। मनुष्य का मन सिनेमा के दृश्यो की भाँति अस्थिर है। एक भाव उत्पन्न होता है और फिर तत्काल ही दूसरा भाव उसके स्थान पर अपना अधिकार कर बैठता है। विशुद्ध भावना को मलीमस भावना उसी प्रकार ग्रस लेती है जैसे चन्द्र को राहु ग्रस लेता है। अतएव हे प्रभो! मै आपसे आपका बल चाहता हूँ, आपकी शरण चाहता हूँ। मुझे दया का ऐसा दिव्य बल प्रदान कीजिए जिससे स्वार्थ की मलीन भावना मुझे अपने विशुद्ध विचारो से विचलित न कर सके।

इस प्रकार की भावना करता हुआ धन्ना घर से निकल पड़ा। चलते-चलते जब दोपहर हो गया तब उसे भूख लगी। धन्ना उस समय अत्यन्त प्रसन्न हुआ। वह थक कर एक वृक्ष की [illegible] मे बैठ गया। सामने ही एक किसान खेत में हल चला रहा था। वह भी विश्राम करने के लिए उसी वृक्ष के नीचे आगया। यद्यपि धन्ना भिखारी के भेष मे था, फिर भी भाग्य

और आकृति छिपाये नहीं छिपती। धन्ना को गौर से देखकर किसान सोचने लगा—यह भिखारी कोई साधारण भिखारी नहीं जान पडता। यह तो कोई महापुरुष मालूम होता है। किसान इस प्रकार मन ही मन सोच रहा था कि उसी समय उसके घर से, उसके लिए रोटी आ गई।

सेठ लोग तो आड़ में बैठ कर भोजन करते हैं परन्तु किसानों मे आज भी यह बात देखी जाती है कि वे दूसरे को खिलाकर आप खाते हैं। जङ्गली कहलाने वालो मे भी यह रिवाज-सा है कि अगर भोजन करते समय भील के यहाँ दूसरा भील आजाय तो वह उसे थोड़ा बहुत खिलाता ही है। पर जङ्गली जाति के रिवाज को सभ्य समाज क्यो अपनाने लगा।

जिसके हृदय मे जैसी भावना होती है उसे वैसा आदमी मिल ही जाता है। अन्नदान के समय पात्र-कुपात्र का विचार नहीं किया जाता।

रोटी आने पर किसान ने धन्ना की मनुहार की। धन्ना ने आधुनिक सभ्योचित्त मायामयी सभ्यता के वश होकर असत्य का आश्रय नहीं लिया। उसने यह नहीं कहा कि मुझे भूख नहीं है। उसने कहा—मैं भूखा तो अवश्य हूँ, पर मेरा प्रण है कि मै काम किये बिना मुफ्त का भोजन नहीं करता। अगर तुम रोटी खिलाना चाहते हो तो पहले काम बताओ।

किसान चकित रह गया। ऐसा भिखारी तो उसने आज तक नहीं देखा। अधिकांश भिखारी मुफ्त का खाने के लिए ही भिखमंगे बनते है, पर एक यह है जो बिना काम किये खाने से इन्कार करता है। तिस पर यह बड़ा सुकुमार है। इससे

किसानी का काम कैसे होगा ? मेरे पास इस काम के सिवाय और क्या काम है ? इस प्रकार सोचकर किसान बोला-तुम अत्यन्त सुकुमार हो, सुन्दर हो। मै बड़ा कठिन काम करता हूँ। यह काम तुमसे न होगा। इसके अतिरिक्त मेरा भी एक प्रण है। मैं जिसे रोटी खिलाता हूँ उससे काम नहीं लेता। क्या तुम मेरा प्रण भग करना चाहते हो ?

धन्ना—नही। मै आपका प्रण भग नहीं करना चाहता, पर आप भी मेरा प्रण भंग न होने दीजिए।

किसान असमंजस मे पड़ गया। उसने देखा—अतिथि का प्रण दृढ है और वह इतना निस्पृह भी मालूम होता है कि भूखा ही रह जायगा। तब वह बोला—अच्छा, पहले भोजन कर लो। फिर कुछ न कुछ काम भी बता देंगे।

धन्ना दृढ़ रहा। बोला—ऐसा न होगा। पहले काम करूँगा, फिर भोजन करूँगा। बिना काम किये भोजन करने का अधिकार किसको है ?

आज भोजन का राज्य है। पहले भोजन, फिर काम। पहले के पंच लोग भी काम करने के पश्चात् जीमते थे। आज पन्चो के पास कोई जाय तो उत्तर मिलेगा—'भाई, तुम्हारे पचड़े तो लगे ही रहेगे, पहले पेट तो भर लेने दो।' बताइए, ऐसे पन्च, पन्च रहे या टुकडैल ? श्रीकृष्णजी दुर्योधन के घर गये थे। दुर्योधन ने कहा—भोजन तैयार है। पहले भोजन कर लीजिये। कृष्णजी ने कहा—पहले काम कर लें, तब भोजन करेंगे। दुर्योधन ने आग्रह किया—नही, पहले आतिथ्य स्वीकार कर लीजिए। आखिर यहाँ तक नौबत पहुँची कि

कृष्णजी दुर्योधन के यहाँ से चल दिये और उन्होंने विदुर के घर आकर भोजन किया।

किसान ने धन्ना से कहा—मेरे यहाँ दूसरा काम तो है नहीं, क्या तुम हल चला सकोगे? पर हल हाँकना कठिन और मिहनत का काम है।

धन्ना—मैं हल चलाने का काम बखूबी कर सकता हूँ।

धन्ना सेठ मिट कर हल-वाहा बना। उसने कहा—जिसे हल हाँकना नहीं आता उसे अन्न खाने का क्या अधिकार है? मैं अन्न खाना चाहता हूँ तो मुझे हल चलाना आना ही चाहिए। मैं भूखा हूँ। अगर तुम्हें करुणा आती हो तो काम दो।

किसान निरुपाय था। वह अतिथि को भूखा नहीं रहने दे सकता। उसने कहा—अच्छा वह है हल। उसे चलाओ और फिर भोजन करना।

धन्ना ने हल चलाने की विधि से हल चलाया। वह ऐसी कला जानता था जिससे बैलों को कष्ट भी न हो और जमीन भी भली-भाँति जुत जाए। किसान उसकी हल चलाने की कला देख कर दंग रह गया। वह भी हल के साथ-साथ लगा।

धन्ना ने हल चलाया तो जमीन के ढेले ऊपर आये। हल चलने के साथ ही खनखन शब्द होने लगा। किसान ने खन-खनाहट की ध्वनि सुन कर धन्ना से हल ठहराने के लिए कहा। लेकिन धन्ना हल हाँकता ही गया और उसे वहाँ ठहराया जहाँ खेत की मेंड आ गई। किसान ने देखा, धन का एक

समूचा हंडा ऊपर आकर बिखर गया है। वह सोचने लगा—यह खेत सात पीढ़ियों से मेरे पास है। हमेशा हल हाँका करता हूँ। मगर आज तक कभी धन नहीं निकला था। किसान बहुत प्रसन्न था। उसने धन्ना को वह दिखया। धन्ना ने साधारण भाव से कहा—इसके लालच में पड़ कर भूखे रहना ठीक नहीं। चलो, रोटी खाएँ।

धन्ना की इस निस्पृहता से किसान के आश्चर्य का ठिकाना न रहा। वह सोचने लगा—यह कोई देव तो नहीं है! इसकी ऐसी शक्ल है, फिर भी हल चलाने का काम इसने इतनी सुन्दरता से किया! हल चला कर इसने धन निकाल दिया है और अब ऐसी बातें करता है—मानो इसके लिए धन कोई वस्तु ही नहीं है! पहले इसे रोटी दे रहा था, तब इसने लेना स्वीकार नहीं किया, अब उतावला होकर रोटी मांग रहा है!

किसान ने धन्ना से कहा—कहाँ तो तुम्हारे यह करतब और कहाँ मेरे यहाँ की रूखी-सूखी मोटी रोटी! मोटी रोटी और मामूली तौर पर उबाला हुआ बिना मसाले का शाक तुम खा सकोगे? मुझे सन्देह है कि तुम इन रोटियों को पचा सकोगे पर लो, खाओ।

धन्ना—तुम भी खाओ और मैं भी खाऊँ। मैंने तो एक ही चाँस जोता है, मगर तुम ने तो सारा खेत जोता है।

धन्ना और किसान दोनों रोटी खाने लगे। धना को वह रोटी कैसी लगी होगी?

'मीठी!'

यद्यपि रोटी जाट के घर की है, मोटी है, शाक भी अच्छा स्वादिष्ट न होगा, लेकिन धन्ना को भूख लगी है। कड़ी भूख में जैसा भोजन मिल जाय वही मीठा लगता है।

धन्ना रोटी खाते-खाते कहता है—राम की बात आज ही याद आई। राम शबरी के दिये हुए फल खाकर कहते थे-लक्ष्मण राजा जनक के घर षट्रस भोजन किया और माता के हाथ के भोजन का भी स्वाद चखा, लेकिन सच्चा भोजन तो आज ही मिला है। महाराज जनक ने दामाद के नाते जिमाया और माता ने पुत्र के नाते, लेकिन इस भीलनी ने किस नाते जिमाया है? भीलनी के साथ मेरा क्या रिश्ता है? उसे मुझ से क्या स्वार्थ है? इस भोजन में निःस्वार्थता की जो अनुपम मधुरता है वह उस भोजन में नहीं थी।

धन्ना भोजन करके जाने लगा। किसान ने कहा—जाते कहाँ हो? यह तुम्हारा धन है। इसे साथ लेते जाओ।

कृषक की भावना पर विचार करो। उसने धन्ना को प्रेमपूर्वक भोजन कराया और उसके खेत में जो धन निकला वह भी धन्ना का ही। इस भावना ने किसान उसे धन ले जाने का आग्रह करता है। वह कहता है—भाई, अपना धन तुम्हीं बटोरो। मुझे कहाँ कारागार में फँसाते हो?

धन्ना—मैंने तो रोटी के लिए हल चलाया था सो रोटी मिल गई। इसके सिवाय मेरा कुछ नहीं है। तुम्हारे खेत में जो निकला वह सब तुम्हारा है।

धन्ना सोचने लगा—यह किसान भी धन्य है! यह कृत-पुण्य है। मैं सोचता था, मैं त्यागी हूं। पर मेरे घर में तो धन

भरा था और यह किसान खेती करके पेट पालता है। इसी के खेत मे, इसी के हल से अचानक धन का चरू निकला और यह कहता है—अपना धन लेते जाओ। इसके त्याग के सामने मेरा त्याग फीका पड गया है। जब मै घर का उतना धन छोड़ आया हूँ तो यह धन क्यो लूँ ? अपने भाइयो को सुधारने के लिए घर का धन छोड़ा तो यह धन मिला। अगर किसान को सुधारने के लिए इसे भी त्याग दूँगा तो आगे और मिलेगा। धर्म का माहात्म्य साधारण नहीं है धर्म का आचरण तनिक भी वृथा नही जाता।

धन्ना किसान से अपना हाथ छुड़ाकर चल दिया। किसान चिल्लाता ही रहा, लेकिन धन्ना न लौटा।

धन्ना के चले जाने पर किसान सोचने लगा—हम तो खेत से केवल अन्न उत्पन्न करने वाले हैं। खेत मे जो धन निकला है वह मेरा नही, राजा का है। इस प्रकार विचार कर वह राजा के पास पहुँचा। उसने राजा से कहा—आज धन्ना नामक एक दरिद्री-सा दिखाई देने वाला आदमी मेरे खेत पर आया था। वह ऊपर से ऐसा मालूम होता था, पर था कोई बड़ा आदमी। उसने रोटी के लिए मेरे खेत मे हल चलाया उसने खेत मे एक चॉस निकाला। उसी चॉस में धन का एक चरू निकाला। पहले तो मैने उसे यो ही जिमाया चाहा। पर वह नहीं माना। उसने चॉस चलाया और धन का यह चरू जमीन मे से निकल पडा। यह चरू या तो उसका है या फिर , हो सकता है। वह तो उसे ले नही गया। अब आप कृपा कर उसे मॅगवा लीजिए। उस चरू पर मेरा अधिकार नहीं है। मै उसे नही रख सकूँगा।

किसान की कैफियत सुनकर राजा ने कहा—वह निस्पृह पुरुष धन्यवाद का भागी है। अगर वह मुझे मिले तो मैं उसके पैरों में गिरूँ। पर वह तो चला गया। तुम हो, सो वह धन तुम्हीं अपने पास रहने दो।

किसान—अन्नदाता, जिस धन पर मेरा अधिकार नहीं है, उसे मैं कैसे रक्खूँ? उस धन का उपयोग मैं नहीं कर सकूँगा।

जब किसान धन लेने के लिए किसी भी प्रकार तैयार न हुआ तो राजा ने धन निकलने के स्थान पर उसी धन से एक गाँव बसा दिया। उस ग्राम का नाम रक्खा गया—धनपुर। धन्ना के नाम पर उस ग्राम को जागीर करके उसी किसान को उसका पटेल बना दिया गया।

इस कथानक से यह प्रकट है कि जो भगवान् का भरोसा रखता है, और अपने जीवन को निरपेक्ष बना लेता है, वह धन्ना के समान बन कर कहीं और कभी कष्ट नहीं पाता। भगवद्भक्ति का ऐसा ही प्रभाव है। अगर आप भगवान् की प्रार्थना करते हुए इस प्रकार निस्पृह बनेंगे तो आपको लक्ष्मी के लिए देश-विदेश नहीं भटकना पड़ेगा, लक्ष्मी स्वयं आकर आपके चरण चूमेगी और आपका कल्याण होगा।

दैवी बल-दानवी बल

अयोध्या मे अवध-नरेश राज्य करते थे और काशी मे काशी-नरेश राज्य करते थे। अवध-नरेश सोचते थे कि हम प्रजा की रक्षा एवं सेवा करने के लिए राज्य करते है और हमारा यह शरीर दिव्य तप करने के लिए है। दूसरी ओर काशीनरेश का यह विचार था कि हम उच्च श्रेणी के भोग भोगने के लिए राजा हुए है। इसलिए सब अच्छे अच्छे रत्न हमारे पास ही होने चाहिए। इस प्रकार दोनो राजा दो प्रकार की श्रद्धा के थे। यह तो नियम ही है कि जिसकी जैसी श्रद्धा होती है, वह वैसा ही बन जाता है। कहा भी है—

श्रद्धामयो ऽयं पुरुषः यो यच्छ्रद्धः स एव सः।

अर्थात—मनुष्य अपनी श्रद्धा के अनुरूप ही हो जाता है। जिसकी श्रद्धा जैसी होती है, वैसा ही वह बन जाता है।

इस उक्ति के अनुसार दोनों राजाओ की प्रकृति उनकी अपनी-अपनी श्रद्धा के अनुसार बन गई थी। अवधनरेश ने

अपना जीवन प्रजा की सेवा में ही लगा दिया था। इस कारण उनके राज्य मे तो उनका जय-जयकार होता ही था किन्तु अन्य अन्य राज्यों में भी वे आदर्श और कर्त्तव्यनिष्ठ राजा माने जाते थे। वे जनता में प्रातः स्मरणीय पुरुष बन गये थे। उधर काशीनेरश अपनी भावना पूर्ण करने के लिए प्रजा को प्रत्येक शक्य उपाय से चूसता था। उसकी प्रकृति इतनी स्वार्थ-मयी बन गई थी कि वह अपने सिवाय अपने आत्मीय जनों को भी अपने ही सुख की सामग्री समझता था। इस कारण उसका भृत्यवर्ग, यहाँ तक कि उसकी रानी भी उससे असंतुष्ट रहती थी। सब लोग यही सोचते थे कि-इस राजा का सुधार कैसे हो? कौन इसे ठीक रास्ते पर लावे? हे प्रभो अगर राजा का सुधार न हुआ तो देश मे हाहाकार मच जायगा।

एक बार अवधराज का जन्मदिन आया। काशी के लोगों को भी पता चला कि आज अवध के महाराज का जन्म दिवस है। यह जानकर काशीवासी प्रजा को बडी प्रसन्नता हुई। सबका हृदय आनन्द से परिपूर्ण हो गया। वहां के लोगों ने उत्साह के साथ उनका जन्मदिन मनाने का निश्चय किया। स्थान-स्थान पर दीपमालिकाएँ लगाकर, स्त्री-पुरुष एकत्रित होकर आनन्द मनाने लगे। सर्वत्र अवधेश की जय-जयकार होने लगी। प्रजा अवध के महाराज के जन्म दिन के उपलक्ष्य मे हर्ष विभोर होकर आनन्द मना रही थी कि काशी नरेश भी अपने प्रधान के साथ उसी समय उस ओर से निकले। लोगों को उत्सव मनाते देखकर प्रधान से राजा ने पूछा-आज यह उत्साह और उमंग किसलिए है? क्या किसी उत्सव का दिन है? प्रजा में बडी चहल पहल नजर आती है? मुझे तो पता ही नहीं कि आज कोई उत्सव दिवस है!

दैवी बल-दानवी बल

अयोध्या मे अवध-नरेश राज्य करते थे और काशी मे काशी-नरेश राज्य करते थे। अवध-नरेश सोचते थे कि हम प्रजा की रक्षा एवं सेवा करने के लिए राज्य करते है और हमारा यह शरीर दिव्य तप करने के लिए है। दूसरी ओर काशीनरेश का यह विचार था कि हम उच्च श्रेणी के भोग भोगने के लिए राजा हुए है। इसलिए सब अच्छे अच्छे रत्न हमारे पास ही होने चाहिए। इस प्रकार दोनो राजा दो प्रकार की श्रद्धा के थे। यह तो नियम ही है कि जिसकी जैसी श्रद्धा होती है, वह वैसा ही बन जाता है। कहा भी है—

श्रद्धामयो ऽय पुरुष यो यच्छ्रद्ध. स एव स ।

अर्थात—मनुष्य अपनी श्रद्धा के अनुरूप ही हो जाता है। जिसकी श्रद्धा जैसी होती है, वैसा ही वह बन जाता है।

इस उक्ति के अनुसार दोनो राजाओ की प्रकृति उनकी अपनी-अपनी श्रद्धा के अनुसार बन गई थी। अवधनरेश ने

अपना जीवन प्रजा की सेवा मे ही लगा दिया था। इस कारण उनके राज्य मे तो उनका जय-जयकार होता ही था किन्तु अन्य अन्य राज्यों में भी वे आदर्श और कर्त्तव्यनिष्ठ राजा माने जाते थे। वे जनता मे प्रातः स्मरणीय पुरुष बन गये थे। उधर काशीनेरश अपनी भावना पूर्ण करने के लिए प्रजा को प्रत्येक शक्य उपाय से चूसता था। उसकी प्रकृति इतनी स्वार्थ-मयी बन गई थी कि वह अपने सिवाय/अपने आत्मीय जनों को भी अपने ही सुख की सामग्री समझता था। इस कारण उसका त्यभृवर्ग, यहाँ तक कि उसकी रानी भी उससे असंतुष्ट रहती थी। सब लोग यही सोचते थे कि-इस राजा का सुधार कैसे हो? कौन इसे ठीक रास्ते पर लावे? हे प्रभो अगर राजा का सुधार न हुआ तो देश मे हाहाकार मच जायगा।

एक बार अवधराज का जन्मदिन आया। काशी के लोगो को भी पता चला कि आज अवध के महाराज का जन्म दिवस है। यह जानकर काशीवासी प्रजा को बड़ी प्रसन्नता हुई। सबका हृदय आनन्द से परिपूर्ण हो गया। वहां के लोगों ने उत्साह के साथ उनका जन्मदिन मनाने का निश्चय किया। स्थान-स्थान पर दीपमालिकाएँ लगाकर, स्त्री-पुरुष एकत्रित होकर आनन्द मनाने लगे। सर्वत्र अवधेश की जय-जयकार होने लगी। प्रजा अवध के महाराज के जन्म दिन के उपलक्ष्य मे हर्ष विभोर होकर आनन्द मना रही थी कि काशी नरेश भी अपने प्रधान के साथ उसी समय उस ओर से निकले। लोगों को उत्सव मनाते देखकर प्रधान से राजा ने पूछा-आज यह उत्साह और उमंग किसलिए है? क्या किसी उत्सव का दिन है? प्रजा में बड़ी चहल पहल नजर आती है? मुझे तो पता ही नहीं कि आज कोई उत्सव दिवस है!

प्रधान—महाराज, आज अवध के महाराज का जन्म दिन है। प्रजा इसी उपलक्ष्य मे आनन्द मना रही है।

प्रधान की बात सुनते ही काशीनरेश की त्यौरियाँ चढ़ गई क्रुद्ध स्वर मे वह कहने लगा—मेरे राज्य मे अवधराज का जन्म-दिवस मनाया जाता है ! प्रधान, तुम क्या व्यवस्था करते हो ?

प्रधान—महाराज, पृथ्वी के राज्य की सीमा होती है, प्रेम के राज्य की सीमा नही होती। ऐसी स्थिति मे प्रजा को अवधेश का जन्म-दिवस मनाने से किस प्रकार रोका जा सकता है ? अगर मेरी बात पर आपको भरोसा न हो तो परीक्षा करके देख लीजिये। आप स्वय प्रजा को रोककर देखिए। आपको विदित हो जायगा कि आपकी प्रजा अवधेश से कितना प्रेम करती है ?

प्रधान की बात सुनकर राजा को आश्चर्य हुआ। मगर प्रजा से कोई बात पूछने का साहस उसे नहीं हुआ। उसने सोचा—इस समय लोग हर्ष मे विभोर है। छेड छाड़ करना उचित नहीं होगा।

राजा किंचित् आश्चर्य और चिन्ता के साथ महल की ओर लौट गया। उसके हृदय मे यह बात कांटे की तरह चुभ रही थी कि मेरे राज्य मे अवध-नरेश का जन्मदिवस मनाया जाता है ! इस विचार ने उसके अन्तःकरण मे ईर्षा की आग धधका दी। अपनी सुलगाई आग मे वह आप ही ईंधन बनने लगा। उसे रात मे नींद नही आई। इधर-उधर करवट बदलने लगा। रानी से उसकी मानसिक व्यग्रता छिपी नही रही।

रानी ने पास जाकर और राजा के शरीर पर अपना कोमल हाथ फेरकर पूछा—'स्वामिन ! आज क्या कारण है कि आपको नींद नहीं आ रही है ? आप इधर से उधर करवटें बदल रहे हैं और अशान्त मालूम होते है ।

राजा अभिमान के नशे में था और यथार्थ बात कहने से उसके अभिमान को ठेस लगती थी । अतएव उसने रानी से कहा—'तुम स्त्री हो । तुम्हे कोई बात बतला भी दी जाय तो उससे क्या लाभ होगा ?'

रानी—यदि मुझ से कहने से कुछ नहीं हो सकता तो इस प्रकार करवटे बदलने से भी कुछ नहीं हो सकता आप मुझे अपने सुख-दुःख की बात सुनने योग्य समझते है तो कहिए ।

राजा ने कुछ नरम पडकर कहा—मैंने ऐसा कह कर गलती की है। तुम ही मेरे हृदय की बात सुनने योग्य न होओगी तो कौन होगा ? बात यह है कि आज अपने राज्य मे अवध के राजा का जन्मदिन मनाया गया है। प्रजा ने उत्साहपूर्वक उत्सव किया है । मेरे राज्य मे किसी दूसरे राजा का जन्मदिन मनाया जाना मेरे लिए असह्य है । इसी कारण मैं चिन्तित हूँ ।

रानी—वास्तव मे यह बात चिन्ता के ही योग्य है। लेकिन चिन्ता करना किसी भी बीमारी का इलाज नहीं है। चिन्ता से दुःख घटता नहीं, बढ़ ही जाता है । जब हमारे सामने कोई चिन्ताजनक घटना हो तो चित्त को स्वस्थ रखकर उसके कारणो पर विचार करना चाहिए । अगर कारण समझ

में आ गये तो उस घटना का प्रतीकार करना सहज हो जाता है। चिन्ता तो स्थिति को अधिक खराब कर देती है।

राजा—समझ मे नही आता कि अवध के राजा ने हमारी प्रजा पर क्या जादू फेर दिया है ?

रानी—नाथ, मेरी समझ तो यह है कि हमारे हृदय की मधुरता और वाणी की मिठास ही सब से बड़े जादू है। जिसमे यह दो बाते होती है वह अनायास ही दूसरो को अपनी ओर आकृष्ट कर लेता है। इसके बाद भलाई करने का नम्बर आता है। उस आकर्षण को स्थायी और प्रबल बनाने के लिए दूसरो की भलाई के काम करना आवश्यक है। अवध का राजा क्या काम करता है जिससे अपनी प्रजा उसका जन्मदिन मनाती है ? आप इस बात पर विचार कीजिए और वही काम आप भी करना आरंभ कर दीजिए।

राजा—इससे क्या होगा ?

रानी—इससे यह होगा कि आपकी प्रजा अवध के राजा को भूल जायगी और आपका आदर करेगी। इतना ही नहीं, वरन् अवध की प्रजा भी आपका जन्मदिवस मनाने लगेगी।

रानी ने बावन तोले पाव रत्ती बात कही थी। मगर राजा को यह सलाह पसंद नहीं आई। उसने कहा—आखिर तो तुम स्त्री ही ठहरी न ! तुमने स्त्रियो के योग्य ही बात कही है। म नहीं समझती कि मैं अवधनरेश की तरह कायर नहीं हूँ ैर प्रजा का गुलाम बन कर नहीं रह सकता। वह खाना पीना भूलकर और ऐश-आराम भूल कर प्रजा के पीछे ऐसा

लगा रहता है. जैसे उसका नौकर हो और उसी का अन्न खाता हो। मुझ से यह नहीं बन सकता। कदाचित् मै ऐसा ही करूं तो भी यहां अवधराज का जन्मदिन मनाया जाना कैसे रुक सकता है? मैं तो कोई और ही उपाय सोचूंगा।

राजा का यह कथन सुनकर बेचारी रानी चुप हो गई। उधर राजा ने सेनापति को बुलवाया और सेना तैयार करने का आदेश देते हुए कहा–किसी को खबर न होने पावे। सेना का संचालन मै स्वयं ही करूंगा और अयोध्या पर अपना झंडा फहराऊंगा।

जैसे अंगरेज सरकार दमन करके कांग्रेस की कीर्त्ति और शक्ति को नष्ट करने का प्रयत्न करती थी, उसी प्रकार काशीराज दमन का सहारा लेकर अवधनरेश की प्रतिष्ठा नष्ट करना चाहता है।

सेनापति ने सेना तैयार की और काशीनरेश के नेतृत्व मे, रात्रि के समय उसने अयोध्या पर हमला कर देने का विचार किया। काशीनरेश की सेना अवध की सीमा पर पहुँची। अवध के सीमा रक्षकों ने राजा को समाचार दिया कि काशी-नरेश सेना लेकर चढ़ आये हैं। अवधनरेश यह समाचार पाकर सोचने लगे—काशीनरेश के साथ मेरी कोई अनबन नहीं है। इस समय कोई ऐसा कारण भी उपस्थित नहीं हुआ कि उन्हे मेरे राज्य पर चढ़ाई करने का क्या कारण?

मन्त्री ने अवधराज से कहा—महाराज, मैं तो पहले ही कहता था कि सीमाओं पर पर्याप्त सेना रखनी चाहिए। सेना के बिना राज्य की रक्षा नहीं होती। मगर आपने मेरी बात अनसुनी करदी। उसका परिणाम आज दिखाई दे रहा है।

अवधनरेश—यह तो ठीक है, मगर काशीराज ने चढ़ाई क्यों की है ? हमारी ओर से तो कोई ऐसा कारण नहीं हुआ कि उन्हे चढ़ाई करनी पडती।

मन्त्री—चढ़ाई का कोई खास कारण नहीं हुआ करता। जो महत्त्वाकांक्षी और बलवान् होता है वह निष्कारण ही दूसरे राज्य पर हमला करके अपने राज्य का विस्तार कर लेता है। अब अगर आपकी आज्ञा हो तो जो सेना तैयार है, उसी को लेकर काशीनरेश का सामना करने की योजना करूँ।

अवधराज—नहीं, ऐसा करने की आवश्यकता नहीं है। काशीनरेश की सेना के प्रवाह मे अपने थोड़े-से लोगों को वहा देना अनुचित है। एक बार मै स्वयमेव काशीनरेश से मिलकर बाते करना चाहता हूँ इस वार्त्तालाप का परिणाम देख लेने के पश्चात् जो उचित होगा, किया जायगा।

अवधनरेश घोडे पर सवार होकर अकेले ही काशीनरेश से मिलने के लिए रवाना हुए। लोग कहने लगे—अकेले शत्रु की सेना मे जाना उचित नही है। मंत्री ने भी समझाया महाराज ऐसा करना राजनीति से विरुद्ध है मगर अवध नरेश का हृदय काच की तरह स्वच्छ था। उसमे किसी प्रकार का कपट या अन्य विकार नही था। अतएव उन्होंने कहा—इस राजनीति से हमे अपना पिंड छुड़ाना है। मै तो एक नवीन राजनीति की नींव डालना चाहता हूं।

अवधनरेश अकेले घोड़े पर सवार होकर काशीराज की नी में पहुँचे। जब काशीराज को उनके आने की सूचना मिली तो उसकी प्रसन्नता का पार न रहा। उसने कहा—

'अवधनरेश भयभीत होकर मेरे सामने आया है। देखा मेरा तेज और सामर्थ्य !' यह कह कर उसने अवधनरेश को ले आने की स्वीकृति दी।

अवधनरेश ने जाकर काशीराज से कहा-आपने इस प्रकार निष्कारण ही चढ़ाई करने का कष्ट क्यों किया ? कृपया बतलाइए कि मेरे राज्य मे प्रजा को कुछ कष्ट है ? मेरी प्रजा की आपके पास कोई शिकायत पहुँची है ? अथवा कोई अन्य कारण है ?

काशीराज के पास इन प्रश्नों का कोई उत्तर नहीं था वास्तव मे चढ़ाई का कोई समुचित कारण नही था। अतएव उसने कहा—तुम कायर हो जो इस प्रकार का प्रश्न करने आये हो। मै ऐसे प्रश्नों का यहां कोई उत्तर नही देना चाहता। मुझे जो उत्तर देना है, रणभूमि मे ही दूंगा और मुख से नहीं, तलवार से दूंगा। अगर तुम मे बल है तो तलवार से सामना करो। नहीं है तो जंगल मे भाग जाओ।

अवधेश—मुझ मे बल तो है पर मैं अपने बल का दुरुप-योग नहीं करना चाहता। उचित तो यह था कि आप अपने राज्य की रक्षा आप करते और अपने राज्य की रक्षा मैं करता। मगर आप मेरे प्रश्नो का उत्तर नहीं देना चाहते। इससे जान पड़ता है कि आप अवध का भी राज्य चाहते है। इसी कारण आप बार-बार तलवार की बात कहते हैं। लेकिन मैं अपनी प्रजा का रक्त नहीं बहाना चाहता। युद्ध का अवसर आवे, यह मुझे अभीष्ट नहीं है। आपको राज्य चाहिए तो खुशी से लीजिए। सिर्फ इस बात का ध्यान रखिए कि जिस प्रकार मैंने प्रजा का पालन किया है उसी प्रकार आप करे और प्रजा को

कष्ट न होने दें। राज्य प्रजा की सुख-शान्ति के लिए है। राज्य पाकर राजा को अपनी प्रजा के प्रति एक पवित्र कर्त्तव्य पालना पड़ता है। जब आप मेरा कर्त्तव्य अपने माथे ले रहे हैं तो मेरा बोझ हल्का हो रहा है। इसके लिए युद्ध क्यों किया जाय? प्रजा का रक्त क्यों बहाया जाय?

अवधनरेश इतना कह कर और थोडी देर उत्तर की प्रतीक्षा करके, उत्तर न मिलने पर रवाना होने लगे। चलते-चलते उन्होंने फिर दुहराया-ठीक है, मैं जाता हूँ प्रजा का ध्यान रखिएगा।

इतना कहकर अवधनरेश जगल की ओर चल दिये। काशीराज यह देखकर प्रसन्न हुआ और सोचने लगा-मैं कितना बहादुर हूँ। मेरे भय से अवध का राजा जंगल मे भाग गया। वह मेरा सामना नहीं कर सका। युद्ध किये बिना ही मेरी जीत हो गई।

काशीराज ने अयोध्या पहुँचकर अपना झण्डा फहरा दिया। अपने कर्मचारियों को वहां शासन सँभलाकर वह काशी लौट आया। उसे आशा थी कि काशी की प्रजा इस विजय के उपलक्ष्य मे मेरा स्वागत करेगी और अवध के राजा को भूल जायगी। प्रजा अवधराज की कायरता देखकर अवश्य ही उससे घृणा करेगी। और मेरे प्रताप और पराक्रम की सराहना करेगी। मगर काशी पहुँचने पर उसकी आशा पर पानी फिर गया। काशी की प्रजा को जब पता चला कि हमारे महाराज अवध पर आक्रमण किया था। और अवध के राजा अपना इन्हे देकर जंगल मे चले गये है, तो घृणा और तिरस्कार की भावना प्रजा के हृदय मे उत्पन्न हो गई। जगह-जगह आलो-

चना होने लगी। किसी ने कहा—काशीराज अपने राज्य मे तो सुधार कर ही नहीं सकते और न्यायनीति के साथ राज्य करने वाले अवधराज पर चढ़ाई करके उन्होंने उसका राज्य छीन लिया ! दूसरा कहने लगा—अवधराज का अपराध क्या था ? प्रजा से प्रेम करना ही उनका एक मात्र अपराध था और इसी अपराध का उन्हे दंड दिया गया है। इस प्रकार काशी की समस्त प्रजा अपने राजा से असन्तुष्ट और रुष्ट हो गई। राजा के आने पर प्रजा ने काले झंडे दिखला कर अपना असन्तोष प्रकट किया।

प्रजा का असन्तोष देखकर काशीराज चकित हो गया। उसने विचार किया मेरी विजय का परिणाम उल्टा ही निकला इस प्रकार सोचते-विचारते वह अपने महल मे पहुँचा। उसे आशा थी कि मेरी विजय से प्रसन्न होकर रानी मुसकराती हुई मेरे स्वागत के लिए आगे बढ़ कर आएगी मगर उसने जो कुछ देखा, उससे उसकी निराशा और विषाद की सीमा न रही। उसने देखा—रानी काले कपड़े पहने बैठी है । यह देखकर राजा ने कहा—मेरे जीवित रहते काले कपड़े क्यों पहिने है ?

रानी ने तमक कर कहा-आपका जीवित रहना और न रहना एक समान हो गया है। बल्कि मेरी समझ मे अपयशमय जीवन की अपेक्षा यशोमय मृत्यु अधिक श्रेयस्कर होती है। आप अपनी प्रजा को तो सुख दे नहीं सके और अवध की प्रजा से सुख देने वाला राजा आपने छीन लिया ! अवध की प्रजा का सुख नष्ट करके और उसे दुखी करके आपने क्या पा लिया ? आज कोई भी समझदार व्यक्ति आपके इस कार्य की सराहना नहीं करता। सभी लोग एक स्वर से इस अन्याय अत्याचार की निन्दा कर रहे है।

रानी की बात सुनकर राजा को सद्बुद्धि आनी चाहिये थी मगर उसे सद्बुद्धि नहीं आई। वह उल्टा यह सोचने लगा मैंने भूल की कि अवधनरेश को जीवित जाने दिया। यह बहुत बुरा हुआ। वह जीवित है, यह जानकर ही प्रजा का रुख उसकी ओर है, क्योंकि अभी लोगों को उसकी तरफ से आशा है। ऐसी स्थिति में उसे मरवा डालना ही उचित होगा। फिर न होगा बांस न बजेगी बांसुरी। इस प्रकार निश्चय करके उसने घोषणा कर दी कि जो कोई अवधेश का मस्तक काट कर लाएगा, उसे सवा मन सोना दिया जायगा।

राजा की यह घोषणा सुनकर प्रजा दंग रह गई। राजा की और अधिक निन्दा होने लगी। उधर अवधनरेश तप करता हुआ जंगल में घूमा करता था। वह अपनी स्थिति के प्रति असन्तुष्ट नहीं था। राज्य त्यागने का उसे दुःख नहीं था। बल्कि वह सोचा करता था—परमात्मा की कृपा से मुझे अच्छा अवसर मिल गया। यों आत्मकल्याण के लिए मैं नहीं निकल पाता, लेकिन काशीनरेश ने मेरा भार अपने सिर पर ले लिया। मुझे उन्होंने हल्का कर दिया और आत्म-कल्याण करने का अवसर दिया। मैं उनका भी अनुग्रह मानता हूँ।

जंगल में घूमते हुए अवधनरेश को एक बनिया मिला। उसका जहाज पानी में डूब गया था। वह सोचता था-यह तो गनीमत हुई कि मैं जीवित बच गया। मगर मेरे सिर पर कई लोगों का कर्ज चढ़ा है। मेरा विश्वास करके कई लोगों ने मुझे पूञ्जी दी थी। अब उनकी पूञ्जी अगर उनके पास नहीं पहुँचती तो विश्वासघात होगा। मैं मर भी नहीं सकता। लोगों का कर्ज चुकाये बिना मरने का मुझे अधिकार ही नहीं है। मेरा

सर्वस्व भले ही चला गया है, पर सद्बुद्धि मेरी बनी हुई है। अगर थोड़ी-सी नई पून्जी मिल जाय तो कमाई करके मैं कर्ज उतार सकता हूँ। मगर कठिनाई तो यही है कि थोड़ी पून्जी भी कहाँ पाऊँ ?

इस प्रकार सोच-विचार मे डूबे हुए उस वणिक को अवधनरेश का खयाल आया। उसने सोचा—अवधनरेश के पास चलना चाहिए। सम्भव है, उनसे मुझे कुछ सहायता मिल सके। वह अवधनरेश के पास जाने के लिए रवाना हुआ। चलते-चलते वह उसी जंगल मे आया, जहाँ राजा रहता था। साधारण जगली के भेप मे उसे अवधनरेश मिल भी गया। मगर वह उसे पहिचान नहीं सका। उसने उसे आवाज देकर पूछा—'अरे भाई ! अयोध्या का रास्ता कौन-सा है ?'

अवधनरेश—अयोध्या क्यों जा रहे हो ?

वणिक्—मेरा जहाज डूब गया है। मेरे सिर पर कर्ज चढ़ा हुआ है। चाहता हूँ, किसी उपाय से कर्ज उतर जाय तो अच्छा है। लेकिन मेरे पास पून्जी नही है पून्जी हो तो अपनी बुद्धि से रुपया कमा कर कर्ज चुका सकता हूँ। अयोध्या के महाराज के पास इसी प्रयोजन से जा रहा हूँ। आशा है वह मेरा दु ख दूर करेंगे।

अवधनरेश सोचने लगे—लोग अभी तक अवध और अवधनरेश को भूले नहीं हैं। प्रकट में उन्होंने कहा—भाई, अयोध्या का राजा तो काशीनरेश को अपना राज्य देकर जगल मे चला गया है। इस समय अयोध्या में काशीनरेश का ही राज्य है।

रानी की बात सुनकर राजा को सद्बुद्धि आनी चाहिये थी मगर उसे सद्बुद्धि नहीं आई। वह उल्टा यह सोचने लगा मैंने भूल की कि अवधनरेश को जीवित जाने दिया। यह बहुत बुरा हुआ। वह जीवित है, यह जानकर ही प्रजा का रुख उसकी ओर है, क्योंकि अभी लोगों को उसकी तरफ से आशा है। ऐसी स्थिति में उसे मरवा डालना ही उचित होगा। फिर न होगा बांस न बजेगी बांसुरी। इस प्रकार निश्चय करके उसने घोषणा कर दी कि जो कोई अवधेश का मस्तक काट कर लाएगा, उसे सवा मन सोना दिया जायगा।

राजा की यह घोषणा सुनकर प्रजा दंग रह गई। राजा की और अधिक निन्दा होने लगी। उधर अवधनरेश तप करता हुआ जंगल में घूमा करता था। वह अपनी स्थिति के प्रति असन्तुष्ट नहीं था। राज्य त्यागने का उसे दुःख नहीं था। बल्कि वह सोचा करता था—परमात्मा की कृपा से मुझे अच्छा अवसर मिल गया। यों आत्मकल्याण के लिए मैं नहीं निकल पाता, लेकिन काशीनरेश ने मेरा भार अपने सिर पर ले लिया। मुझे उन्होंने हल्का कर दिया और आत्म-कल्याण करने का अवसर दिया। मैं उनका भी अनुग्रह मानता हूँ।

जंगल में घूमते हुए अवधनरेश को एक बनिया मिला। उसका जहाज पानी में डूब गया था। वह सोचता था-यह तो गनीमत हुई कि मैं जीवित बच गया। मगर मेरे सिर पर कई लोगों का कर्ज चढ़ा है। मेरा विश्वास करके कई लोगों ने मुझे पून्जी दी थी। अब उनकी पून्जी अगर उनके पास नहीं पहुँचती तो विश्वासघात होगा। मैं मर भी नहीं सकता। लोगों का कर्ज चुकाये बिना मरने का मुझे अधिकार ही नहीं है। मेरे

सर्वस्व भले ही चला गया है, पर सद्बुद्धि मेरी बनी हुई है। अगर थोडी-सी नई पून्जी मिल जाय तो कमाई करके मैं कर्ज उतार सकता हूँ। मगर कठिनाई तो यही है कि थोड़ी पून्जी भी कहाँ पाऊँ ?

इस प्रकार सोच-विचार मे डूबे हुए उस वणिक को अवधनरेश का खयाल आया। उसने सोचा—अवधनरेश के पास चलना चाहिए। सम्भव है, उनसे मुझे कुछ सहायता मिल सके। वह अवधनरेश के पास जाने के लिए रवाना हुआ। चलते-चलते वह उसी जंगल मे आया, जहाँ राजा रहता था। साधारण जगली के भेप में उसे अवधनरेश मिल भी गया। मगर वह उसे पहिचान नहीं सका। उसने उसे आवाज देकर पूछा—'अरे भाई ! अयोध्या का रास्ता कौन-सा है ?'

अवधनरेश—अयोध्या क्यों जा रहे हो ?

वणिक्—मेरा जहाज डूब गया है। मेरे सिर पर कर्ज चढ़ा हुआ है। चाहता हूँ, किसी उपाय से कर्ज उतर जाय तो अच्छा है। लेकिन मेरे पास पून्जी नहीं है पून्जी हो तो अपनी बुद्धि से रुपया कमा कर कर्ज चुका सकता हूँ। अयोध्या के महाराज के पास इसी प्रयोजन से जा रहा हूँ। आशा है वह मेरा दु ख दूर करेंगे।

अवधनरेश सोचने लगे—लोग अभी तक अवध और अवधनरेश को भूले नहीं हैं। प्रकट में उन्होंने कहा—भाई, अयोध्या का राजा तो काशीनरेश को अपना राज्य देकर जंगल में चला गया है। इस समय अयोध्या में का[illegible] ही राज्य है।

यह दुःसवाद सुनकर वणिक् को बड़ा दुःख हुआ। अवधनरेश ने उसके मन के भाव को समझ लिया। जिसके अन्तःकरण मे दया का वास होता है, वह किसी को दुखी नहीं देख सकता। दुखी को देखते ही उसका हृदय पिघल जाता है और अपने सर्वस्व को त्याग कर भी वह दूसरे का दुःख दूर करने की भरसक चेष्टा करता है।

अवधनरेश ने कहा—भाई, अगर तेरा काम सवा मन सोने से चल सकता हो तो मैं दिला सकता हूँ।

वणिक् को पहले तो विश्वास नहीं हुआ। वह आंख फाड़ कर अवधेश की ओर देखने लगा और मन ही मन पता लगाने लगा कि इसकी बात कहा तक सच है? फिर-बोला अगर सवा मन सोना मिल जाय तो उससे मै बहुत कुछ कर सकता हूँ और अपने सिर का बोझा-ऋण-उतार सकता हूँ।

अवधनरेश ने सोचा-अपने सिर का बोझ उतारने के लिए इसे द्रव्य की आवश्यकता है। काशीनरेश ने घोषणा कर ही रक्खी है कि वह मेरे सिर के बदले सवा मन सोना देगा। आज नहीं तो कल, एक दिन मै मर ही जाऊँगा। उस दिन यह सिर वृथा चला जायगा। ऐसी हालत मे आज अगर मेरे सिर से दूसरे के सिर का बोझा उतरता है और किसी की भलाई होती है तो अपने सिर को दे देने मे क्या हर्ज है? यह उपकार काम करना ही मेरे लिए श्रेयस्कर है।

अवधनरेश ने वणिक से कहा—तुम मेरे साथ चलो। वणिक साथ हो लिया। अवधनरेश चलते-चलते काशी आये।

राजमहल के द्वार पर पहुँचकर उन्होने भीतर सूचना भिजवाई एक आदमी अवधनरेश का सिर लेकर आया है।

यह समाचार पाकर काशीनरेश को अत्यन्त प्रसन्नता हुई। उसने सिर लाने वाले आदमी को अपने सामने उपस्थित करने का आदेश दिया। अवधनरेश काशीराज के सामने, वणिक को साथ लेकर पहुँचे। उन्होने कहा-मेरा सिर ले लो और अपनी घोषणा के अनुसार सवा मन सोना इस वणिक को दे दो।

काशीनरेश को जान पड़ा, जैसे वह सपना देख रहा हो उसे अपनी आंखो और अपने कानो पर विश्वास नहीं हुआ। चकित भाव से उसने पूछा--क्या अवधनरेश तुम्हीं हो ?

अवधनरेश-अभी बहुत दिन नहीं हुए, तब मैं आपसे मिला था। क्या आप इतनी जल्दी मुझे भूल गये ? उस दिन मैं अकेला आपके पास आया था। मैंने आपसे कहा था, आपको अवध का राज्य चाहिए तो ले लीजिए। लेकिन मेरी प्रजा का पालन उसी प्रकार कीजिए, जैसे मैं कर रहा हूँ। याद तो होगा ही आपको। आप राजा है। आपको कोई बात इतनी जल्दी नहीं भूल जाना चाहिए।

काशीनरेश को उस दिन की सभी बातें स्मरण हो आईं। उसका हृदय सहसा बदल गया। विस्मित और चकित भाव से उसने कहा--यह तो मुझे याद आया कि उस दिन आप ही अपना राज्य मुझे सौंपने आये थे, मगर मैं यह नहीं समझा कि आप इस व्यक्ति के लिए अपना सिर देने क्यों जिस सहज भाव से उस दिन आपने राज्य दे दिया

उसके लिए हृदय मे किसी प्रकार की दुविधा नही की थी, कोई संकोच नही किया था, उसी सहज भाव से आज अपना सिर देने के लिए आप आये हैं। यह वात मेरी समझ मे नही आ रही है। उस दिन मैने समझा था कि अवधनरेश कायर है। यह युद्ध करने से डरता है और इसी कारण अपने प्राण वचाने के लिए राज्य सौंप रहा है, पर आज ऐसा नहीं सोच सकता। स्वेच्छापूर्वक सिर देने वाला पुरुष कायर नही कहा जा सकता। ऐसा करने के लिए असाधारण वीरता और निस्पृहता की आवश्यकता है। इस कारण मै जानना चाहता हूँ कि आप किस प्रयोजन से इस व्यक्ति के लिए अपना सिर देना चाहते है?

अवधनरेश-इस प्रपंच मे आप पड़ते ही क्यो है? आपको अवध के राजा का सिर चाहिए और वह सामने ही मौजूद है। आप अपनी तलवार संभालिए और अपनी अभीष्ट वस्तु लीजिए।

काशीराज—नहीं, अब ऐसा नहीं हो सकता। पहले कारण जान लूंगा तभी सिर लेने का विचार करूँगा। आप पूरा विवरण मुझे कह सुनाइए।

अवधनरेश—मुझे सन्देह है कि कारण जानने के पश्चात् आप तलवार चला सकेंगे। उस समय आपकी तलवार चलेगी नही। इसलिए अपना काम अभी कर लीजिए।

काशीराज—नहीं चलेगी तो न सही। कारण तो जानना ही है कि दूसरे के लिए आप अपना सिर क्यो दे रहे है?

अवधनरेश—हे राजन्! अगर मेरा यश-शरीर बना रहे और भौतिक शरीर न भी रहे तो कोई हर्ज नही। इन दोनो मे

नगर मे यह बात फैल गई कि अवध के राजा अपना मस्तक देने आये है और सीधे राजा के पास गये है। यह बात सुनते ही लोग आपस मे कहने लगे—वह दुष्ट फौरन अवधनरेश का सिर धड़ से जुदा कर देगा। इस भयानक आशका से चिन्तित लोग राजमहल की ओर दौड़े आये। वह जानने के लिए अतिशय व्यग्र थे कि अवधनरेश के विषय मे क्या निर्णय किया गया है? उन्हे उसी समय ज्ञात हुआ कि स्वयं काशीराज, अवधनरेश की जय बोल रहे है। यह जयकार सुनकर लोगो को कितना हर्ष हुआ, कहना कठिन है। पर उस जयकार के उत्तर मे. राजमहल के बाहर से गगनभेदी ध्वनि गूज उठी-'जय हो मस्तक देने वाले की और जय हो मस्तक लेने वाले की !'

अवधनरेश और काशीराज—दोनों एक ही सिंहासन पर गुरु शिष्य की भाँति बैठे। अगर काशीराज अवधेश का सिर काट लेता तो उसे क्या मिलता? क्या वह प्रजा की ओर से सन्मान प्राप्त कर सकता था? नहीं। जो सुनता वही घृणा करता और उसकी क्रूरता पर थूकता। इसके अतिरिक्त काशी-राज का सुधार होना शक्य न होता। मगर अवधनरेश के दैवी बल से वह सुधर गया। उस दैवी बल को अपना लेने से काशीराज भी प्रजावत्सल राजा बन गया। संसार मे आसुरी बल भी है और दैवी बल भी है। आसुरी बल आसुरी प्रकृति को बढ़ाता है और दैवी बल दैवी प्रकृति को उत्तेजित करता है। विचार करने पर विदित होगा कि इन दोनों मे दैवी बल ही ...ान् है।

अनुचरी

भगवान् अरिष्टनेमि ने दीक्षा ले ली, यह समाचार सुनकर राजीमती को बडा आघात लगा। वह यह सोचती हुई मूर्छित हो गई कि जब राजकुमार द्वार से लौटकर जाने लगे, उस समय मुझे आशा थी कि एक बार तो वह आएँगे ही। वे मुझे सन्तुष्ट करके ही दीक्षा लेंगे। मगर उन्होने मुझसे मिले बिना ही दीक्षा ले ली। यह मेरा अपमान है। इस प्रकार के विचार से राजीमती बेहोश हो गई। तब राजीमती की सखी ने उसे होश मे लाकर कहा—तुम शोक और विषाद क्यो करती हो। राजकुमार का दीक्षित हो जाना तो तुम्हारे लिए आनन्द की बात है। अब किसी दूसरे राजकुमार के साथ तुम्हारा विवाह हो सकेगा। अब उनकी आशा तो नहीं रही। यह अच्छा ही हुआ। वे जैसे तन से काले है वैसे ही मन से भी काले हैं। राजकुमारी, जो हुआ, अच्छा ही हुआ। अब निश्चिन्त हो जाओ।

सखी की बात सुनकर राजीमती ने कहा—सखी, रहो। ऐसा मत कहो। मै उनकी निन्दा सहन नहीं कर ५

वे शरीर से काले दिखाई देते हैं, इस कारण तुम उनकी उपेक्षा कर रही हो। लेकिन मेरी दृष्टि मे उनका बहुत महत्त्व है। काले होने के कारण वे उपेक्षणीय नहीं हो सकते। अगर कालापन बुरा है तो आँखो की काली-काली पुतलियो को निकालकर क्यो नहीं फैंक देती? सखी, तुम महापुरुषो के चरित्र की गहनता को नही समझ सकती। जो विषयभोग के कीड़े बने हुए हैं वे उनके पवित्र और उच्च चरित्र के महत्त्व को क्या समझें! अतएव तुम चुप ही रहो।

सखी—ऐसा है तो फिर उदास क्यो हो?

राजीमती—मेरी उदासी का कारण यह है कि पति तो चले गये और मै घर मे ही हूँ।

राजीमती का त्याग कितना उज्ज्वल है! इसी लिए कहा जाता है—

न होते नेम तो क्या गाते जैन के जती।

राजीमती कहती है—सखी, प्रभु मुझे जागृत करने के लिए ही आये थे। वे मेरे साथ दगा करने नहीं आये थे। अगर वे यहाँ से जाकर किसी दूसरी कन्या के साथ विवाह कर लेते तो दगा समझा जा सकता था। उन्हे क्या दूसरी कन्या नहीं मिल सकती थी? महाराज समुद्रविजय की पुत्रवधू कौन नहीं बनना चाहेगी! लेकिन उन्हे तो विवाह ही नहीं करना था। वे मुझे बोध देने के लिए ही यहाँ तक आये थे। उनका बोध मुझ तक पहुँच गया है। उनकी अव्यक्त वाणी मेरे कानो मे गूंज रही है। वे कह रहे है-'मैं जिस मार्ग पर जा रहा हूँ, उसी मार्ग पर तू भी आ।'

उत्सर्ग

प्रवचनमाता का आपके लिए यह आदेश है कि मस्तिष्क के बल को हृदयबल के नियन्त्रण मे रक्खो। हृदयबल वाले मे कैसी उदारता होती है और हृदयबल के होने पर क्या होता है, यह समझने के लिए एक उदाहरण लीजिए। यह उदाहरण जगत्-मान्य है। रामचन्द्र को कौन नही जानता? उन्हीं का उदाहरण लीजिए.—

रामचन्द्र जब योग्य अवस्था के हो गये तो प्रजा उनका राज्याभिषेक देखने के लिए लालायित हो उठी। लोग सोचने लगे—महाराज इन्हे राज्यसत्ता क्यो नहीं देते? इस तरह की बातें नगर में हो रही थीं कि इतने में ही एक बात हो गई। महाराज दशरथ को अपने सिर पर सफेद बाल नजर आ गया और वह भी कान के पास। बाल सफेद देखकर दशरथ सोचने लगे—यह बाल क्या सन्देश दे रहा है? यह बाल मानो कह रहा है कि—राजा, राजपाट छोडकर भगवान् का भजन करो। अब ससार की प्रवृत्तियो से निवृत्ति लो। यदि तुम

वे शरीर से काले दिखाई देते है, इस कारण तुम उनकी उपेक्षा कर रही हो। लेकिन मेरी दृष्टि मे उनका वहुत महत्त्व है। काले होने के कारण वे उपेक्षणीय नहीं हो सकते। अगर कालापन बुरा है तो आँखों की काली-काली पुतलियो को निकालकर क्यो नहीं फैक देती? सखी, तुम महापुरुषो के चरित्र की गहनता को नही समझ सकती। जो विषयभोग के कीड़े वने हुए हैं वे उनके पवित्र और उच्च चरित्र के महत्त्व को क्या समझें! अतएव तुम चुप ही रहो।

सखी—ऐसा है तो फिर उदास क्यो हो?

राजीमती—मेरी उदासी का कारण यह है कि पति तो चले गये और मैं घर मे ही हूँ।

राजीमती का त्याग कितना उज्ज्वल है! इसी लिए कहा जाता है—

न होते नेम तो क्या गाते जैन के जती।

राजीमती कहती है—सखी, प्रभु मुझे जागृत करने के लिए ही आये थे। वे मेरे साथ दगा करने नहीं आये थे। अगर वे यहाँ से जाकर किसी दूसरी कन्या के साथ विवाह कर लेते तो दगा समझा जा सकता था। उन्हे क्या दूसरी कन्या नहीं मिल सकती थी? महाराज समुद्रविजय की पुत्रवधू कौन नहीं बनना चाहेगी! लेकिन उन्हे तो विवाह ही नहीं करना था। वे मुझे बोध देने के लिए ही यहाँ तक आये थे। उनका बोध मुझ तक पहुँच गया है। उनकी अव्यक्त वाणी मेरे कानो मे गूंज रही है। वे कह रहे है-'मै जिस मार्ग पर जा रहा हूँ, उसी मार्ग पर तू भी आ।'

उत्सर्ग

प्रवचनमाता का आपके लिए यह आदेश है कि मस्तिष्क के बल को हृदयबल के नियन्त्रण मे रक्खो। हृदयबल वाले में कैसी उदारता होती है और हृदयबल के होने पर क्या होता है, यह समझने के लिए एक उदाहरण लीजिए। यह उदाहरण जगत्-मान्य है। रामचन्द्र को कौन नहीं जानता? उन्हीं का उदाहरण लीजिए —

रामचन्द्र जब योग्य अवस्था के हो गये तो प्रजा उनका राज्याभिषेक देखने के लिए लालायित हो उठी। लोग सोचने लगे—महाराज इन्हें राज्यसत्ता क्यो नहीं देते? इस तरह की बातें नगर में हो रही थीं कि इतने में ही एक बात हो गई। महाराज दशरथ को अपने सिर पर सफेद बाल नजर आ गया और वह भी कान के पास। बाल सफेद देखकर दशरथ सोचने लगे—यह बाल क्या सन्देश दे रहा है? यह बाल मानों कह रहा है कि—राजा, राजपाट छोडकर भगवान् का भजन करो। अब संसार की प्रवृत्तियो से निवृत्ति लो। यदि तुम

निवृत्ति न लोगे तो दूसरे लोग भी यही सोचेंगे कि संसार मे कोई आनन्द है, तभी तो राजा से ससार नहीं छोडा जाता और इसी कारण राम के योग्य हो जाने पर भी राजपाट उन्हे नही सौंपते है !

आप लोग अपनी सन्तान के सामने क्या आदर्श उपस्थित करते है ? अगर आप सन्तान के सामने त्याग का आदर्श रक्खेंगे तो सन्तान भी त्यागशील बनेगी। इसके विपरीत अगर आप स्वयं संसार को ज्यादा पकड़े रहे तो सन्तान का ज्यादा पकड़ना स्वाभाविक ही है।

सफेद बाल को निवृत्ति के लिए सूचना रूप मानकर राजा दशरथ ने सवेरे ही अपने सलाहकारो को एकत्र किया और कहा—यह सफेद बाल मुझे निवृत्त होने की सूचना दे रहा है। अतएव मै चाहता हूँ कि अगर आप लोग सहमत हो तो कल ही राम को राज्य सौंपकर राज्य-काज से निवृत्त हो जाऊँ।

राजा ने जो कुछ कहा, वह किसे न पसन्द हो सकता था ? सभी चाहते थे कि राम राजा हो। लोगो के मनोरथ रूपी बेल के लिए राजा का कथन आधाररूप हो गया। सब ने एक स्वर से राजा की बात का समर्थन किया। राजा ने राज्याभिषेक की तैयारी करने का आदेश दे दिया और अगला दिन अभिषेक के लिए नियत कर दिया।

पहले के जमाने मे, राज्याभिषेक या विवाह आदि के वसरो पर आजकल की तरह आडम्बर नही होता था। अत- तैयारी मे अधिक समय भी नही लगता था। प्रायः एक ही

दिन मे सारा काम निवटा दिया जाता था। इसी कारण राजा दशरथ ने कहा कि सब तैयारी कर ली जाय और कल सवेरे ही राम को राज्य दे दिया जाय। इधर सूर्य निकलेगा, उधर रामचन्द्र राजसिंहासन पर बैठेंगे।

रामचन्द्र के राज्याभिषेक का समाचार सारे नगर मे फैल गया। रामचन्द्र के मित्र इस समाचार से फूले न समाये। कोई सोचने लगे—अब हमारी पाँचो उंगलियाँ घी मे हैं। कोई कहने लगा—हमारी सात पीढ़ियो की दरिद्रता अब दूर हो जायगी। स्वार्थी लोग ऐसे-ऐसे कारणो से ही वडो के साथ मित्रता रखते है। राम के ऐसे मित्र सोचने लगे—मै सब से पहले पहुँचकर बधाई दूँ तो मेरी विशेपता है!

इस प्रकार सोचकर वे राम के पास पहुँचे। उस समय राम किसी गंभीर चिन्ता में डूबे थे। वे अपने कर्त्तव्य के विपय मे विचार कर रहे थे। वे सोच रहे थे कि आखिर मेरे जीवन का उद्देश्य क्या है? मैं राजसिंहासन को अलंकृत करूँ या जनता की सेवा करूँ? राजसत्ता द्वारा जनता का कोई विशेप उपकार नही हो सकता। जनसाधारण के उपकार के लिए योगसत्ता अपेक्षित है। लेकिन मुझे कौन-से मार्ग का अवलम्बन करना चाहिए?

रामचन्द्र जब विचारों की तरंगो मे वहते-वहते स्थिर न हो पाये तो उन्हे सीता का ध्यान आया। सीता से कहने लगे-सीता, तुम मेरी धर्मपत्नी हो और राज्य करते हुए भी आध्यात्मिक ज्ञान रखने वाले महाराज जनक की पुत्री हो। अतएव मैं तुमसे परामर्श चाहता हूँ। कहो मेरे जीवन का लक्ष्य क्या होना चाहिए?

सीता के बदले दूसरी कोई होती तो चटपट उत्तर देती-'प्राणनाथ, राजा बन कर आनन्द भोगो और मेरे लिए ऐसे-ऐसे जेवर बनवा दो।' लेकिन सीता तो सीता ही थी। उसने नम्रता-पूर्वक कहा-स्वामिन्, मै आपकी दासी हूँ। मै आपके संबंध मे क्या कह सकती हूँ ? फिर भी इतना निवेदन अवश्य करूँगी कि आप जैसे असाधारण पुरुष के द्वारा कोई असाधारण अलौकिक कार्य होना ही चाहिए, जिससे आपके आदर्श को सन्मुख रखने से जनता का कल्याणमार्ग सरल हो जाय। जगत् मे इस समय अधर्म फैला हुआ है। जनता मे धर्म जागृति उत्पन्न करने योग्य कोई कार्य हो तो अच्छा है।'

राम ने अपने जीवन का ध्येय निश्चित करने के लिए सीता से सलाह ली थी। क्या आप भी कभी अपनी पत्नी से इस प्रकार सलाह लिया करते है ? अगर आपके विचार राम के समान उदार हो और आपकी पत्नी सीता के समान आपकी सहायिका बने तो इस संसार मे सीता और राम के अनेक जोड़े दृष्टिगोचर होने लगे।

सीता का विचार सुन लेने के पश्चात् राम ने लक्ष्मण के सामने भी यही समस्या उपस्थित की। लक्ष्मण बोले-मै और कुछ नहीं जनता, सिर्फ आपकी आज्ञा जानना चाहता हूँ। आपको सलाह देने की योग्यता मुझमे नहीं है। फिर भी आपने पूछा है तो यह निवेदन करना चाहता हूँ कि सांसारिक प्रवृत्तियो मे तो सभी फँसे रहते है। आपके द्वारा कोई प्रधान कार्य होना योग्य है। आपके हाथो जगत्कल्याण का कार्य न हुआ तो फिर किसके हाथ से होगा ?

इस प्रकार सीता और लक्ष्मण की सम्मति लेकर रामचन्द्र ने निश्चय किया कि कल पिताजी से निवेदन कर देना चाहिए कि मैं निवृत्ति मे ही रहना चाहता हूँ। मै राज्य सम्बन्धी झंझटो मे नहीं फँसना चाहता।

इधर राम ने यह सोचा और उधर उनके मित्र आ धमके। मित्रों ने उन्हे प्रसन्नता के साथ बधाई दी। रामचन्द्र ने बधाई के उत्तर मे कहा–मैं राज्यबल ग्रहण नहीं करना चाहता। मेरी इच्छा योगबल प्राप्त करने की है। राज्य सम्भालने के लिए तो मेरे दूसरे भाई है ही। मै राज्य लेकर क्या करूँगा? आश्चर्य है कि दूसरे भाइयो के होते हुए पिताजी ने मुझे राज्य देने का विचार किया।

विमल वंश यह अनुचित एकू।
बन्धु बिहाय बड़ेहि अभिषेकू॥

इस निर्मल वंश के लिए एक मात्र कलक की बात यही है कि छोटे भाइयों के होते हुए भी बड़े को राज्य दिया जाता है। राज्य तो छोटे को दिया जाना चाहिए।

राम का यह विचार क्या आपको पसन्द आता है? चाहे आप पसन्द करें या न करें, मगर धर्म का मार्ग त्याग और उदारता ही है। कहा भी है—

या निशा सर्वभूतानां तस्यां जागर्ति संयमी।
यस्यां जाग्रति भूतानि सा निशा पश्यतो मुने॥

अर्थात्—जगत् मे फँसे हुए लोग जिसे अन्धकार कहते

है, ज्ञानी जन उसे प्रकाश कहते है और जगत के लोग जिसे प्रकाश मानते है, योगी उसे अन्धकार समझते है।

इस प्रकार सर्वसाधारण मे और ज्ञानियो मे भेद है। जब तक मस्तिष्क मे और हृदय मे भिन्नता रहेगी तब तक ज्ञानियो मे और आप मे भिन्नता रहनी स्वाभाविक है। जब आप मस्तिष्क को हृदय के अधीन कर लेंगे तो बहुतेरे विवाद स्वतः शान्त हो जाएँगे।

राम का कथन सुन कर उनके मित्र सोचने लगे-यह अद्भुत बात है। राज्य के अधिकारी आप है। छोटे भाई राज्य कैसे पा सकते है?

राम ने कहा—यह ठीक है कि मै बड़ा हूँ और इसी कारण यह भी ठीक है कि राज्य मुझे नहीं मिलना चाहिए। बड़प्पन लेने मे नही, देने मे है।

राम के कुछ मित्रो ने समझा, राम मे आज पागलपन आ गया है! इनसे भविष्य मे क्या आशा की जा सकती है! अतएव वे निराश होकर धीरे-धीरे खिसक गये। कुछ सरल-हृदय मित्र बैठे रहे। उन्होने कहा-आपके विचार अतिशय उदात्त है। मानवीय बुद्धि जिस ऊँचाई पर पहुँच नही सकती उस पर आप अनायास ही जा पहुँचे है। निस्सन्देह आप असाधारण पुरुष है और आपके द्वारा जगत् का महान् कल्याण होगा।

राम ने कहा—मुझे प्रसन्नता है कि मेरे विचार आपकी

समझ मे सही हैं। देखना तो यह है कि मेरे विचार क्रियान्वित होंगे या नहीं।

प्रातःकाल होने पर रामचन्द्रजी प्रतिदिन की भांति पिता को प्रणाम करने गये। वहाँ देखा कि सारा मामला ही बदल गया है। रानी कैकेयी ने किस प्रकार वरदान मांगा, यह बात प्रसिद्ध है। महाराज दशरथ को इस मांग के कारण ऐसा धक्का लगा कि वे बेहोश हो गये। उसी समय रामचन्द्र वहाँ पहुँचे। पिता को मूर्छित देख राम सोचने लगे-मेरे होते हुए पिता को किसी प्रकार का कष्ट होना मेरे लिए कलंक की बात है। यह सोच कर उन्होंने पिता को आवाज दी। आवाज सुन कर दशरथ ने आँखें खोलीं और राम को देख कर फिर बन्द कर लीं। राम ने सोचा-पिताजी को कोई बडा आघात लगा जान पडता है। उन्होंने अपनी दृष्टि पीछे फेरी तो वहाँ कैकेयी बैठी दिखाई दी। राम ने उसे प्रणाम किया। वह बोले—माता, मैंने अभी तक आपको देखा नहीं था और इसी कारण प्रणाम नहीं किया। मेरी भूल के लिए क्षमा कीजिए। मैं यह जानना चाहता हूँ कि पिताजी आज दुखी क्यों है?

राम का कथन सुन कर कैकेयी ने रुखाई के साथ कहा-राम, तुम मिष्टभाषी हो और तुम्हीं क्यों, तुम्हारे पिता और तुम्हारी माता ने भी मीठा बोलना खूब सीखा है परन्तु मै अब मीठी बोली के भुलावे मे आने वाली नहीं हूँ।

यह अप्रत्याशित उत्तर सुन कर राम को बहुत दुःख हुआ। वह कहने लगे-माताजी, आपने किस आशय से यह बात कही है? मैं अपना अनिष्ट करने वाले के प्रति भी कटुक भाषण नहीं कर सकता। फिर आप तो मेरी माता हैं। आपसे

कटुक बात कैसे कह सकता हूँ ? आपके कहने से मालूम होता है कि आपके सामने मेरा मीठा बोलना आपको भुलावे में डालना है; मगर ऐसा समझना भ्रम है। आप किसी भी समय मेरी परीक्षा करके देख लीजिए कि क्या मैं आपको भुलावे में डालने के लिए मीठा बोल रहा हूँ ?

कैकेयी ने कहा—अच्छा, तुम बताओ कि महाराज ने मुझे जो वर दिया था उसे मांगने का मुझे अधिकार है या नहीं? और मैं अपनी इच्छा के अनुसार वर माँग सकती हूँ या नहीं ?

राम—हाँ, आपको वर माँगने का अधिकार है और आप अपनी इच्छा के अनुसार ही वर माँग सकती हैं।

कैकेयी—मेरे वर माँगने के कारण ही महाराज मूर्छित हो गये हैं। तुम पूछ लो कि इन्होंने मुझे वर माँगने के लिए कहा था या नहीं ? और इनके कहने से ही मैंने वर माँगा है या नहीं? जब इनके कहने से ही वर माँगा है तो मैं कोई तुच्छ चीज तो क्या माँगती ? मैंने भरत के लिए राज्य माँगा है। लेकिन महाराज भरत को शायद इस योग्य नहीं समझते। संभव है, कोई दूसरा कारण भी हो। इसी से महाराज मूर्छित हो गये हैं। मैंने यह भी कह दिया कि आप कह दीजिए—मैंने धर्म छोड़ा। पर वे ऐसा भी नहीं कहते और दुःख मान रहे हैं।

कैकेयी का यह स्पष्टीकरण सुनकर राम प्रसन्न हुए। वह सोचने लगे—किसी अदृश्य शक्ति के प्रभाव से ही माता ने यह वर माँगा है। इसकी पूर्ति होने से मेरा वह लक्ष्य सहज ही पूरा हो जायगा, जिसके संबंध में मैंने कल निश्चय किया था।

अदृश्य शक्ति किस प्रकार अपना काम करती है, यह बात ध्यान में रखनी चाहिए। आप यहाँ बैठे है। आपके लिए घर पर क्या भोजन बन रहा है, आपको पता नहीं है। फिर भी उस भोजन के बनने मे आपकी अदृश्य शक्ति काम कर रही है। अतएव अदृश्य शक्ति पर भी विश्वास रखना चाहिए।

कैकेयी का कथन सुनकर राम ने कहा—

सुन जननी सोइ सुत बड़भागी, जो पितु मातु चरण-अनुरागी।

तनय मात-पितु पोषनहारा, दुर्लभ जननि यही ससारा॥

भरत प्राणप्रिय पावहिं राजू, विधि सब विधि सन्मुख मोहिं आजू।

जो न जाउँ बन ऐसे हु काजा, प्रथम गनिय मोहिं मूढ समाजा॥

राम कहते है—माता, यह वर माँग कर आपने मुझे भाग्यशाली बनाने का प्रयत्न किया है। माता कौशल्या ने तो मुझे जन्म ही दिया है, लेकिन आप मेरा उत्थान कर रही है। माता-पिता की आज्ञा का पालन करना पुत्र का धर्म है। जो ऐसा करते है वे अवश्य ही सद्भागी हैं। फिर आपकी यह आज्ञा तो मेरी इच्छा के अनुकूल ही है।

क्या आजकल के लड़के भी माता-पिता के वचन का पालन करने का ध्यान रखते हैं? उचित तो यही है कि माता-पिता अपना धर्म पालें और पुत्र अपने धर्म का पालन करें। कदाचित माता-पिता अपना धर्म छोड दें तो क्या इसी कारण पुत्र को भी अपना धर्म छोड़ देना चाहिए? एक ने अपना धर्म त्याग दिया है, यह देखकर दूसरे को अपना धर्म नहीं त्याग देना

चाहिए। राम कहते है कि जो पुण्यवान् होगा वही माता-पिता की आज्ञा का पालन करेगा। क्योंकि माता-पिता का महत्त्व भी कुछ कम नहीं है। जैन शास्त्रो मे कहा है कि माता देव-गुरु के समान है। उपनिषदो मे भी कहा है—

मातृदेवो भव, पितृदेवो भव, आचार्यदेवो भव।

इस प्रकार जैनशास्त्र और उपनिषद् दोनो एक ही बात कहते है। बात कहने का ढग तो अलग हो सकता है लेकिन सच्ची बात तो सभी स्वीकार करते हैं।

राम ने कैकेयी से कहा—माता, आपने जो कुछ किया है उसमे मेरा हित ही समाया हुआ है। कदाचित् आपके वर मांगने से मेरा अहित होता तो भी माता-पिता की आज्ञा का पालन करना ही मेरे लिए उचित होता। नीति कहती है—

आज्ञा गुरूणा खलु धारणीया।

जो अपने से बडे है, उनकी आज्ञा अवश्य ही मानना चाहिए। फिर वह आज्ञा चाहे रुचिकर हो चाहे अरुचिकर हो। गुरुजन की आज्ञा के औचित्य-अनौचित्य पर विचार करने का हमे अधिकार नही है।

वह सेना कभी विजयी नहीं हो सकती जो बिना सोचे-समझे अपने सेनापति की आज्ञा का पालन नहीं करती। सेना ने नही देखना चाहिए कि आज्ञा उचित है या नही? एक मात्र कर्त्तव्य आज्ञा का पालन करना है। खेद है कल हमारे देश मे उच्च श्रेणी के अनुशासन की बहुत । अनुशासन के अभाव मे कोई भी देश, समाज या वर्ग

उन्नति नहीं कर सकता। अधिकारी का कर्त्तव्य है कि वह अपनी बुद्धि को जागृत रक्खे और सोचे कि कहाँ कितने अनुशासन की आवश्यकता है; पर जिन्हें अनुशासन का पालन करना है उन्हे तो पालन करना ही चाहिए। पहले भारतवर्ष मे यह माना जाता था कि जिन्हे हमने बडा माना है उनकी आज्ञा हमारे लिए पालनीय है।

राम कहते हैं—'माता, ससार मे पुत्र तो बहुत होते है लेकिन माता-पिता की आज्ञा का पालन करने वाला पुत्र विरला ही होता है।'

इस प्रकार का पुत्र उन्ही माता पिता को प्राप्त होता है जिन्होने पूर्व जन्म मे अच्छा तप किया हो। पुण्य के उदय से ही धार्मिक पुत्र की प्राप्ति होती है। जो माता-पिता नीम के समान हैं, वे आम के समान पुत्र कैसे पा सकते हैं? आम सरीखा पुत्र पाने के लिए खुद को आम के समान बनना चाहिए।

सारांश यह है कि पुत्र को माता-पिता की आज्ञा पालनी ही चाहिए, क्योकि उनका पुत्र पर महान उपकार है। ठाणांगसूत्र में कहा है कि पिता, माता और धर्माचार्य के उपकार से उरिन होना कठिन है।

काम के लिए भी अगर वन न जाऊँगा तो परले सिरे का मूढ गिना जाऊँगा।

आज क्या छोटे के सुख के लिए वडा दु ख भोगता है? अगर कोई वड़ा हो कर भी छोटे के लिए दु.ख नहीं भोगता तो वह बड़ा काहे का है! वह तो वैसा ही वडा है जैसे घोडे का पूंछडा वड़ा होता है!

कैकेयी—राम, तुम्हारी वातो मे मिठास तो वहुत है, मगर सचाई कितनी है, यह तो समय आने पर ही मालूम होगा।

राम—चिन्ता मत करो माँ, मै अपनी बातो की सचाई प्रकट कर दूँगा। आप थोड़ी देर के लिए अलग हो जाइए, जिससे मै पिताजी को समझा सकूँ।

राम का कहना मानकर कैकेयी वहाँ से हट गई। राम ने पिता को जागृत करके कहा-पिताजी, आप दुःख क्यो मना रहे है? माता के मन मे जो भेदभाव आया है वह उत्पन्न तो आपने ही किया है। आपके लिए मै और भरत उसी प्रकार समान है जिस प्रकार दोनो नेत्र समान है। लेकिन आपके चित्त मे हम दोनो को लेकर भेदभाव उत्पन्न हुआ। इसी से आपने मुझे राज्य देने का विचार किया। आपके मन के भेदभाव ने ही माता के मन मे भेदभाव उत्पन्न किया है। खैर, जो हुआ सो ... ही हुआ है, यह मानकर आप उठिये और चिन्ता न ...। आपकी चिन्ता तो मेरे लिए ही है न? लेकिन जब ... ही चिन्ता नहीं है तो आपको चिन्ता करने की क्या आव- ... है?

रेडियम धातु बहुत मूल्यवान मानी जाती है। कहा जाता है कि उसकी एक कणी भी बहुत-से रोग मिटा सकती है। जिसकी एक कणी भी ऐसी है, उसका पहाड़ अगर किसी को मिल जाय तो कितनी प्रसन्नता की बात हो? राम का यह अनूठा चरित रेडियम के पहाड़ के समान है। अगर आप इस सारे पहाड़ को अपना सकें तब तो कहना ही क्या है! अगर यह संभव न हो और इसमें आप ने एक कणी भी ग्रहण करली तब भी इह लौकिक और पारलौकिक कल्याण हो सकता है। आपने राम-चरित में से थोड़ा-सा भी अंश ग्रहण किया है, इस बात की साक्षी यह है कि आप को किसी भी प्रकार के झगड़े के कारण कचहरी में न जाना पड़े और किसी भी रोग के कारण अस्पताल में पैर न रखना पड़े। साथ ही जब आपके हृदय का मैल दूर हो जाय और आप तप-त्याग को अपनावें तभी यह जाना जा सकता है कि आपने राम के चरित्र से कोई शिक्षा ली है।

राम का कथन सुनकर दशरथ चकित रह गये। मन ही मन यह कहने लगे—राम के व्यक्तित्व की ऊँचाई का पता आज लगा! यह तो वन में जाने में भी कष्ट नहीं समझते! आज ही मुझे मालूम हुआ कि राम साधारण मनुष्य नहीं है।

जहाँ तक राज्यव्यवस्था का प्रश्न है, वहाँ तो भरत आपसे कुछ कम नहीं निकले। भरतजी ने आपका स्मरण करके राज्य चलाया है, अतएव राज्य की संपदा भी दसगुनी हो गई है और प्रजा भी सकुशल है।

राम के चरित को याद रखकर राज्य करने वाला पाप नहीं करेगा। अतएव सदा राम को स्मरण रक्खो और अपने धर्म का पालन करो। इसी में सब का कल्याण है।
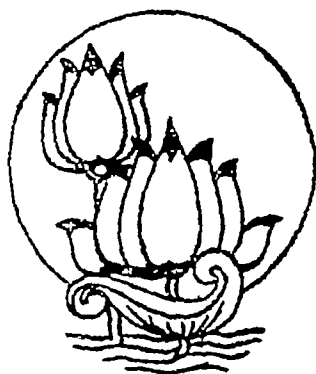
विजय-पथ

कौरवों और पाण्डवों में कलह क्यों था? इस प्रश्न का उत्तर लम्बा है। उस पर विवेचन करने का समय नहीं है। यहाँ सिर्फ इतना ही कहना पर्याप्त है कि युधिष्ठिर दुर्योधन से अपना हक मांगते-मांगते थक गये। मगर दुराग्रही दुर्योधन ने साफ कह दिया—युद्ध के बिना मैं थोड़ी-भी भूमि नहीं दूँगा। दुर्योधन का यह स्पष्ट उत्तर पाकर भी युधिष्ठिर ने सोचा—हमें थोड़ा प्रयत्न और कर लेना चाहिए जिससे कोई हमें दोषी न ठहरा सके। यह सोचकर पांचों पाण्डव द्रौपदी के साथ कृष्ण के पास द्वारिका गये। युधिष्ठिर ने कृष्ण को सारा वृत्तान्त सुनाया। उन्होंने यह भी कहा—दुर्योधन के भीषण अन्याचारों और अन्यायों के बावजूद भी मैं यही चाहता हूँ कि भरतवंश सुरक्षित रहे। उसे किसी प्रकार क्षति न पहुँचे। लेकिन दुर्योधन हमारा राज्य हमारे मांगने पर भी नहीं लौटाता और हमें दबाता है। हम आपके पास आये हैं। आप ही हमें मार्ग सुझाइए। हमें अब क्या करना चाहिए? आप हमें जो आदेश देंगे, उसे हम शिरोधार्य करेंगे, यह कहने की तो आवश्यकता ही नहीं है।

इस प्रकार युधिष्ठिर ने कृष्ण पर भार डाल दिया। भीम और द्रौपदी ने भी अपने उग्र विचार कृष्ण के सामने प्रकट किये! सब की बात सुनकर कृष्ण ने अर्जुन से पूछा-तुम क्यो चुप हो? तुम भी अपने विचार प्रकट करो।

अर्जुन ने नम्रता के साथ कहा—जब मै आपका शिष्य बन गया हूँ, मैने आपको हाथ जोड़ लिये है, तो आपसे भिन्न कहाँ रहा? मुझसे कुछ जानने या पूछने की आवश्यकता ही क्या रह गई है? मै अपना सर्वस्व आपको सौंप चुका हूँ। मेरा सिर्फ एक ही कर्त्तव्य है—आपके आदेश को स्वीकार करना। ऐसा करने मे चाहे सर्वस्व जाता हो या प्राण देने पड़ते हो।

कृष्ण—यह तो ठीक है, मगर मै तुम्हारे विचार जाने बिना सधि कराने जाऊँ और वहां तुम्हारे विचारो के विरुद्ध कोई कार्य हो जाय तो ठीक नही होगा। अतएव मैं तुम्हारे विचार जान लेना चाहता हूँ।

अर्जुन—सूर्य के सामने दीपक की क्या बिसात है? फिर भी सूर्य की पूजा करने वाले लोग सूर्य को अपने घर का दीपक दिखाते ही हैं। इसी प्रकार आपके सामने मेरे विचार दीपक के समान है। लेकिन आपका आदेश है तो मै उसका उल्लघन नहीं कर सकता और अपने विचार आपके समक्ष रखता हूँ।

अर्जुन ने कहा—कृष्णजी, हम मे शक्ति है, मगर धर्म-ज अवसर आने पर हमे दबा देते है। मुझे यह बात रुचती [illegible]। यद्यपि मै अपने ज्येष्ठ भ्राता का विरोधी नहीं हूँ और उनकी आज्ञा का अनुयायी हूँ, फिर भी इस समय मैं अपने

स्वतंत्र विचार प्रस्तुत कर रहा हूँ। मैं मानता हूँ कि राज्य मांगने से नहीं मिला करता। हमने दुर्योधन और धृतराष्ट्र के हृदय को परख लिया है। वे राज्य देने की इच्छा नहीं रखते। बल्कि हमारे मांगने से उनका साहस और बढ़ गया है। वे समझने लगे हैं कि हमारे दिये बिना पाण्डव राज्य नहीं पा सकते। अगर राज्य पर उनका हक होता और उसे पाने की उनमें शक्ति होती तो याचना क्यों करते? इस प्रकार मांगने से कौरव राज्य नहीं देंगे। फिर भी हमें अपने अधिकार का राज्य तो लेना ही है। अतएव हमें अपना अधिकार अपनी शक्ति से ही प्राप्त करना चाहिए। याचना करना अपने गौरव को घटाना है।

कृष्ण—तो क्या तुम्हारा यह अभिप्राय है कि भीम के वचनानुसार मैं कौरवों के सामने युद्ध का ही प्रस्ताव उपस्थित करूँ?

छोड़ देगा। ऐसी दशा में तुम मुझे किस मार्ग का अवलम्बन करने के लिए परामर्श देते हो ?

अर्जुन—आपका विचार यथार्थ है। वास्तव मे सत्ता मनुष्य को गिरा देती है। यद्यपि सत्ता दूसरों की सेवा के लिए होनी चाहिए, मगर सत्ता प्राप्त होने पर मनुष्य मे अहंभाव आ जाता है और इस कारण सत्ताधीश घोर अनर्थ भी कर डालता है। दुर्योधन के हाथ में इस समय सत्ता है। अगर वह अपनी सत्ता का दुरुपयोग न करता तो हमे दखल देने की कोई आवश्यकता नहीं थी। लेकिन वह सत्ता का दुरुपयोग करता है—सत्ता के बल से हमे दबाना चाहता है, अतएव हमे प्राण देकर भी अपने अधिकारों की रक्षा के लिए तत्पर रहना होगा।

कृष्ण—यह तो ठीक है। मगर मैं जा रहा हूँ। अगर भीष्म और द्रोण को कोई सन्देश कहना हो तो कहो।

अर्जुन—आपके द्वारा ही अगर उन्हे सन्देश न भेजूँगा तो फिर किस के साथ भेजूँगा ? आप कृपा कर मेरे काका धृतराष्ट्र से कहना कि आप आँखो से अन्धे है मगर हृदय से अन्धे मत बनो। आपके लिए यह उचित है कि आप हम पाण्डवों और दुर्योधन को समान समझे। मगर आप पक्षपात मे पड़ गये है और दुर्योधन को अधिक तथा हमे न्यून मान कर अपने बडप्पन मे कलंक लगा रहे है। अभी तक जो हुआ सो हुआ। लेकिन अब ऐसा उपाय करो जिससे कुल का विनाश न हो।

काका से यह कहने के साथ ही आप भीष्म और द्रोण यह कहना कि अर्जुन ने आपको प्रणाम किया है। वह के उपकारों के प्रति अपनी कृतज्ञता प्रकट करता है। वैसे तो आप सत्य के पक्षपाती है और हमसे स्नेह करते हैं, लेकिन

ऐसे नाजुक प्रसंग पर चुप्पी साधना अपनी वीरता और अपने क्षात्रत्व को कलंक लगाना है। आपने इस मौके पर मौन रह कर सत्य और स्नेह की रक्षा नहीं की है। अब भी आप सावधान हो। दुर्योधन आपके बल के भरोसे ही सेना सजा रहा है और आप उसके अन्याय को जानते हुए भी उसे सहयोग देने के लिए तैयार हुए हैं। यह सर्वथा अनुचित है।

इतना कहकर अर्जुन ने कहा—आप मेरी तरफ से यह संदेश कह देना। अन्त में मैं यही कहता हूँ कि मेरी बुद्धि अल्प है और आपकी बुद्धि सागर के समान अथाह है। अतएव आप जो भी कुछ करेंगे, हम उसमें अपना कल्याण मानेंगे और आपके किये कार्य के विरुद्ध कदापि कुछ भी नहीं कहेंगे।

कर्ण से यह कह चुकने के पश्चात् अर्जुन ने युधिष्ठिर से पूछा—आपका क्या विचार है?

युधिष्ठिर-मैं ने आपकी शरण में रहकर आपका उपदेश सुना है। मैं जानता हूँ कि बड़े-बड़े शास्त्रज्ञ भी आपके विचार सुनकर नम्र हो जाते हैं और अपना पक्ष छोड़ देते हैं। आपके विचार हृदय को इस प्रकार प्रभावित कर देते हैं कि उनके विरुद्ध कोई कुछ भी नहीं कह सकता। अतएव आप जो कुछ करेंगे, मुझे स्वीकार होगा।

केश हाथ मे लेकर कृष्ण से जो कुछ कहा था, वह कथन इतना उग्र था कि उससे मुर्दा हृदय मे भी एक बार जान आ सकती थी। उसने ऐसी उग्रता भरी बात कह कर भी अन्त मे यही कहा—आप मेरे केशो का विचार अवश्य रक्खे। यो तो मै आपके साथ ही हूँ। आप जो कुछ करेगे, हमारे हित मे ही होगा और वह सब मुझे स्वीकार होगा।

इस प्रकार द्रौपदी सहित सभी पाण्डवो ने कृष्णजी पर अपना पूर्ण विश्वास प्रकट किया। परिणाम इसका यह हुआ कि महाभारत संग्राम मे पाण्डवो को ही विजय प्राप्त हुई। यद्यपि युद्ध मे कृष्ण निश्शस्त्र थे फिर भी कृष्ण पर ही सब ने विश्वास प्रकट किया। इसी विश्वास की बदौलत उन्होने विजय पाई थी। इस घटना के प्रकाश मे हमे अपने कर्त्तव्य का निर्णय करना चाहिए। आपको किस पर विश्वास रखना चाहिए ? सांसारिक सकट जब आपके मस्तक पर डमॅरा रहे हो और जब आपका अधिकार दूसरे ने अपहरण कर लिया हो तब आपको वीतराग भगवान् पर अचल आस्था रखनी चाहिए। आपको उनका निर्णय स्वीकार करना चाहिए। ऐसा करने से आपकी विजय होगी।

एक दिन सब राजकुमारो के अभ्यास की परीक्षा लेने के लिए पांडु राजा ने एक परीक्षक भेजा। परीक्षा ली जाती है तो होशियार छात्रों को आगे और मन्द छात्रो को पीछे रक्खा जाता है। इस पद्धति के अनुसार युधिष्ठिर सब राजकुमारों मे बड़े और राज्य के उत्तराधिकारी होने पर भी, पढ़ने मे कमजोर होने के कारण सब से पीछे खड़े किये गये। इस पर युधिष्ठर को क्रोध आना स्वाभाविक था, परन्तु उन्हे क्रोध नहीं आया। उन्होने सोचा—मै पढ़ने मे मन्द हूँ और इस कारण पीछे रखना ही ठीक है।

परीक्षक परीक्षा लेने आया। सब राजकुमारो को देखने के बाद परीक्षक ने शिक्षक से कहा—युधिष्ठर सब से बड़ा है, फिर भी उसे सब से पीछे क्यो रक्खा है?

शिक्षक ने कहा—युधिष्ठिर अभ्यास करने मे बहुत मन्द है और इसी कारण उसे पीछे रक्खा गया है।

परीक्षक ने युधिष्ठिर की परीक्षा लेते हुए प्रश्न किया-तुमने क्या सीखा है?

युधिष्ठिर —अभी संयुक्त अक्षर सीख रहा हूँ और वाक्य बनाने का अभ्यास करता हूँ।

यह सुनकर परीक्षक ने कहा—इतने बड़े हो गए हो और इतने वर्ष पढ़ते पढ़ते हो गए है फिर भी अब तक वाक्य बनाना नही आता! ठीक बताओ कि तुम क्या सीखे हो?

युधिष्ठिर ने पट्टी के ऊपर 'कोपं मा कुरु' लिख दिया और परीक्षक के सामने रखते हुए कहा—इतना सीखा है।

पहिले भारतवर्ष में संस्कृत भाषा प्रचलित थी। लोग संस्कृत भाषा सीखते थे। आज तो संस्कृत भाषा का स्थान अंग्रेजी भाषा ने ले लिया है और संस्कृत भाषा को लोग Dead Language अर्थात् मृतभाषा मानते हैं। अंग्रेजी भाषा जानने वाले को अच्छी नौकरी मिलती, ऐसा कुछ लोग मानते हैं और कुछ लोग इसे संस्कृत भाषा की अपेक्षा अच्छी और समृद्ध भी मानते हैं। किन्तु यह मानना भ्रमपूर्ण है। अपनी मातृभाषा की बेकद्री करना और विदेशी भाषा की कद्र करना भूल है। तुम्हारे हृदय में अपनी माता का स्थान ऊँचा है या दासी का? अगर तुम्हारे हृदय में माता के लिए उच्च स्थान है तो मातृभाषा के लिए भी ऊँचा स्थान होना चाहिए। मातृभाषा माता के स्थान पर है और विदेशी भाषा दासी के स्थान पर। दासी कितनी ही सुरूपवती और सुघड़ क्यों न हो माता का स्थान कदापि नहीं ले सकती।

प्राचीन समय में इस देश में संस्कृत भाषा प्रचलित थी और इसी भाषा में शिक्षा दी जाती थी। आज की तरह उस समय विदेशी भाषा का महत्व या प्रभुत्व नहीं था। अतएव युधिष्ठिर ने संस्कृत भाषा में अपनी पट्टी पर 'कोप मा कुरु' अर्थात् क्रोध मत करो, ऐसा लिख रखा था।

एक दिन सब राजकुमारो के अभ्यास की परीक्षा लेने के लिए पांडु राजा ने एक परीक्षक भेजा। परीक्षा ली जाती है तो होशियार छात्रो को आगे और मन्द छात्रो को पीछे रक्खा जाता है। इस पद्धति के अनुसार युधिष्ठिर सब राजकुमारो मे बड़े और राज्य के उत्तराधिकारी होने पर भी, पढ़ने मे कमजोर होने के कारण सब से पीछे खड़े किये गये। इस पर युधिष्ठिर को क्रोध आना स्वाभाविक था, परन्तु उन्हे क्रोध नहीं आया। उन्होने सोचा—मैं पढ़ने मे मन्द हूँ और इस कारण पीछे रखना ही ठीक है।

परीक्षक परीक्षा लेने आया। सब राजकुमारो को देखने के बाद परीक्षक ने शिक्षक से कहा—युधिष्ठर सब से बड़ा है, फिर भी उसे सब से पीछे क्यो रक्खा है ?

शिक्षक ने कहा—युधिष्ठिर अभ्यास करने मे बहुत मन्द है और इसी कारण उसे पीछे रक्खा गया है।

परीक्षक ने युधिष्ठिर की परीक्षा लेते हुए प्रश्न किया-तुमने क्या सीखा है ?

युधिष्ठिर —अभी संयुक्त अक्षर सीख रहा हूँ और वाक्य बनाने का अभ्यास करता हूँ।

यह सुनकर परीक्षक ने कहा—इतने बड़े हो गए हो और इतने वर्ष पढ़ते पढ़ते हो गए है फिर भी अब तक वाक्य बनाना नहीं आता ! ठीक बताओ कि तुम क्या सीखे हो ?

युधिष्ठिर ने पट्टी के ऊपर 'कोपं मा कुरु' लिख दिया और परीक्षक के सामने रखते हुए कहा—इतना सीखा है।

पहिले भारतवर्ष में संस्कृत भाषा प्रचलित थी। लोग संस्कृत भाषा सीखते थे। आज तो संस्कृत भाषा का स्थान अंग्रेजी भाषा ने ले लिया है और संस्कृत भाषा को लोग Dead Language अर्थात् मृतभाषा कहते हैं। अंग्रेजी भाषा जानने वाले को ही अच्छी नौकरी मिलेगी, ऐसा कुछ लोग मानते हैं और कुछ लोग तो संस्कृत भाषा की अपेक्षा अच्छी और समृद्ध भी मानते हैं। किन्तु यह मान्यता भ्रमपूर्ण है। अपनी मातृभाषा की उपेक्षा करना और विदेशी भाषा की कद्र करना भूल है। तुम्हारे हृदय में अपनी माता का स्थान ऊँचा है या दासी का? अगर तुम्हारे हृदय में माता के लिए उच्च स्थान है तो मातृभाषा के लिए भी वैसा स्थान होना चाहिए। मातृभाषा माता के स्थान पर है और विदेशी भाषा दासी के स्थान पर। दासी कितनी ही रूपवती और चतुर क्यों न हो माता का स्थान कदापि नहीं ले सकती।

प्राचीन समय में इस देश में संस्कृत भाषा प्रचलित थी और इसी भाषा में शिक्षा दी जाती थी। आज की तरह उस समय विदेशी भाषा का आदर या प्रभुत्व नहीं था। अतएव युधिष्ठिर ने संस्कृत भाषा में अपनी पट्टी पर 'कोप मा कुरु' अर्थात् क्रोध मत करो, ऐसा लिख रखा था।

यह सुनकर परीक्षक और अधिक कुपित हो गया। उसने क्रोध में आकर युधिष्ठिर को मारना आरम्भ किया। यद्यपि युधिष्ठिर राजपुत्र था और चाहता तो परीक्षक को उचित दण्ड दिला सकता था; परन्तु उसने क्रोध का उत्तर क्रोध से नही वरन् शान्ति से दिया। अर्थात् युधिष्ठिर पूर्ववत् प्रसन्नचित्त ही बना रहा। युधिष्ठिर को मार खाने के बाद भी प्रसन्नचित्त बैठे देखकर परीक्षक ने शिक्षक से कहा—'कैसा है यह कि मारने पर भी प्रसन्न दिखाई देता है!' शिक्षक ने कहा—'युधिष्ठिर की ऐसी ही प्रकृति है। ऐसी प्रकृति वाले को पढ़ाया भी कैसे जाय!' परीक्षक ने युधिष्ठिर से पूछा—तुम्हे इतना पीटा गया फिर भी तुमने क्रोध नहीं किया। इससे तो यह जान पड़ता है कि तुम पाटी पर लिखे वाक्य को अमल मे ला रहे हो! इस कथन के उत्तर मे युधिष्ठिर ने बतलाया—अभी मैं इस वाक्य को सिद्ध नहीं कर सका हूँ। मै ऊपर से तो क्रोध नही कर रहा था मगर भीतर ही भीतर मुझे क्रोध आ रहा था। मैं मन मे यह सोच रहा था कि मुझे मारने वाला यह होता कौन है? अर्जुन और भीम सरीखे बलवान् मेरे भाई है और भविष्य मे मै राज्याधिकारी होने वाला हूँ; फिर मुझे पीटने वाला यह होता कौन है? इस प्रकार मेरे हृदय मे क्रोध की अग्नि भड़की थी। अतएव अभी मै 'कोपं मा कुरु' इस वाक्य को सिद्ध नहीं कर सका हूँ। आप मुझे आशीर्वाद दीजिए कि मै इसे सिद्ध कर सकूँ!

युधिष्ठिर के यह नम्र वचन सुनकर परीक्षक गद्‌गद हो गया और कहने लगा—युधिष्ठिर! वास्तव मे तुमने सच्ची शिक्षा ग्रहण की है। तुमने सक्रिय ज्ञान प्राप्त किया है। लोग वाक्यों को कंठस्थ तो कर लेते हैं मगर हृदय मे नहीं उतारते। तुमने अपना ज्ञान हृदय तक पहुँचाकर क्रिया मे परिणत किया

है। अतएव कुशाग्र शीलता भी ज्ञान सक्रिय होने के कारण सच्चा ज्ञान है।

आज जगत में ऐसे सक्रिय ज्ञान की ही आवश्यकता है। कोरा रटन ज्ञान से इष्टसिद्धि नहीं हो सकती। इष्टसिद्धि तो सक्रिय ज्ञान से ही हो सकती है अतएव सक्रिय ज्ञान ही वास्तविक ज्ञान है।

परीक्षक युधिष्ठिर की सहिष्णुता तथा सत्यवादिता से अत्यन्त प्रसन्न होकर कहने लगा—हे युधिष्ठिर! तू क्रोध-विजेता और सत्यवादी है, अतएव संसार को भी जीत सकेगा। युधिष्ठिर इस प्रकार सहनशील तथा सत्यभाषी होने के कारण ही आगे चल कर धर्मराज के रूप में प्रसिद्ध हुए।
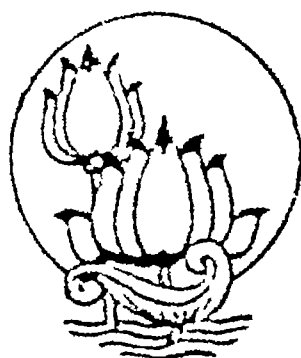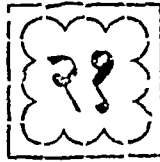
विद्वान् की सेवा
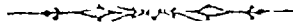
राजशेखर नामक एक पण्डित बहुत सकटमय अवस्था में था। खाने लिए उसे भरपूर अन्न भी नहीं मिलता था। ऐसी दुःखद अवस्था मे भी उसने धीरज नहीं छोड़ा। उसने विचार किया—अगर मैं पुरुषार्थ करूँगा तो मेरी दरिद्रता दूर हो जायगी। इस प्रकार विचार कर वह आजीविका की पूर्ति के लिए धारा नगरी मे (वर्त्तमान धार मे) आया।

एक दिन राजशेखर पण्डित मिट्टी के सिकोरा मे खराब अनाज साफ कर रहा था। राजा भोज ने घूमने जाते समय यह दृश्य देखा। यह देखकर राजा समझ गया कि यह कोई विद्वान् पुरुष जान पड़ता है। उसकी विद्वत्ता की जॉच करने के ए उसे लक्ष्य करके राजा भोज ने संस्कृत मे कहा—जो लोग पना पेट भी नहीं भर सकते, वे इस संसार मे जीवित रहें तो क्या और जीवित न रहे तो क्या ?

विद्वान् की सेवा

राजशेखर नामक एक पण्डित बहुत संकटमय अवस्था मे था। खाने लिए उसे भरपूर अन्न भी नहीं मिलता था। ऐसी दुःखद अवस्था मे भी उसने धीरज नहीं छोड़ा। उसने विचार किया—अगर मै पुरुषार्थ करूँगा तो मेरी दरिद्रता दूर हो जायगी। इस प्रकार विचार कर वह आजीविका की पूर्ति के लिए धारा नगरी मे (वर्त्तमान धार मे) आया।

एक दिन राजशेखर पण्डित मिट्टी के सिकोरा मे खराब अनाज साफ कर रहा था। राजा भोज ने घूमने जाते समय यह दृश्य देखा। यह देखकर राजा समझ गया कि यह कोई विद्वान् पुरुष जान पड़ता है। उसकी विद्वत्ता की जाँच करने के लिए उसे लक्ष्य करके राजा भोज ने संस्कृत मे कहा—जो लोग पेट भी नहीं भर सकते, वे इस संसार मे जीवित रहे तो क्या और जीवित न रहे तो क्या ?

राजा का यह कथन सुनकर राजशेखर के हृदय को बड़ा आघात लगा। उसने संस्कृत भाषा मे ही उत्तर दिया—जो शक्तिशाली होकर भी दूसरो की सहायता नही करते, वे इस संसार मे रहे तो क्या और न रहे तो क्या ?

राजशेखर का करारा उत्तर सुनकर भोज को विश्वास हो गया कि यह कोई विद्वान् पुरुष है मगर इतना विद्वान् होने पर भी यह इतना गरीब क्यो है? यह जानने के लिए भोज ने पूछा—किस कारण तुम्हारी ऐसी दशा हुई है ? राजशेखर ने कहा—तुम सरीखे उदार राजा सब जगह नही है। इसी कारण मेरी यह दशा हुई है। यह रहस्यपूर्ण उत्तर सुनकर राजा ने मन मे विचार किया—अब मुझे इस विद्वान् की पूरी-पूरी सहायता करनी ही चाहिए।

इस प्रकार विचार कर राजा हाथी से उतर पड़ा और हाथी राजशेखर को दे दिया। राजशेखर सोचने लगा—मुझे तो पेटभर खाना नहीं मिलता। अब मैं इस हाथी को अपने घर कैसे बाँधू। इस प्रकार विचार कर राजशेखर ने हाथी के मुख के पास अपने कान लगा दिये और अपना सिर इस तरह हिलाने लगा, मानो हाथी पंडित के कान मे कुछ कह रहा हो। यह विचित्र दृश्य देखकर राजा ने पूछा—'क्या हाथी कुछ कह रहा है ?'

राजशेखर—जी हाँ। हाथी मुझसे कह रहा है कि मुझे लेकर तुम बाँधोगे कहाँ ? अतएव भलाई इसी में है कि तुम राजा को फिर भेट रूप मे मुझे सौप दो। ऐसा करने से मैं भी आन-

विद्वान् की सेवा

राजशेखर नामक एक पण्डित बहुत संकटमय अवस्था मे था। खाने लिए उसे भरपूर अन्न भी नहीं मिलता था। ऐसी दुःखद अवस्था मे भी उसने धीरज नहीं छोड़ा। उसने विचार किया—अगर मै पुरुषार्थ करूँगा तो मेरी दरिद्रता दूर हो जायगी। इस प्रकार विचार कर वह आजीविका की पूर्ति के लिए धारा नगरी मे (वर्त्तमान धार मे) आया।

एक दिन राजशेखर पण्डित मिट्टी के सिकोरा मे खराब अनाज साफ कर रहा था। राजा भोज ने घूमने जाते समय यह दृश्य देखा। यह देखकर राजा समझ गया कि यह कोई विद्वान् पुरुष जान पड़ता है। उसकी विद्वत्ता की जॉच करने के लिए उसे लक्ष्य करके राजा भोज ने संस्कृत मे कहा—जो लोग अपना पेट भी नहीं भर सकते, वे इस संसार मे जीवित रहे तो क्या और जीवित न रहे तो क्या ?

राजा का यह कथन सुनकर राजशेखर के हृदय को बड़ा आघात लगा। उसने संस्कृत भाषा मे ही उत्तर दिया—जो शक्तिशाली होकर भी दूसरो की सहायता नहीं करते, वे इस संसार में रहे तो क्या और न रहे तो क्या ?

राजशेखर का करारा उत्तर सुनकर भोज को विश्वास हो गया कि यह कोई विद्वान् पुरुष है मगर इतना विद्वान् होने पर भी यह इतना गरीब क्यो है ? यह जानने के लिए भोज ने पूछा—किस कारण तुम्हारी ऐसी दशा हुई है ? राजशेखर ने कहा—तुम सरीखे उदार राजा सब जगह नही है। इसी कारण मेरी यह दशा हुई है। यह रहस्यपूर्ण उत्तर सुनकर राजा ने मन मे विचार किया—अब मुझे इस विद्वान् की पूरी-पूरी सहायता करनी ही चाहिए।

इस प्रकार विचार कर राजा हाथी से उतर पड़ा और हाथी राजशेखर को दे दिया। राजशेखर सोचने लगा—मुझे तो पेटभर खाना नहीं मिलता। अब मैं इस हाथी को अपने घर कैसे बाँधू ! इस प्रकार विचार कर राजशेखर ने हाथी के मुख के पास अपने कान लगा दिये और अपना सिर इस तरह हिलाने लगा, मानो हाथी पंडित के कान मे कुछ कह रहा हो ! यह विचित्र दृश्य देखकर राजा ने पूछा—'क्या हाथी कुछ कह रहा है ?'

राजशेखर—जी हाँ। हाथी मुझसे कह रहा है कि मुझे लेकर तुम बाँधोगे कहाँ ? अतएव भलाई इसी में है कि तुम राजा को फिर भेट रूप मे मुझे सौंप दो। ऐसा करने से मैं भी आन-

न्द मे रहूँगा और राजा द्वारा जो धन तुम्हें पुरस्कार मे मिलेगा, उसे पाकर तुम भी आनन्द मे रहोगे।

राजा भोज राजशेखर का आशय समझ गया। उसने राजशेखर को बहुत-सा धन देकर सुखी बना दिया।

अपने पास शक्ति हो तो प्रत्येक समर्थ व्यक्ति को दूसरो के दुःख दूर करने मे उसका व्यय करना चाहिए। दूसरों की सहायता करने वाला ही दूसरो से सहायता लेने का अधिकारी है।
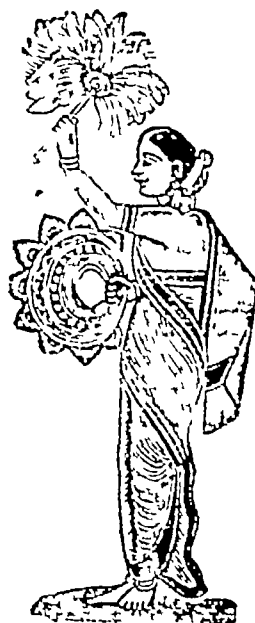
साख

आज मुनाफा न लेने वाली या मर्यादित मुनाफा लेने वाली दुकान कहीं हो तो उससे जनता को बड़ी जबर्दस्त शिक्षा मिल सकती है।

प्रतापगढ़ मे पन्नालालजी मोगरा नामक एक सज्जन थे। वह श्री राजमलजी महाराज के बडे भक्त थे। एक दिन उन्होने मुनिजी से कहा—महाराज, आजकल व्यापार नहीं चलता, इसलिए धर्मकार्य करने में भी मन नहीं लगता। मुनिजी ने उत्तर दिया—तुम श्रावक होकर दुःख मानते हो, यह आश्चर्य की बात है। लोभ मे पड़कर दुगने-डयोढे करना चाहते हो, इसी कारण तुम्हे लगता है कि व्यापार नही चलता। पन्नालालजी के मन मे मुनिजी की बात बैठ गई। उसी समय उन्होंने एक आना प्रति रुपया से अधिक नफा न लेने की मर्यादा कर ली। वह कपड़े की दुकान करते थे। उन्होने सब कपड़ों पर अंक चढ़ा कर कीमत निश्चित कर दी। आरम्भ में तो उन्हे कुछ असुविधाओं का

सामना करना पडा परन्तु कुछ दिनो बाद ऐसा विश्वास जमा कि लोग उन्हीं की दुकान से खरीद करने लगे। भील भी उन्हीं के ग्राहक बन गये। पन्नालालजी की ऐसी प्रतिष्ठा जमी कि लाखों रुपया खर्च करने पर भी वैसी न जमती। इस प्रकार उनका व्यापार भी खूब चमक उठा और प्रतिष्ठा भी चमक उठी। लोगो मे यह बात फैल गई कि पन्नालालजी झूठ नहीं बोलते।

सत्यवादी

सत्य-मार्ग पर चलना, तलवार की धार पर चलने के समान कठिन भी है और फूलो के बिछौने पर चलने के समान सरल भी। इसमे प्रकृति की भिन्नता का अन्तर है। ऐसे मनुष्य भी है, जो अकारण ही असत्य बोलते रहते है और सत्य-व्यवहार को तलवार की धार पर चलने के समान कठिन मानते हैं। उनका विश्वास है कि, सत्य व्यवहार करने वाला मनुष्य, संसार में जीवित ही नही रह सकता। दूसरे ऐसे भी मनुष्य हो चुके हैं और है, जो असत्य व्यवहार करने की अपेक्षा, मृत्यु को श्रेष्ठ मानते हैं। सत्य-व्यवहार, उनके लिए फूलो की सेज है। फिर उस मार्ग मे उन्हें, चाहे कितने ही कष्ट क्यो न हो, किन्तु, वे उसकी परवाह किये विना ही, प्रसन्नता-पूर्वक अपने मार्ग पर चलते रहते हैं।

जो मनुष्य सत्य-मार्ग का पथिक है, उस पर शत्रु भी विश्वास करता है और यह बात ध्रुव सत्य है कि, वह शत्रु से भी विश्वासघात नहीं करता। इसके लिये महाभारत में वर्णित एक कथा का उदाहरण दिया जाता है।

जिस समय महाभारत-युद्ध मे, दुर्योधन की प्राय: सारी सेना और सब भाई निःशेष हो गये; सौ भाइयो मे से एक दुर्योधन ही जीवित बचा उस समय, दुर्योधन ने सोचा—मैं अकेला क्या कर सकता हूँ ? पांडवो के पास, इस समय भी पर्याप्त शक्ति है और मैं अपने भाइयो मे से अकेला हूँ। यह सोचकर, प्राण बचाने के लिये, वह एक तालाब में जा छिपा। कई दिन तक इसी प्रकार छिपे रहने के पश्चात् उसने सोचा—मैं क्षत्रिय हूँ। उद्योग करना मेरा परम कर्त्तव्य है। अत कोई ऐसा उपाय सोचना चाहिए कि जिससे मेरी मृत्यु भी न हो और मै पूरी शक्ति के साथ अकेला ही पांडवो से युद्ध कर सकूं। सोचते-सोचते, उसके विचार मे यह बात आई कि, युधिष्ठिर सरल-हृदय है और सदैव सत्य-भाषण करते है, अत उन्ही से कोई ऐसी युक्ति पूछनी चाहिए, जिससे मैं अजेय हो जाऊँ। यह सोचकर, दुर्योधन जल से बाहर निकला और युधिष्ठिर के पास जाकर पूछने लगा महाराज ! मुझे कोई ऐसी युक्ति बताइये, जिससे मै अजेय हो जाऊँ और भीम या अर्जुन, जिनका मुझे विशेष भय है-मेरा कुछ न बिगाड़ सकें। युधिष्ठिर ने उत्तर दिया राजन् ! यह सिद्धि तो तुम्हारे घर मे ही है, कही बाहर जाने की आवश्यकता नहीं है। माता गांधारी बड़ी सती है। यदि वे, एक-दृष्टि से तुम्हारे खुले-शरीर की ओर देख लें तो, तुम्हारा सारा शरीर वज्र के समान कठोर हो जाय। किन्तु शरीर के जिस भाग पर उनकी दृष्टि न पड़ेगी, वह कच्चा रह जायगा।

युधिष्ठिर की यह बात सुनकर, दुर्योधन अत्यन्त प्रसन्न। सोचने लगा अब क्या है, अभी जाकर माता गान्धारी सामने से नग्न होकर निकल जाऊँगा बस फिर तो अर्जुन और भीम मेरा कुछ भी न बिगाड सकेंगे।

दुर्योधन, यह सोचता हुआ अपने घर की ओर जा रहा था। मार्ग मे उसे श्रीकृष्ण मिले। उन्होंने दुर्योधन के हृदय की बात जानकर कहा दुर्योधन! यह युक्ति तो धर्मराज-युधिष्ठिर ने अच्छी बतलाई है और इससे तुम्हारा सारा शरीर वज्र बन भी जायगा, किन्तु बिलकुल नग्न होकर, तुम्हे अपनी माता के पास जाना उचित नही है। लज्जा की रक्षा के लिए, कम से कम एक कमल-कोपीन तो अवश्य लगा लेना।

पहले तो इसके लिए दुर्योधन कुछ आनाकानी करता रहा, किन्तु श्रीकृष्ण के नीति बतलाने पर उसने यह बात स्वीकार करली। वह अपनी माता के पास गया और उससे सारी कथा कही। गान्धारी यह सुन कर चौंकी। उसे नही मालूम था कि मुझ मे ऐसी शक्ति मौजूद है। किन्तु, युधिष्ठिर सदैव सत्य बोलते हैं, कभी असत्य भाषण नहीं करते अतः अविश्वास करने का कोई कारण भी न था। गान्धारी ने एक दृढ़ दृष्टि से दुर्योधन को देख लेना स्वीकार किया तब दुर्योधन एक कमल-कोपीन लगाकर उसके सामने आ खड़ा हुआ। गान्धारी ने, एक दृढ़-दृष्टि से दुर्योधन के शरीर की ओर देख लिया इससे उसका सारा शरीर तो वज्र के समान कठिन हो गया, किन्तु जो-स्थान ढँका हुआ था, वह कच्चा रह गया। दुर्योधन ने सोचा कि, इस स्थान के कच्चे रह जाने से मेरी क्या क्षति हो सकती है? यह स्थान तो धोती के भीतर रहता है, इस पर कौन चोट करने जाता है। यह विचारकर, वह बाहर निकल आया और पांडवों के पास जाकर, दूसरे दिन भीम से गदा-युद्ध करने की बात तय की।

गान्धारी के नेत्रों में, ऐसी शक्ति होने का कारण, उसका पतिव्रत-धर्म ही था। उसने अपने नेत्रों से, कभी किसी पर

पुरुष को बुरी दृष्टि से नहीं देखा था। पतिव्रता स्त्री के नेत्रो मे यह शक्ति होती है कि यदि वह किसी को पुत्र की तरह प्रेम की दृढ़-दृष्टि से देख ले, तो उसका शरीर वज्र-मय हो जाय और यदि क्रोध की दृष्टि से देख ले तो भस्म हो जाय।

प्रायः पूर्वकाल के लोगो की वाणी मे वह शक्ति होती थी कि वे जिसके लिये जो कुछ कह देते थे, वही हो जाता था। उनका आशीर्वाद या शाप, मिथ्या नही होता था। वे लोग सत्य का पालन करते थे और बात-बात मे न तो किसी को आशीर्वाद ही देते थे, न शाप ही। आज के लोग, दिन-रात दूसरे का बुरा-भला चाहा करते है अर्थात् आशीर्वाद या शाप दिया करते है, परन्तु कुछ नहीं होता। इसका कारण यही है कि सत्य को न पहिचानने से उनकी वाणी निस्तेज हो जाती है। यदि सत्य को पहिचान ले तो, न तो वे इस प्रकार किसी का भला बुरा ही चाहे और न चाहा हुआ भला बुरा निष्फल ही हो।

दूसरे दिन, दुर्योधन और भीम का गदा–युद्ध हुआ। भीम ने अपनी पूरी शक्ति से दुर्योधन के सिर, पीठ छाती, भुजा आदि स्थानो पर गदा-प्रहार किये, किन्तु सब निष्फल। गदा लगती और टकरा कर लौट आती, दुर्योधन का बाल भी बाँका न होता। इसी समय भीम को, अपनी प्रतिज्ञा याद आई कि, मैंने द्रौपदी चीरहरण के समय, दुर्योधन की जङ्घा चूर्ण करने को प्रतिज्ञा की थी। बस, फिर क्या था तत्क्षण उसने अपनी गदा का प्रहार दुर्योधन की जङ्घा पर किया। जङ्घा कच्ची तो रह ही गई थी, गदा लगते ही चूर्ण हो गई और दुर्योधन गिर पडा।

यह कथा बहुत लम्बी है, अत: इसे यहीं छोड़कर यह विचारना है कि, युधिष्ठिर का यह व्यवहार कैसा कहा जा सकता है, जो शत्रु को भी उचित और सत्य सलाह ही देते है।

जो मनुष्य सत्य-व्रत के पालने वाले हैं, वे अपनी शरण मे आये हुए शत्रु के साथ भी, दुष्टता का व्यवहार नहीं करते। शरण मे आया व्यक्ति, जो सलाह पूछता है, उसे बिना किसी प्रकार का भेद-भाव रखे और बिना किसी प्रकार की ईर्ष्या-द्वेष के ठीक-ठीक बतला देते है, यह नहीं देखते, कि शरणागत शत्रु है या मित्र।

युधिष्ठिर यह जानते थे कि, दुर्योधन से मेरा युद्ध चल रहा-है। मेरे भाई भीम और अर्जुन को हराने के लिए ही, यह मुझ से सलाह पूछने आया है। इस समय यदि वे चाहते तो कोई ऐसी राय बतला सकते थे, जिससे स्वय दुर्योधन अपना नाश अपने हाथ से कर लेता। किन्तु युधिष्ठिर ने ऐसा न करके स्वच्छ-हृदय से, सच्ची और लाभदायक सम्मति ही दी। ऐसा करने वाले, सत्यमूर्ति-युधिष्ठिर के सत्य व्रत की, जितनी प्रशंसा की जाय थोड़ी है।

शरणागत-रक्षा

आप उन वीर क्षत्रियो की सन्तान है, जिन्होने दूसरो की रक्षा के लिये अपने शरीर का मांस काट कर दे दिया पर शरणागत का बाल भी बाँका न होने दिया। आप लोग उस वीर का नाम जानते है ? उस वीर का नाम था–राजा मेघरथ।

एक दिन की बात है, राजा मेघरथ अपने धर्मस्थान मे बैठा हुआ था। एक भयभ्रान्त कबूतर उड़ता हुआ उनकी गोद मे आ गिरा। बोला—'राजन्! मै आपकी शरण हूँ, मेरी रक्षा कीजिये।' राजा ने आश्वासन देते हुए कहा—'तुम किसी प्रकार से मत डरो, मैं तुम्हारी हर प्रकार रक्षा करूँगा।'

इतने मे एक शिकारी (पारधी) दौड़ता हुआ आया। वह लंगोट पहिने हुए था। उसका शरीर काला, ओठ मोटे, केश बिखरे हुए और आँखे लाल थीं। वह बोला—'राजा, मेरा शिकार दे।' राजा ने शान्ति से कहा—'भाई, मै इसे नहीं दे सकता। यह मेरी शरण मे आगया है।'

शिकारी—'बस बस, मेरा शिकार फेंक दो! नहीं तो ठीक न होगा।'

आजकल के जैसा कोई राजा होता तो उसे धक्के देकर उसी वक्त निकलवा देता, पर मेघरथ राजा ऐसा न था। वह दुष्टो पर भी दया करने वाला और क्रूरो को भी सुधारने वाला था। राजा ने उससे पूछा—'भाई! इसका क्या करोगे?'

शिकारी—'क्या करूंगा, अपना दुःख मिटाऊँगा, मुझे भूख लग रही है।'

राजा—'भूख लग रही है, तो तुझे खाने को देता हूँ, चाहे सो लेले।'

शिकारी—'क्या तू मुझे धर्म का देना चाहता है? मै धर्म का नहीं लेता, मै अपने उद्योग से अपना पेट भरता हूं।'

राजा—'बहुत अच्छा, सशक्त गृहस्थ को भीख तो लेनी ही नहीं चाहिये, मैं तुझे भीख नही देता, पर चीज लेकर चीज देता हूं। मुझे यह क़बूतर पसन्द आगया, मै इसके बदले में तू माँगे सो देने को तैयार हूं।'

शिकारी—'ऐसा? अच्छा, मै माँगूँगा वह देगा?'

राजा—'बराबर।'

शिकारी—'देखना, अपनी जबान से फिर मत जाना, मै ऐसी-वैसी चीज मांगने वाला नहीं हूं, या मुझे अपना शिकार दे दे।'

राजा—'कबूतर को छोडकर, चाहे सो माँग ले, सब कुछ देने को तैयार हूं।'

शिकारी—'अच्छा तो मुझे इस कबूतर के बराबर अपने शरीर का माँस दे दे।'

मित्रो ! राजा मेघरथ, अपने शरीर को नाशवान् समझकर इस बात को कबूल करता है और अपने शरीर का मांस काटकर दे देता है।

कई जगह इस कथा मे आये हुए पारधी के स्थान पर बाज का भी वर्णन पाया जाता है।

जिनके पूर्वज एक प्राणी की रक्षा के लिये अपने शरीर का माँस काट कर देना कबूल कर लेते है, पर प्राणी की हिंसा नहीं होने देते, अब उन्ही की सन्तान, अपने तुच्छ मौज-शौक के लिये हजारों प्राणियो के नाश को देखकर भी हृदय मे दया न लावे, तो उसे क्या कहना चाहिये ?

आपके पूर्वज, बिना चर्बी का, देश का बना हुआ कपडा पहनते थे, जिसे आज के लोग, 'खादी' के नाम से पुकारते हैं। खादी के उपयोग से न केवल पैसे की ही बचत होती है, पर धर्म भी बचता है। विलायती कपड़ो का जब इस देश मे प्रचार नहीं था, तब लाखों मनुष्य इसी धन्धे के द्वारा अपने पेट भर लेते थे। इतिहास कहता है, कि बाद मे अंग्रेजों ने उन बेचारे गरीबों के अंगूठे कटवा लिये, और अपने देश (विलायत) के वस्त्रो का यहाँ प्रचार बढ़ा दिया। मिल भी यहाँ आगये। इन मिलो से भी देश के मनुष्यो की कम क्षति नहीं हुई। सैकडो मनुष्यो की रोटी पर, कुछ मनुष्य ही हाथ साफ करने लगे और बाकी भूखो मरने लगे। देश का सौभाग्य समझिये, कि देश के कई हितैषियो

और नेताओ ने इस भयङ्कर अत्याचार को पहचाना और चर्खे का पुनर्निर्माण किया। चर्खे के द्वारा, आज फिर से सैकड़ों भाई-बहनो को रोटी हाथ आने लग गई है। जो भाई खादी का उपयोग करता है, वह गुप्त रीति से इन गरीब भाई-बहनों को मदद पहुँचाकर पुण्योपार्जन करता है, ऐसा आज के नेता स्पष्ट समझाते हैं। उनका कथन है, कि खादी सादी और देश की आजादी है।
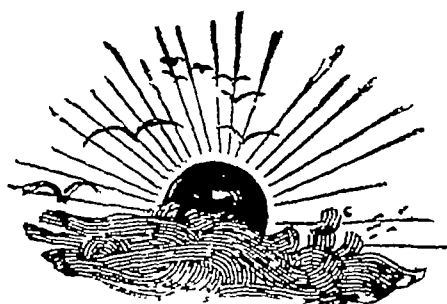
भक्त

बंगाल मे चैतन्य प्रभु नाम के एक भक्त होगये हैं। उन्होने बहुत से ऐसे देवी-भक्तो को, जो पशु-बलिदान के पक्षपाती थे, बहुत प्रभावशाली उपदेश देकर उनसे देवी के नाम पर निरपराध पशुओ का बलिदान करने की खोटी और महाकर्म-बन्धन कराने वाली कुप्रथा छुडाकर, बहुत जीवो के प्राणो की रक्षा की है। साथ ही उन देवी-भक्तो को महापाप से भी बचाया है। उनके उपदेश का असर बंगाल निवासियों पर इतना पड़ा, कि वहाँ के बहुत से मनुष्य उनके मत के अनुयायी बन गये। चैतन्य प्रभु के शिष्यो मे कई करोडपति भी थे। चैतन्य प्रभु, गरीबों और अमीरों में कोई भेद नहीं रखते थे। इनके गरीब शिष्य जिस प्रकार भिक्षा मांगने जाया करते, उसी प्रकार ये धनवान करोड़पति शिष्यों को भी यही काम सौपते थे। इनके शिष्य, केवल यही भिक्षा मांगते थे, 'मित्रो ! परमेश्वर का नाम लो।' जिस समय लोग करोड़पतियो के बच्चो को साधु-वेश मे देखते, तो उनका हृदय प्रेम से उमड़ पड़ता और शक्ति से विशेष वस्तु द्वारा भी इनका आदर-सत्कार करने मे अपना

अहोभाग्य मानते थे। किन्तु जब इनको कोई स्त्री या पुरुष आहारादि की भिक्षा देने को तैयार होता, तब ये कहते, कि हमे इस भिक्षा की जरूरत नहीं है, अन्तरात्मा जिससे तृप्त हो, ऐसी ईश्वर के स्मरण रूपी भिक्षा दीजिये।

चैतन्य प्रभु एक बार दक्षिण में गये। एक दिन उन्होंने गीता पाठ करने वाले एक पण्डित के पास बैठे हुए एक श्रोता को आँखों से अविरल अश्रुधारा बहाते देखा। वह था किसान। चैतन्य प्रभु ने उससे पूछा:—भक्त! तू क्या समझा? किसान ने कहा—महाराज, भगवान् कृष्ण ने अर्जुन को जो वाणी सुनाई, मेरे ऐसे भाग्य कहाँ कि मैं उसे सुनता? आज मैं उस वाणी को सुनकर धन्य-धन्य हुआ हूँ। इसी आनन्द से मेरा हृदय उछल रहा है, बाकी मै कुछ नहीं समझता। उस कृषक के हृदय में जैसा आन्तरिक प्रेम था गीतापाठी पण्डित के हृदय में भी वैसा प्रेम न था।

सत्संकल्प की विजय

शिवाजी मे हिन्दूधर्म की रक्षा करने और भारत को मुसलमानों से बचाने की तीव्र भावना थी। इस भावना से प्रेरित होकर शिवाजी ने कैसे-कैसे प्रयत्न किये और कितने संकट झेले, यह एक लम्बी कथा है। यहाँ सिर्फ यही बतलाया है कि भावना यदि तीव्र हो, संकल्प अगर अटल हो तो विघ्न भी किस प्रकार सहायक बन जाते है।

एक बार शिवाजी ने किसी किले पर हमला किया। उस किले की रक्षा के लिए बादशाह की ओर से देशपाण्डे नामक सरदार नियुक्त किया गया था। शिवाजी ने बहुत जोर मारा, अपनी सब शक्ति लगा दी फिर भी वे किले को न जीत सके। देशपाण्डे वीर भी था और चतुर भी था, इस कारण शिवाजी सफल न हो सके। निराश होकर वह सोचने लगे—अब क्या करना चाहिए? आखिर विजय का कोई उपाय न देखकर उन्होने अपने विरोधी वीर देशपाण्डे के हाथो मर जाना ही ठीक समझा।

यह निश्चय करके शिवाजी रात्रि के समय अकेले किले मे घुस गये। देशपाण्डे को पता चला कि शिवाजी किले में आये हैं। वह हाथ मे तलवार लेकर शिवाजी के पास आया और कहने लगा—आप मुझे धोखा देने आये हैं, मगर याद रखिए, मैं धोखा खाने वाला नहीं हूँ। आप वापिस लौट जाइए। कल संग्राम क्षेत्र मे मिलिएगा।

शिवाजी ने देशपाण्डे से कहा—मै आपको ठगने नहीं आया। मै चाहता हूँ कि आप अपने हाथो मेरा सिर काट लें।

देशपाण्डे शिवाजी का उत्तर सुनकर चकित रह गया। वह स्वप्न मे भी ऐसे उत्तर की सम्भावना नहीं कर सकता था। उसने पूछा—आखिर आप ऐसा क्यो कह रहे है?

शिवाजी-मै जो कुछ भी कर रहा हूँ, अपने स्वार्थ के लिए नही। हिन्दूधर्म और हिन्दू जति की रक्षा के लिए ही मैं यह सब प्रयत्न कर रहा हूँ। पर तुम्हारे कारण मेरे इस कार्य मे रुकावट पड़ गई है। ऐसी दशा में मैं जीवित रह कर भी क्या करूँगा? आप जैसे वीर के हाथ से मेरी मृत्यु हो जाय तो मैं अपने जीवन को निरर्थक नहीं समझूँगा।

देशपाण्डे क्षत्रिय नही ब्राह्मण था; फिर भी वीर था वीर पुरुष पर किसी भी बात का असर जल्दी होता है। शिवाजी की बात सुनकर देशपाण्डे का दिल पिघल गया। उसे अपने पर लज्जा आई। उसने कहा—मैं अपने स्वार्थ के लिए ही आपके काम मे बाधक हो रहा था। आपने अपने धर्म और देश के लिए घोर सकट सहे है और सह रहे है। मैं देश और धर्म के लिए कुछ

भी नहीं कर रहा हूँ, बल्कि जो कर रहा है उसके कार्य मे बाधक बन रहा हूँ। वास्तव मे आप गो-ब्राह्मण के प्रतिपालक है। आपने मेरे नेत्र खोल दिये। अब मै बाधक नहीं बनूंगा। आज से मेरा भी वही मार्ग होगा जो आपका होगा।

जिसका संकल्प सत् है, अटल है और जो अपनी सम्पूर्ण शक्तियाँ अपने संकल्प के लिए समर्पित कर देता है, उसे सफलता मिलती ही है।

गुप्त दान

लखनऊ के नवाब आसफुद्दौला के विषय मे सुना है कि वह बडा दानी था और गुप्त रूप से दान दिया करता था। जब कोई मनुष्य उसके महल के पास से थाली में कुछ लेकर निकलता तो वह किसी युक्ति से थाली मे सोने की मुहर डाल दिया करता था। थाली ले जाने वाले को पता तक नहीं चलता था।

जब वह मनुष्य घर पहुँच कर थाली मे मुहर पडी देखता होगा तो उसे कितनी खुशी होती होगी ?

नवाब की ऐसी दानशीलता देखकर किसी ने उससे कहा 'आप मर्यादा से ज्यादा उदारता दिखलाते हैं। तब नवाब ने कहा—मुझे लोग उदार या दानी न कहे, इसी लिए मै गुप्त रूप से दिया करता हूँ। इस सम्बन्ध मे एक कहावत प्रसिद्ध है :—

कैसे सीखे शेखनी, ऐसी देना देन ?
ज्यो–ज्यों कर नीचा करो, राखे नीचे नैन।
देने वाला और है, भेजत है दिन रैन।
लोग नाम हमरो कहे, ताते नीचे नैन।

किसी ने नवाब से कहा—आप इस तरह दान कहाँ से सीखे है ? जब कोई तुम्हारे सामने हाथ लम्बा करता है तो आप नीची आँखें क्यों कर लेते है ?

नवाब ने उत्तर दिया—दान देते वक्त कोई दूसरा ही है। वही लोगों के लिए दान भेजता है। उसी का पुण्य मेरे द्वारा दान दिलाता है मैं तो निमित्त मात्र हूँ। फिर भी लोग समझते है कि मै ही दान देता हूँ।। इसी कारण मेरी आँखे नीची हो जाती हैं।

× × × ×

सुनते हैं, एक बार राणा भीमसिंह संकट मे पड़ गये। तब किसी ने कहा—आप अपनी दानशीलता कुछ कम कर दीजिए।

राणा ने उत्तर दिया—मै भोजन कम कर सकता हूँ पर दान देना कम नहीं कर सकता।'

इन्हे कहते है दानवीर।

प्राणदान

जापान की एक वृद्धा माता की कहानी बड़ी ही स्फूर्ति देने वाली है। उसका एक ही पुत्र था। और कोई सन्तान नहीं थी। एक बार जापान के ऊपर जब किसी दूसरे देश ने आक्रमण किया तो सेना की भर्ती शुरु हुई। वृद्धा के पुत्र ने भी भर्ती होने के लिए अपना नाम लिखवाया।

जापान में उस समय ऐसा नियम था कि किसी भी व्यक्ति को सेना में भर्ती करने से पहले दो बातों की जाँच पड़ताल करली जाती थी, भर्ती होने वाले के घर में कितने आदमी हैं और उसकी घरू व्यवस्था कैसी है ?

वृद्ध के लड़के के संबंध में जब यह जाँच की गई तो पता चला कि लडके की माता है, मगर वह बूढी है और उसकी सेवा करने वाला उसके घर मे दूसरा कोई नहीं है। इस आधार पर लडके को सेना में भर्ती नहीं किया गया। लडके ने सैनिक अधि-

कारी से अपने प्रार्थनापत्र को अस्वीकृत करने का कारण पूछा तो उसे यही कारण बतला दिया गया। अधिकारी ने कहा-तुम अपनी बूढ़ी माता के एकलौते बेटे हो। अपनी माता की सेवा करो। तुम युद्ध मे चले जाओगे तो तुम्हारी माता की सेवा कौन करेगा ?

लड़का निराश होकर घर लौट आया। उसने उदास चित्त से अपनी माता से कहा-माँ, अब मेरे लिए तो सब तुम्हारी ही सेवा का काम रहा ?

माँ—क्यो तू तो देश की सेवा के लिए युद्ध में जाने को कहता था न ?

लड़का—मुझे सेना मे भर्ती नहीं किया।

माँ—क्यों ?

लड़का—तुम्हारे कारण। मेरे सिवाय तुम्हारी सेवा और कौन करेगा ?

वृद्धा बहुत विचारशीला थी। उसे अपने पुत्र की बात सुन कर बहुत दु:ख हुआ। वह सोचने लगी-इस पुत्र द्वारा होने वाली देशसेवा मे मैं बाधक हो रही हूँ। क्यों न इस बाधा को दूर कर दूँ ? इस प्रकार विचार करके उसने, जब पुत्र बाहर गया था, आत्महत्या कर ली। मरने से पहले उसने सैनिक अधिकारी के नाम एक पत्र लिखा। उसमे यह स्पष्ट कर दिया कि मैं देश के हित मे बाधक हो रही हूँ और देशहित में बाधक हो कर जीवित रहना मुझे पसंद नहीं है। अतएव मैं मृत्यु का आलिंगन करके देशसेवा की बाधा को दूर करती हूँ। मेरे पुत्र को देशसेवा के लिए सेना मे अवश्य भर्ती कर लिया जाय, यही मेरी एक मात्र अंतिम कामना है।

धन्य है वह देश जिसमे ऐसी त्यागशीला माताएँ मौजूद हों ! भला ऐसा देश क्यों नहीं उन्नति के शिखर पर पहुँचेगा ?

सचमुच व्यक्ति के लाभ-हानि से देश की लाभ-हानि बड़ी चीज है। प्रत्येक मनुष्य का कर्त्तव्य है कि वह पहले समूह की भलाई को देखे और फिर अपनी भलाई को। स्मरण रखना चाहिए कि समूह के कल्याण मे ही व्यक्ति के कल्याण का बीज है।
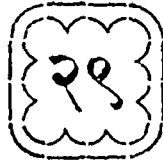
हाय गहने !

(१)

मै जब गृहस्थ—अवस्था मे था, तब की बात है। मेरे गाँव मे एक बूढ़े ने विवाह करना चाहा। एक विधवा बाई की एक लड़की थी। बूढ़े ने वृद्धा के सामने विवाह का प्रस्ताव उपस्थित किया मगर उसने और उसकी लडकी दोनो ने उसे अस्वीकार कर दिया। कुछ दिनो बाद उस बूढ़े की रिश्तेदार कोई स्त्री उस बाई के पास आई और उसे बहुत-सा जेवर दिखलाते हुए कहा—तुम्हारी लड़की का विवाह उनके साथ हो जायगा तो इतना जेवर पहनने को मिलेगा। लालच मे आकर विधवा ने अपनी लडकी का विवाह उस बूढ़े के साथ कर दिया।

(२)

मेवाड की भी एक ऐसी ही घटना है। एक धनी वृद्ध के साथ एक कन्या का विवाह होना निश्चित हुआ। समाज-

सुधारकों ने लड़की की माता को ऐसा न करने के लिए समझाया। लडकी की माता ने कहा पति मर जायगा तो क्या हुआ, मेरी लड़की गहने तो खूब पहनेगी।

मित्रो! आप ही बतलाइए, उक्त दोनों विवाह किसके साथ हुए?

'धन के साथ!'

'पति के साथ तो नहीं?'

'नहीं'

धन ही इन कन्याओं का पति बना!

करुणा

काशीनरेश की रानी का नाम करुणा था। एक दिन उसे वरुणा नदी मे स्नान करने की इच्छा हुई। उसने महाराज से स्नान के लिए जाने की आज्ञा माँगी। महाराज स्त्रियों को कोठरी मे बन्द रखने के पक्ष में नहीं थे। वे चाहते थे कि स्त्रियाँ भी सुखपूर्वक प्राकृतिक छटा अवलोकन करे और प्रकृति की पाठशाला से कुछ सीखें। अतएव उन्होने विना किसी आना-कानी के महारानी को आज्ञा दे दी।

महारानी अपनी सौ दासियो के साथ, रथ पर सवार होकर नदी पर पहुँची। वरुणा के तट पर गरीबो की झोपड़ियाँ बनी हुई थी। उनमे कुछ मस्त फकीर भी रहते थे। रानी ने तट-निवासियो को कहला भेजा—महारानी स्नान करना चाहती है, इसलिए थोड़ी देर के लिए सब लोग अपनी-अपनी झोंपड़ी छोड़-कर बाहर चले जाएँ। सब लोगो ने ऐसा ही किया। महारानी अपनी सखियो के साथ वरुणा मे किलोल करने लगी। उसने यथेष्ट जलक्रीड़ा की। महारानी जब स्नान करके बाहर निकली

तो उसे ठण्ड लगने लगी। उसने चम्पकवती नामक दासी से कहा—जाओ, सामने पेड़ो पर से सूखी लकड़ियाँ ले आओ। उन्हें जलाओ। मैं तापूँगी।

चम्पकवती लकड़ियाँ लेने गई किन्तु कोमलता के कारण लकडियाँ न तोड़ सकी। वह वापस लौट आई और अपनी कमजोरी प्रकट करके क्षमायाचना करने लगी। महारानी बोली—खैर, जाने दो, मगर तापना जरूरी है। सामने बहुत-सी झोंपड़ियाँ खड़ी हैं। इन मे से किसी एक को आग लगा दो। अपना मतलब हल हो जायगा।

चम्पकवती समझदार दासी थी। उसने कहा—महारानीजी, आपकी आज्ञा सिर माथे, परन्तु आप इस विचार को त्याग दीजिए। यह अच्छी बात नही है। गरीबो का सत्यानाश हो जायगा। वे गर्मी-सर्दी के मारे मर जाएँगे। उनकी रक्षा करने वाली यह झोंपडियाँ ही हैं।

महारानी की त्यौरियाँ चढ़ गईं। बोली—बड़ी दयावती आई है कहीं की? अगर इतनी दया थी तो लकडियाँ क्यो न ले आई? अच्छा मदना, तू जा और किसी भी एक झोपड़ी मे आग लगा दे।

मदना दासी गई और उसने महारानी की आज्ञा का पालन किया। झोपडी धाँय-धाँय धधकने लगी। महारानी कुछ दूरी पर बैठकर तापने लगी। उसकी ठण्ड दूर हुई। शरीर मे गर्मी आई। चित्त मे शान्ति हुई। फिर महारानी रथ मे बैठ कर राजमहल के लिए रवाना हो गई।

महारानी ने एक झौंपड़ी जलाने की आज्ञा दी थी। मगर पास-पास होने के कारण, हवा के प्रताप से एक की आग दूसरी तक पहुँची और इस प्रकार तमाम झौंपड़ियाँ जल कर राख का ढेर बन गई। लोग अपनी झौंपड़ियों के पास आये तब उन्होंने वहाँ जो दृश्य देखा तो सन्न रह गये। झौंपड़ियों के स्थान पर राख का ढेर देख कर उनके शोक का पार न रहा। रोने और चिल्लाने लगे। किसी ने कहा—हाय! हमारा सर्वस्व भस्म हो गया। दूसरे ने कहा—हाय! अब हम कहाँ आश्रय लेंगे, गर्मी-सर्दी, पानी से बचने का एक वही ठिकाना था सो छिन गया! अब हमारी क्या गत होगी!

पहले ही कहा जा चुका है कि वहाँ कुछ मस्त फक्कड़ भी रहते थे। उन्होंने रोने-चिल्लाने वालों को ढाढस बँधाया और समझाया—मूर्खो! रोने से झौंपड़ी खड़ी नहीं हो जायगी। हमारे साथ चलो और राजा से फरियाद करो।

लोग राजा से फरियाद करने चले। आगे-आगे बाबाजी और पीछे-पीछे गरीबों की फौज। लोगों ने उन्हें जाते देख पूछा भाई, आज किधर चढ़ाई करने जाते हो? जब उन्हें कारण बतलाया गया तो उन्होंने बिना माँगी सलाह देते हुए कहा—बावले हो गये हो क्या! महारानी ने झौंपड़ियाँ जला दीं तो कौन-सी सोने की लंका जल गई! घास-फूस की कमी तो है नहीं, फिर खड़ी कर लेना। छोटी-सी बात के लिए महाराज के पास पहुँचना क्या भली बात है?

गरीब बेचारे अपढ़। वे लोगों की इन बातों का कुछ भी उत्तर न दे सके। फकीरों ने कहा—जरा सोच-समझ कर बात

कहीं होती तो ठीक था। आज इन गरीबों की झौंपड़ियाँ जलाई गई है। कल महारानी तरंग में आकर तुम्हारे महलों में आग लगवा देगी। क्या यह अत्याचार नहीं है? जो आज छोटा अत्याचार कर सकता है, उसे कल बड़ा अत्याचार करते क्या देर लगेगी? इसके अतिरिक्त इन गरीबों के लिए अपनी झोंपड़ियाँ उतनी ही मूल्यवान् हैं, जितने मूल्यवान् आपके लिए अपने महल हैं। इसलिए यह कोई साधारण घटना नहीं है। हम तो कहते हैं कि तुम भी हमारे साथ चलो और जोरदार शब्दों में राजा से इस अत्याचार के विरुद्ध प्रार्थना करो।

बात लोगों की समझ में आ गई। कल हमारे महल ही जलाये जाने लगेंगे! तो हम लोगों को भी इनका साथ देना चाहिए और इस अत्याचार को अन्तिम बना देना चाहिए।

इस प्रकार लोगों का एक बडा भारी झुण्ड राजमहल के चौक मे आ खडा हुआ। महाराज ने जनता का कोलाहल सुनकर महल के झरोखे में से बाहर की ओर झाँका तो बड़ी-सी भीड़ दिखाई दी। उन्होंने पूछा-तुम लोग क्यों इकट्ठे होकर आये हो?

प्रजा—महाराज, गरीबों का सत्यानाश हो गया। अब यह बेचारे किस प्रकार अपने गर्मी-सर्दी के दिन बिताएँगे।

राजा—क्यों? क्या हुआ?

प्रजा—अन्नदाता, महारानीजी स्नान करने गई थीं। उन्हें ठण्ड लगी। तापने के लिए उन्होंने एक झौंपड़ी मे आग लगवाई और हवा के वेग से तमाम झोंपड़ियाँ जल कर भस्म हो गई है। यह बेचारे गृह-हीन होगये!

राजा—ऐसा अत्याचार हुआ ! अच्छा ठहरो।

काशी-नरेश ने चम्पकवती दासी को महारानी को बुला लाने का आदेश दिया।

चम्पकवती महारानी के पास गई। उसने हाथ जोड़ कर कहा—महारानीजी, अन्नदाता आपको याद कर रहे है।

महारानी—आज इस वक्त क्यो ?

चम्पकवती—मैंने जो कहा था, आखिर वही हुआ।

महारानी—तूने क्या कहा था और क्या हुआ ?

चम्पकवती—मैंने नदी तट की झोंपडियाँ न जलाने के लिए प्रार्थना की थी। आपने न मानी। तमाम झोंपडियाँ भस्म हो गईं। अब लोगो ने अन्नदाता के सामने फरियाद की है।

महारानी—तो क्या मुझे बुलाया है ?

चम्पकवती—जी हाँ।

महारानी— प्रजा के सामने, मुझे !

चम्पकवती—जी हाँ।

महारानी—महाराज नशे में तो नहीं हैं ! प्रजा के सामने मेरा फैसला होगा ?

चम्पकवती—मैं तो अन्नदाता की आज्ञा पालने आई हूँ।

आखिर महारानी महाराज के सामने उपस्थित हुई। महाराज ने पूछा—रानीजी, यह लोग जो फरियाद कर रहे हैं सो क्या सच है ?

महारानी—महाराज, बात तो सच है।

महाराज—तो इसका दण्ड ?

महारानी—मैं महारानी हूँ। मुझे दण्ड ?

महाराज—न्याय किसी का व्यक्तित्व नहीं देखता महारानी! वह राजा और प्रजा के लिए समान है। न्याय अगर लिहाज करेगा तो ब्रह्माण्ड उलट जायगा।

महारानी—अगर ऐसा है तो अपने खर्च से इनकी झोपडियाँ बनवा दी जाएँ।

महाराज—मगर प्रश्न तो धन का है। झोंपड़ियाँ खडी करने के लिए धन कहाँ से आएगा ?

महारानी चकित थी। उसने कहा—महाराज, रुपयो की क्या कमी है ?

महाराज—रुपये क्या मेरे खून से या तुम्हारे खून से पैदा हुए हैं ? खजाने का रुपया भी तो इन्हीं का है। इनके खून की कमाई से ही वह भरा गया है। जुल्म करें हम लोग और दण्ड भरा जाय इनके पैसों से ? यह तो दूसरा जुल्म हो जायगा।

महारानी समझ गई। बोली—अन्नदाता, अब मेरी समझ में आगया। आप चाहें वही दण्ड दीजिए। मैं सब तरह तैयार हूँ।

राजा ने गम्भीर होकर कहा—अच्छा, अपने हाथों से मजदूरी करो। उसीसे अपना पेट पालो। जो कुछ बचत कर

सको उससे झौंपड़ियाँ बनवा दो। जब झौंपड़ियाँ तैयार हो जाए तब महल में पाँव धरना।

महाराज का न्याय सुन कर प्रजा सन्न रह गई। उसने इस फैसले की कल्पना भी नहीं की थी। लोगों ने चिल्ला कर कहा—अन्नदाता, हमारा न्याय हो चुका। अब हमारा कोई दावा नहीं है। कृपा कर महारानीजी को इतना कड़ा दण्ड न दीजिए।

महारानी बोली—महाराज, आप लोगो की बातो मे न आइए। आपका न्याय अमर हो। आपका न्याय उचित है। अब इसे न लौटाइए। मै प्रसन्न हूँ।

प्रजा—नहीं महाराज, हम अपनी महारानीजी को ऐसा दंड नहीं दिलवाना चाहते? अब हम कुछ भी नहीं चाहते। हमारी फरियाद वापस लौटा दीजिए।

महाराज—प्रजाजनो! तुम्हारी भक्ति की मै कद्र करता हूँ, पर न्याय के समक्ष मैं विवश हूँ। महारानी भी यही चाहती है।

महारानी—अन्नदाता, आज का दिन बड़े सौभाग्य का दिन है। आज मै अपने पति पर गर्व कर सकती हूँ। आपने न्याय की रक्षा की है। अब मुझे आज्ञा दीजिए। मै जाती हूँ।

महारानी ने अपने बहुमूल्य आभूषण और वस्त्र उतार दिये। साधारण पोशाक पहन कर वह महल से विदा होने लगी।

राजघराने की स्त्रियाँ और प्रजा की स्त्रियाँ उन्हें रोकने लगीं। रानी ने किसी की न सुनी। रानी ने कहा—बहिनों, मुझे

रोको मत। अगर तुम्हारी मेरे साथ सहानुभूति है तो तुम भी मजदूरी करो। मेरी सहायता करो। मैंने भीषण अत्याचार किया है। उसके फल से मुँह मोड़ना अच्छा नहीं है। यह अक्षम्य अपराध है।

स्त्रियों ने कहा—मगर आपका कष्ट हमसे नही देखा जाता।

महारानी—कष्ट ? कष्ट कैसा ! क्या सीता और द्रौपदी ने कष्ट नहीं झेले ? आज उनका नाम-स्मरण आते ही श्रद्धा-भक्ति से मस्तक क्यों झुक जाता है ? अगर धर्म और न्याय के लिए उन्होंने कष्ट न उठाये होते और राजमहल मे रह कर भोग-विलास का जीवन विताया होता तो कौन उन्हे याद करता ? मैं चक्की चलाऊँगी, चर्खा कातूँगी और अपने अपराध का प्रायश्चित्त करूँगी।

भाइयो और बहनो ! आपने महारानी करुणा की बात सुनी। उसके जरा मे विलास की बदौलत लोगों को कितना कष्ट हुआ ?

आप कलकत्ता जाते है और सोना खरीद लाते है। बहनें उनकी बँगडियाँ बना कर पहनती और अभिमान करती है। पर कभी उन्होने यह भी सोचा है कि यह बँगडियाँ कितने गरीबो के सत्यानाश मे बन कर तैयार हुई है ? हाय ! हाय ! और तो क्या कहूँ, आपने जो कपडे पहने हैं इन्हे देखो। उन में चर्बी लगी है। न जाने कितने पशुओ को पील कर, उनका क्रूरता-पूर्वक कत्ल करके वह चर्बी निकाली गई होगी। क्या आपका हृदय इतना कठोर है कि गरीबो और मूक पशुओं की इस दुर्दशा को देखकर भी नहीं पिघलता ?

खादी
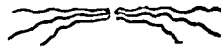
खादी शुद्ध वस्त्र है। इसमे चर्बी का उपयोग नहीं होता। इसीसे काम चलाना बुरा नहीं है, यही गरीबो की रक्षक है।

हेमचन्द्राचार्य जब सांभर गये तब उन्हे धन्ना नामक सेठ की स्त्री ने हाथ की कती और हाथ की बुनी खादी भेट की। वह बहुत प्रसन्न हुए और उसे पहना। जब राजा कुमारपाल, जो आचार्य हेमचन्द्र का शिष्य था दर्शन करने आया तब उसने आचार्य को खादी पहने देखकर कहा—महाराज, आप हमारे गुरु हैं। आपको यह मोटी और खुरदरी खादी पहने देखकर मुझे लज्जा आती है। हेमचन्द्राचार्य बोले—'भाई' तुम्हे खादी पहने देखकर लज्जा नहीं आनी चाहिए। लज्जा तो भूख के मारे मरने वाले गरीब भाइयो को देख कर आनी चाहिए।

हेमचन्द्राचार्य के इन शब्दो ने राजा कुमारपाल पर अद्भुत प्रभाव डाला। वह स्वयं खादी—भक्त बन गया। उसने

चौदह वर्ष तक प्रति वर्ष एक करोड रुपया गरीबो की स्थिति सुधारने में व्यय किया।

मित्रो! सोचिये, खादी ने क्या कर दिखाया! कितने गरीबो की रक्षा की? आप खादी से क्यो डरते है? क्या राज की तरफ मे आप को रोक-टोक है? दीवान साहब! क्या खादी पहनना आपके राज्य मे निषिद्ध है?
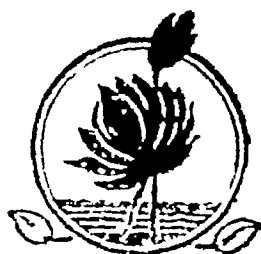
शिवाजी की सच्चरित्रता

एक बार शिवाजी किसी जंगल की गुफा मे बैठे थे। उनका एक सिपाही किसी सुन्दरी स्त्री को जबर्दस्ती उठा लाया। उसने सोचा था—इसे महाराज शिवाजी की भेंट करूँगा तो महाराज मुझ पर प्रसन्न होगे। लेकिन जब उस रोती कलपती हुई रमणी की आवाज शिवाजी के कानो मे पडी तो वह उसी समय गुफा से बाहर निकल आये। उन्होने देखते ही सिपाही से कहा-'अरे कायर! इस बहिन को यहाँ किस लिए लाया है?'

शिवाजी के मुँह से बहिन शब्द सुनते ही सिपाही चौंक उठा। वह सोचने लगा—'गजब हो गया जान पडता है। मै इसे लाया किस लिए था और होना क्या चाहता है! चौबेजी छब्बे बनने चले तो दुबे ही रह गये।' सिपाही कुछ नही बोला। वह नीची गर्दन किये लज्जित भाव से मौन रहा। शिवाजी ने कड़क कर कहा—जाओ, इस बहिन को पालकी मे बिठला कर आदर के साथ इसके घर पहुँचा आओ।'

मित्रो ! एक सच्चे वीर्यशाली और चरित्रवान् व्यक्ति के सत्कार्य को देखो। अबलाओं पर दूसरों द्वारा किये जाने वाले अत्याचारों का निवारण करना वीर पुरुष का कर्त्तव्य है, न कि उन पर स्वयं अत्याचार करना। इस कथा से तुम बहुत कुछ सीख सकते हो।
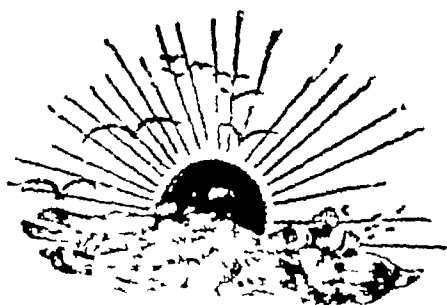
वीरवर दुर्गादास

शिवाजी का पुत्र शम्भाजी था। वह शिवाजी से ज्यादा वीर, धीर और गम्भीर था परन्तु वह सुरा और सुन्दरी के फेर मे पड गया था। सुरा अर्थात् मदिरा और सुन्दरी अर्थात् वेश्याओं से उसे बहुत प्रेम हो गया था।

उन दिनो भारत का सम्राट् औरङ्गजेब था। राठौर दुर्गादास एक बार शम्भाजी के पास दक्षिण मे आया। शम्भाजी शराब के शौकीन थे ही। उन्होंने एक प्याला भर कर दुर्गादास के सामने किया। दुर्गादास ने कहा—क्षमा कीजिये, मुझे तो इसकी आवश्यकता नहीं है। मैने इसे माता को समर्पण कर दिया है और यह अर्ज की है कि माता! तू ही इसे ग्रहण कर सकती है। मुझ मे इसे ग्रहण करने की शक्ति कहाँ!

दुर्गादास ने जो कुछ कहा उससे शम्भाजी रूठ गया। दुर्गादास वहाँ से रवाना होकर शहर के बाहर किसी बगीचे में ठहर गया।

मध्य रात्रि का समय था। चारों ओर वातावरण में निस्तब्धता छाई हुई थी। लोग निद्रा की गोद में बेसुध हो विश्राम कर रहे थे। ऐसे समय में दुर्गादास को नींद नहीं आ रही थी। वह इधर से उधर करवट बदल रहा था। इसी समय उसके कानों में एक आर्त्तनाद सुनाई पड़ा। 'हाय! कोई बचाने वाला नहीं है? बचाओ! दौड़ो! रक्षा करो! रक्षा करो! हाय रे!

दुर्गादास तत्काल उठ कर खड़ा हो गया। उसके कानों में फिर वही करुण-क्रन्दन सुनाई दिया। दुर्गादास ने सोचा—'किसी अबला की आवाज जान पड़ती है। चलकर देखना चाहिए, बात क्या है?' इस प्रकार सोच कर वह बाहर निकले। इसी समय एक अबला दौड़ी आई और चिल्लाने लगी—'रक्षा करो! बचाओ!'

वीर दुर्गादास (सान्त्वना देते हुए)—बहिन, इधर आ जाओ।

स्त्री को ढाँढस बन्धा। वह अन्दर आकर बैठ गई।

कुछ ही समय बीता था कि हाथ में तलवार लिये शंभाजी दौड़ते हुए वहाँ आये। वह बोले—इस मकान में हमारा एक आदमी आया है।

दुर्गादास—शंभाजी, जरा सोच-विचार कर बात करो।

शंभाजी—(पहिचान कर) ओह दुर्गादास! भाई, तुम्हारे इधर हमारा एक आदमी आया है। उसे हमें लौटा दो।

दुर्गादास—यहाँ कोई आदमी तो आया नहीं है, एक औरत आई है।

शंभाजी—जी हाँ, उसी को तो खोज रहा हूँ।

दुर्गादास—मैं उसे हर्गिज नहीं दे सकता। वह मेरी शरण मे है।

शंभाजी—तुम्हे उससे क्या प्रयोजन है ?

दुर्गादास—प्रयोजन क्या है ? कुछ भी नहीं। मगर कह रहा हूँ, वह मेरी शरण मे आई है। मैं क्षत्रिय हूँ। शरणागत की रक्षा करना मेरा परम धर्म है। तुम क्षत्रिय होकर भी क्या यह नहीं जानते ?

शंभाजी—मै सब कुछ जानता हूँ। सब कुछ समझता हूँ। परन्तु मेरी चीज मुझे लौटा दो वर्ना ठीक न होगा।

दुर्गादास—मै अपने धर्म से कैसे च्युत होऊँ ?

शंभाजी—तुम्हारे हाथ मे तलवार नहीं है। तलवार होती तो दो हाथ अभी दिखाता।

दुर्गादास व्यंग की हँसी हँस कर बोले—उस अबला के हाथ मे तलवार है, इसलिए तुम उस पर वार करना चाहते हो !

शंभाजी—इतनी धृष्टता ! अच्छा, अपनी तलवार हाथ में लेकर जरा अपना कौशल तो दिखलाओ। आज तुम्हे अपनी शूरवीरता का पता चल जायगा।

दुर्गादास ने अपनी तलवार सँभाली। दोनो की मुठभेड हुई। मौका पाकर दुर्गादास ने शंभाजी के हाथ से तलवार छीन ली। उन्होंने कहा—कहो शंभाजी, अब क्या करोगे ?

शंभाजी चुप हो गया। इतने मे उसके सिपाही आ पहुँचे। दुर्गादास ने उनके साथ युद्ध करना व्यर्थ समझा। सिपाहियो ने उन्हें बन्दी बना लिया।

शंभाजी का एक यवन मित्र था—कवालीखाँ। वह बादशाह औरंगजेब का भेजा हुआ गुप्तचर था। शंभाजी को पथ-भ्रष्ट कर देना उसका काम था। वह दुश्चरित्रा स्त्रियों को—वेश्याओं को—शम्भाजी के पास लाता था। शंभाजी ऐसे बेभान हो गये थे कि उसे अपना मित्र मानते थे और अपने सच्चे हितैषी दुर्गादास को दुश्मन समझते थे।

औरंगजेब का ढिंढोरा पिटा हुआ था कि दुर्गादास को कैद कर लाने वाले को इनाम दिया जायगा। कवालीखाँ को यह अच्छा अवसर मिला। उसने शंभाजी से कहा—'महाराज इस बन्दी को मुझे सौंप दीजिए। मैं इसे बादशाह के पास ले जाऊँगा और अच्छा इनाम पाऊँगा।'

शंभाजी ने उसे सौंप दिया। उसने बादशाह को ले जाकर सौंप दिया। बादशाह ने कवालीखाँ को अच्छा इनाम दिया।

बादशाह की बेगम गुलेनार वीर दुर्गादास पर मोहित हो चुकी थी। पर उसे दुर्गादास से मिलने का अभी तक अवसर नहीं मिला था। दुर्गादास को कैद हुआ देख उसे बड़ी खुशी हुई। वह बादशाह से बोली—दुर्गादास मेरा पक्का दुश्मन है। उसे मेरे सिपुर्द कर दीजिये। मैं उसे सीधा करूँगी।

बादशाह गुलेनार की उंगली के इशारे पर नाचता था। उसने दुर्गादास को बेगम के सिपुर्द कर दिया।

बेगम को स्वर्ण-अवसर मिल गया। वह रात्रि के समय सोलहों सिंगार करके जहाँ दुर्गादास कैद था वहाँ पहुँची। अपने साथ वह एक लड़के को लेती गई थी। लड़के के हाथ में नंगी तलवार देकर उसने कहा—देखो, भीतर कोई न आने पावे।

बेगम दुर्गादास के पास जाकर बोली—आपको मैंने तकलीफ दी है। इसके लिए माफ कीजिए। मैं आप पर फिदा थी इसीलिए बादशाह को कह-सुन कर आपको कैद करवाया है। आपके कैद होने का यह कारण है कि मैं ऐशो-आराम से आपके साथ रहूँ। आपकी खूबसूरती ने आपको कैद करवाया है। मै तैयार होकर आई हूँ।

दुर्गादास—मेरी माँ, मुझे क्षमा करो। तुम मेरी माँ के समान हो। मै पराई स्त्रियो को दुर्गा के समान समझता हूँ। तमाम स्त्रियाँ जगज्जननी का अवतार है। मुझे माफ करो, बेगम!

गुलेनार-जानते हो दुर्गादास, तुम किससे बात कर रहे हो?

दुर्गादास—मै नारीरूप मे एक माता से बात कर रहा हूँ।

गुलेनार—देखो, कहना मानो। सब तकलीफो से छुटकारा पा जाओगे। दिल्ली की यह बादशाहत मेरे हाथ मे है। मै इस बादशाह को नही चाहती। अगर तुम मेरा कहना मान लोगे तो रात ही रात मे बादशाह को कत्ल करवा डालूँगी। दिल्ली की बादशाहत तुम्हारे हाथ मे होगी।

दुर्गादास—मुझे इस प्रकार बादशाहत की जरूरत नहीं है। तुम्हारी बादशाहत तुम्ही को मुबारिक हो।

गुलेनार—देखो, खूब समझ-बूझ लो। जैसे बादशाहत देना मेरे हाथ है उसी तरह तुम्हारा सिर उतरवा लेना भी मेरे हाथ की बात है।

दुर्गादास—मुझे बड़ी खुशी होगी अगर मेरा सिर दुर्गारूप तुझ देवी के चरणो मे लौटेगा।

दुर्गादास और बेगम के बीच इस प्रकार बातचीत हो रही थी। कार्यवश बादशाह का सिपहसालार उधर होकर जा

रहा था। उसने रुक कर दोनों की बातें सुनी तो वह दङ्ग रह गया। दुर्गादास के प्रति उसके दिल में आदर का भाव जागृत हो गया।

बेगम कहीं दुर्गादास की गर्दन न उतार ले, इस भाव से वह भीतर चला गया। दुर्गादास के चरणों में गिर कर उसने कहा—'दुर्गादास, तुम इन्सान नहीं पीर हो; कोई पैगम्बर हो।'

बेगम चौंकी। वह बोली—सिपहसालार, तुम यहाँ कैसे?

सिपहसालार—इस पैगम्बर को सिर झुकाने के लिए।

गुलेनार—इतनी गुस्ताखी?

सिपहसालार—यह बदतमीजी?

गुलेनार—जबान सम्भाल! किससे बात कर रहा है?

सिपहसालार—मैं सब सुन चुका। अपनी अक्लमंदी रहने दो।

असत्य स्वभावत: निर्बल होता है। बेगम थर-थर काँपने लगी। सेनापति ने दुर्गादास को मुक्त कर दिया और जोधपुर की ओर रवाना करने लगा।

दुर्गादास ने कहा—मैं बादशाह का बन्दी हूँ। तुम मुझे मुक्त कर रहे हो। कदाचित् बादशाह जान गये तो तुम विपदा में पड़ जाओगे। बादशाह तुम्हारा सिर उतार लेंगे।

सेनापति—आप निश्चिन्त रहें। मेरा सिर उतारने वाला कोई नहीं।

इधर दुर्गादास रवाना हुआ और उधर बेगम गुलेनार ने जहर का प्याला पीकर अपने प्राण त्यागे।

बादशाह को सब समाचार मिले। उसने शम्भाजी को पेश कर बुलाया। अन्त में शम्भाजी बड़ी बुरी तरह मारा गया।

रक्षानबन्ध

रक्षाबन्धन के त्यौहार के विषय में हिन्दू शास्त्रो मे जो कथा लिखी हुई है, उसका सक्षेप इस प्रकार है:—

राजा बलि दैत्यों का राजा था। उसने दान, यज्ञ आदि क्रियाओ से अपने तेज की इतनी वृद्धि की कि देवराज इन्द्र भय-भीत हो गया। उसने सोचा—'अपने तेज के प्रभाव से बलि इन्द्रासन पर बैठ जायगा और मुझे इन्द्र पद से भ्रष्ट कर देगा।' इन्द्र ने अपने बचाव का उपाय खोजा। जब उसे कोई कारगर उपाय नजर न आया तो वह विष्णु भगवान् की शरण गया। विष्णु भगवान् से उसने प्रार्थना की—'प्रभो! रक्षा कीजिये। दैत्य हमे दुःख दे रहे है। वे हमारा राज्य छीनना चाहते है।' विष्णु भगवान् ने इन्द्र की प्रार्थना स्वीकार की। उन्होने वामन रूप धारण किया और वे बलि के द्वार पर जा पहुँचे। राजा बलि अति दानी था मगर साथ ही अभिमानी भी था। विष्णु ने दान की याचना की। बलि ने कहा—कहो, क्या माँगते हो?

वामन—विष्णु बोले—रहने के लिए सिर्फ साढे तीन पैर जमीन।

बलि ने उनके ५२ अङ्गुल के छोटे स्वरूप को देख कर हँसते हँसते हुए कहा—इतना ही क्या माँगा? कुछ तो और माँगते।

वामन—इतना दे देंगे तो बहुत है।

राजा बलि ने स्वीकृति दे दी। विष्णु ने अपने वामनरूप की जगह विशालरूप धारण किया। उन्होंने अपनी तीन लम्बी डगों में स्वर्ग, नरक और पृथ्वी—तीनों लोक नाप लिए। इसके बाद बलि से कहा—तीन पैर तो हो गये, अब आधे पैर-भर जमीन और दे।

बेचारा बलि किंकर्त्तव्यमूढ हो रहा। वह और जमीन कहाँ से लाता। परिणाम यह हुआ कि वह अधिक जमीन न दे सका। तब विष्णु ने उसके सिर पर पैर रखकर उसे पाताल में भेज दिया।

इस प्रकार दैत्यों द्वारा होने वाले उपद्रवों को मिटाकर विष्णु ने भारत-भूमि को सुरक्षित बनाया।

जैन शास्त्रों में इस त्यौहार की कथा इस प्रकार है—

राजा का भाई हूँ। कम से कम मुझे तो साढे तीन पैर जमीन रहने के लिए दे दे।

नमूची ने कहा—मै साधु मात्र से घृणा करता हूँ। अपने राज्य मे एक भी साधु को रहने देना नहीं चाहता। पर तुम राजा के भाई हो अतएव तुम्हे साढे तीन पैर जमीन देता हूँ।

नमूची के वचन देने पर विष्णुकुमार मुनि ने अपनी विशिष्ट विक्रिया शक्ति से तीन पैरो मे ही तीनो लोक नाप लिये। बाकी जमीन न बचने से अन्त मे नमूची के प्राणों का अन्त हुआ और साधुओ के कष्ट निवारण से सम्पूर्ण भारत मे खुशी मनाई गई।

आपने हिन्दू शास्त्रो और जैन शास्त्रो की कथाएँ सुनीं। दोनों कथाओं मे कितनी समानता है, यह कहने की आवश्यकता नहीं है। विष्णु ने दैत्य राजा का विनाश कर इन्द्र की रक्षा की और जैन कथा के अनुसार विष्णुकुमार ने नमूची को दण्ड देकर साधुओ की रक्षा की। परन्तु मै इन दोनो कथाओ से प्रतिध्वनित होने वाला रूपक आध्यात्मिक दृष्टि से घटाता हूँ।

इन्द्र का अर्थ है—आत्मा। इन्द्रतीति-इन्द्रः—आत्मा। इस प्रकार अनेक स्थलो पर आत्मा के अर्थ मे इन्द्र शब्द का प्रयोग किया गया है। इस इन्द्र (आत्मा) को अहंकार रूपी दैत्य हराता है। तब इन्द्र घबराकर आत्मबल रूपी विष्णु से प्रार्थना करता है—त्राहि माम् त्राहि माम्-मेरी रक्षा करो—मुझे बचाओ मेरी नैया पार लगाने वाले तुम्ही हो। आत्मबल अपनी विशेष शक्ति रूप पैर फैला कर स्वर्ग, नरक और पृथ्वी को नाप लेता है। जब आधे की आवश्यकता और रहती है तब सिद्ध स्थान प्राप्त कर, आनन्द कर देता है।

———

रक्षाबन्धन का महत्त्व

रक्षा का डोरा साधारण डोरा नहीं है। यह ऐसा बन्धन है कि उसमें बँध जाने के पश्चात् फिर कर्त्तव्य से विमुख होकर छुटकारा नहीं मिल सकता। रक्षा के बन्धन से सिर्फ हाथ ही नहीं बँधता मगर वह हृदय का बन्धन है, वह आत्मा का बन्धन है, वह प्राणों का बन्धन है, वह कर्तव्य का बन्धन है, वह धर्म का बन्धन है। राखी के उस साधारण से प्रतीत होने वाले बन्धन में कर्तव्य की कठोरता बँधी है, सर्वस्व का उत्सर्ग बँधा है। राखी बँधवाने वाले को प्राण तक अर्पण करने पड़ते हैं।

नागौर (मारवाड़) के राजा के राज्य पर एक बार बादशाह ने चढ़ाई की। उनकी पुत्री ने अपने पिता से आज्ञा लेकर एक क्षत्रिय को भाई बनाने के लिए राखी भेजी। यद्यपि उस क्षत्रिय का नागौर के राजा से मनमुटाव था, दोनों में परस्पर शत्रुता थी, फिर भी वह राखी का तिरस्कार नहीं कर सका। राखी का तिरस्कार करना अपनी वीरता का तिरस्कार करना है, अपने कर्त्तव्य की उपेक्षा करना है, पवित्र मर्यादा का

अतिक्रमण करना है और कायरता का प्रकाश करना है यह सोचकर क्षत्रिय ने राखी स्वीकार कर ली। बादशाह ने जब नागौर पर चढ़ाई की तब उस वीर क्षत्रिय ने अपनी बहादुर सेना के साथ बादशाह की सेना पर धावा बोल दिया।

बादशाह की फौज पराजित हुई। नागौर के राजा ने उस क्षत्रिय का उपकार माना। दोनो का विरोध शान्त हुआ। नागौर-पति ने अपनी कन्या का विवाह उसके साथ कर देना चाहा। जब कन्या के पास यह सवाद पहुँचा तो उसने कहा—वह मेरे भाई है। मैने राखी भेज कर उन्हें अपना भाई बनाया है। भाई के साथ बहिन का विवाहसबंध कैसे हो सकता है ?
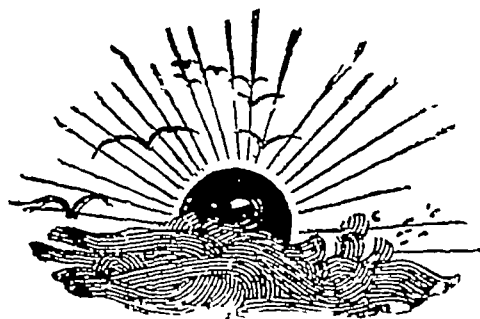
कृष्णाकुमारी का बलिदान

कृष्णाकुमारी की बात अधिक पुरानी नहीं है। वह मेवाड़ के राणा भीमसिंह की कन्या थी। कहा जाता है कि उसकी सगाई पहले जोधपुर की गई थी पर कारणवश बाद में जयपुर कर दी गई। जोधपुर वाले चाहते थे कि इसका विवाह हमारे यहाँ हो और जयपुर वालों की भी यही इच्छा थी।

कृष्णाकुमारी अपने समय में राजस्थान की अद्वितीय सुन्दरी समझी जाती थी। उसके सौन्दर्य की महिमा चारों ओर फैली हुई थी। ऐसी स्थिति में उसे कौन छोड़ना चाहता? जिस पर प्रतिष्ठा का भी प्रश्न था।

ने उसे सलाह दी—इस विपदा का कारण राजकुमारी कृष्णा-कुमारी है। अगर इसे मार दिया जाय तो झगड़ा ही खत्म हो जाय ! फिर न रहेगा बाँस न बजेगी बाँसुरी।

प्रताप के शुद्ध वंश मे कलंक लगाने वाले और मातृ-भूमि के उन्नत मस्तक को नीचा करने वाले कायर राणा ने यह सलाह मान ली।

सलाह को कार्य मे परिणत करने के लिए हृदयहीन डर-पोक राणा ने अपनी प्यारी पुत्री को दूध में विष मिलाकर अपने ही हाथों से पीने के लिए प्याला दे दिया। भोली-भाली कुमारी को कुछ पता न था। उसने समझा—'सदा दासी दूध का प्याला लाकर देती है, आज प्रेम के कारण पिताजी ने दिया है।' कृष्णा-कुमारी विषमिश्रित दूध पी गई पर उस पर ज़हर का तनिक भी असर न हुआ। दूसरे दिन उस हत्यारे राणा ने फिर विषमय दूध का प्याला दिया। कुमारी को किसी प्रकार की शंका तो थी ही नही, वह फिर उसे गटगट पी गई। आज भी विष का प्रभाव नहीं हुआ। तीसरे दिन फिर यही घटना घटने वाली थी कि किसी प्रकार कुमारी के कान में बात पड़ गई। उसने सोचा—'हाय ! मुझे मालूम ही नही हुआ, अन्यथा पिताजी को इतना कष्ट न देती। मेरी ही बदौलत मेरी मातृ-भूमि पर घोर संकट आ पड़ा है। अगर मै पुरुष होती तो युद्ध मे प्राण निछावर करके मातृ-भूमि की सेवा करती। मगर खैर, आज पिताजी विषैला दूध पिलाने आयेंगे तो उसे पीकर मातृ-भूमि का संकट टालने के लिए अपनी जीवन-लीला समाप्त कर दूंगी।

आखिर वही हुआ। कृष्णा ने विषमिश्रित दूध का प्याला पीकर अपने प्राण दे दिये। आज मेवाड़ के इतिहास मे उसका ाम सुनहरे अक्षरो मे लिखा हुआ है।

मैं अपने हाथ मे साड़ी बुन कर और उसे पहन कर आपके पास न आऊँ तब तक आप मुझ से दूर रहें। अगर आप यह न मानेगे और बलात्कार करेंगे तो मै प्राण त्याग दूंगी।'

प्राण त्याग देने को उद्यत हो जाने पर कौन-सा काम नही हो जाता? मनुष्य का परिपूर्ण प्रयास ही तो कठिन से कठिन कार्य मे सफलता दिखलाता है।

बादशाह ने समझा—'दो चार दिन में साड़ी तैयार हो जायगी। तब तक बलात्कार करने से क्या लाभ? चिड़िया पींजरे मे फॅस चुकी है, उड़ कर कहाॅ जाएगी?

बादशाह ने वचन दे दिया। रानी ने बुनने के लिए ताना तैयार किया और बुनना आरम्भ कर दिया पर वह दिन को साड़ी बुनती और रात के समय कुछ न कुछ खराबी निकाल कर दासियों द्वारा एक-एक तार जुदा करवा देती।

बादशाह के नौकर आते और साड़ी कितनी बुनी जा चुकी है, इस बात की खबर बादशाह को देते। बादशाह सोचता-चलो, दो-चार दिन मे पूरी हो जाएगी। मगर साड़ी पूरी तैयार नहीं हुई। भला इस प्रकार वह तैयार हो भी कैसे सकती थी? रानी को इस तरह करते-करते छह मास बीत गये। साड़ी फिर भी अधूरी की अधूरी ही रही।

कुछ दिन बाद उसके पति को इस घटना की खबर मिली। उसने सोचा—'मेरी पत्नी अपने सतीत्व की रक्षा करने के लिए कितना कष्ट भोग रही है।' उसके हृदय मे अपूर्व उत्साह पैदा हुआ। उसने सेना एकत्र की। अब की बार वह प्राणप्रण से लड़ा और उसने सफलता पाई। उसे पत्नी भी मिली और हालैंड का राज्य भी मिला।
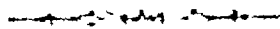
बहुत शौकीन थे। भाट ने उन्हे वीर-रस का प्रवाह वहा देने वाली सुन्दर भाव-पूर्ण कविताएँ सुनाई। उन्होने प्रसन्न होकर यथेष्ट माँग लेने की आज्ञा दे दी। भाट ने हाथ जोड कर कहा—'महाराज! मैं आप ही को चाहता हूँ।'

राजा—मुझे?

भाट—जी हाँ, अन्नदाता!

राजा उसी समय सिंहासन से उतर पड़ा। लोगो ने बहुतेरा समझाया, पर वह न माना। सच्चे क्षत्रिय वीर अपने वचन के पालन के लिए प्राण दे देना खिलवाड समझते थे। वे आप लोगो की तरह कह कर और हस्ताक्षर करके मुकर जाने वाले नहीं थे। अन्त मे वनराज का पिता और भाट घोड़ो पर सवार होकर चल दिये। मार्ग मे एक जगल आया। वहाँ एकान्त देख कर वनराज के पिता ने पूछा—'भाई, मैं चल रहा हूँ मगर मुझे ले जाकर करोगे क्या? अगर कोई आपत्ति न हो तो बताओ।'

भाट ने कहा—अन्नदाता! मारवाड़ मे एक वनराज की आवश्यकता है। आप वनराज के जनक हैं। आप ही इस आवश्यकता को पूरा कर सकते है। इसी उद्देश्य से आपको कष्ट दे रहा हूँ।

राजा—बात तो तुम्हारी ठीक है, पर अकेला मैं क्या करूँगा? वनराज पैदा करने के लिए वनराज की माँ भी तो चाहिए।

भाट—महाराज, वहाँ किसी वीर क्षत्रियाणी से आपका विवाह कर देंगे।

क्रोध
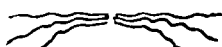
दो चिड़ियाएँ आपस मे लडने लगीं। उनमें इतनी उग्र लड़ाई हुई कि एक-दूसरी की चोच मे चोच डाल कर, क्रोध मे पागल होकर दोनो आपस मे उलझती हुई नीचे आ गिरी। न वह उसकी चोंच छोड़े, न वह उसकी। दोनो एक-दूसरी को पकड़ कर फँसी रहीं। इस प्रकार बहुत देर हो गई। आखिर एक कुत्ता वहाँ आया। उसने अपने पंजे का झपट्टा मारा। दोनो के प्राण-पखेरू उड़ गये।

मित्रो! बात साधारण है, छोटी-सी जान पड़ती है। पर इसके रहस्य का विचार कीजिए। बताइए उन चिड़ियो के मरने में दोष किसका है?

विचार कीजिए, क्या उन चिड़ियो को घर बाँटना था? क्या उन्हे धन-दौलत का बँटवारा करना था? असीम आकाश में स्वच्छन्द विचरण करने वाली चिडिया, कुत्ते की क्या विसात क्या शेर के भी हाथ आ सकती है? फिर वह दोनों कुत्ते के द्वारा कैसे मारी गई? क्रोध के कारण। क्रोध ने उनका नाश कर डाला। अगर वे क्रोध में पागल होकर अपना आपा न भूल गई होतीं तो कुत्ते की क्या मजाल कि वह उनकी परछाई भी पा सके।

सत्यवती उर्फ मत्स्यगंधा या योजनगंधा को देखकर राजा शान्तनु ने उसके साथ वार्तालाप किया और मन ही मन यह भी निश्चय कर लिया कि इस सर्वोत्कृष्ट कन्या के साथ विवाह कर इसे रानी बना लेना चाहिए। अब वह यह सोचने लगे कि इस विचार को कार्य रूप मे किस प्रकार परिणित किया जाय? राजा ने पूछा—'तुम किसकी कन्या हो?' कन्या ने उत्तर दिया-'सुदास की'।

राजा अपनी सत्ता से सुदास को अपने पास बुला सकता था पर केवल हुक्म चलाना बुद्धि का कार्य है, हृदय का कार्य तो धर्म का विचार करना है। राजा शान्तनु धर्म का विचार कर स्वयं याचक बनकर सुदास के पास गया। राजा ने उसे दाता बनाया और आप स्वयं याचक बना। यहाँ पर देखने योग्य है कि कन्या के पिता का क्या कर्त्तव्य है? सुदास यह सोच सकता था कि मै अपनी कन्या राजा को देदूंगा तो मेरा वैभव बढ़ेगा और मैं धनवान् बन जाऊँगा। पर वह इस प्रलोभन मे नहीं पड़ा। उसने अपनी कन्या का भावी हित देखा और एक राजा द्वारा मँगनी करने पर भी उसने राजा से कहा—मै अपनी कन्या आपको देने मे असमर्थ हूं। आपका पुत्र गंगकुमार विकट वीर है। राज्य का स्वामी वही बनेगा और मेरी कन्या से उत्पन्न हुआ पुत्र राज्य का अधिकारी नही हो सकेगा। वह इधर-उधर मारा-मारा भटकता फिरेगा। अतएव मैं अपनी कन्या आपको देने के लिए लाचार हूँ।' वास्तव मे माता-पिता का यह कर्त्तव्य है कि वे अपनी संतान के हित पर पहले ध्यान दे। उन्हे अपने स्वार्थ-साधन का जरिया न बनावे।

सुदास का उत्तर सुनकर राजा सोचने लगा—'यद्यपि यह न्या मुझे अत्यन्त प्रिय है, किन्तु इसके लिए अपने प्रिय पुत्र

गंगकुमार का अधिकार कैसे छीना जा सकता है? मैं अपनी इच्छा को दबाये रक्खूंगा, पर गगकुमार के अधिकार का अपहरण न करूंगा।'

भाँति-भाँति के विचारो मे डूबता-उतरता हुआ राजा राजमहल की ओर लौट आया। वह सुदास की कन्या की मँगनी करने के लिए पश्चात्ताप करने लगा। दूसरी ओर उसका हृदय सुदास की कन्या की ओर अत्यन्त आकृष्ट हो गया था और इस कारण वह सुन्दरी कन्या उसके मानस-चक्षुओं के सामनें पुनः प्रकट हो कर राजा को चिन्तातुर बनायें हुए थी। इसी चिन्ता का मारा राजा दिनो-दिन क्षीण होता जारहा था।

पिता की चिन्ता का कारण मंत्रियों द्वारा जानकर गगकुमार ने अपने पिता का कष्ट दूर करने के उद्देश्य से सुदास के पास जाने का निर्णय किया। मंत्रियो ने कहा—सुदास को यहाँ क्यो न बुला लिया जाय? आपका उसके पास जाना नही सोहता। गंगकुमार ने कहा—जब हम उसकी कन्या लेना चाहते है तो धर्म-विरुद्ध कार्य नहीं करना चाहिए। अतः उसी के घर जाना उचित है। इस प्रकार निर्णय कर गंगकुमार मंत्रियों के साथ सुदास के घर चला। गंगकुमार और मंत्रियो को अपने घर की ओर आता देख सुदास ने सोचा—मैंने महाराज को अपनी कन्या देना स्वीकार नहीं किया है, शायद इस कारण मुझे दंड देने के लिए तो ये लोग नहीं आरहे हैं। पर मैंने उन्हे कोई अनुचित उत्तर नही दिया। ऐसी अवस्था मे अगर प्राण जाएँ तो चले जाएँ, मुझे डर किस बात का है।

गगकुमार ने सुदास से कहा—'अपना सौभाग्य समझो कि पिताजी तुम्हारी कन्या चाहते हैं और तुम्हारे जामाता बन

रहे है। नातेदारी के लिहाज से तुम मेरे नाना बन रहे हो। फिर भी तुम इस संबंध को अस्वीकार क्यो कर रहे हो ?' सुदास ने उत्तर दिया-इस संबंध मे आपही बाधक है। यदि आप यह प्रतिज्ञा करे कि सत्यवती (मत्स्यगधा) का पुत्र ही राज्य का अधिकारी होगा, तो महाराज के साथ अपनी कन्या का विवाह करने मे मुझे तनिक भी आनाकानी नही है।

सुदास का उत्तर सुनकर गंगकुमार सोचने लगे—'आज वास्तव मे यज्ञ का अवसर उपस्थित है।' लोग यज्ञ का अर्थ सिर्फ आग मे घी होमना करते है पर सच्चा यज्ञ क्या है, इस विषय मे कहा गया है:—

श्रोत्रादीनीन्द्रियान्यन्ये संयमाग्निषु जुह्वति,
शब्दादिविषयानन्य इन्द्रियाग्निषु जुह्वति ।
सर्वाणीन्द्रियकर्माणि प्राणकर्माणि चापरे,
आत्मसंयमभोगाग्नौ जुह्वति ज्ञानदीपिते ।

आज श्रोत्र आदि इन्द्रियो को पिता के हित के लिए मै यज्ञ में समर्पण करता हूँ। हे कान ! तू ने बहुत बार सुना है कि गंगकुमार युवराज है, पर अब इस कथन का पिता के हित की अग्नि मे आज उत्सर्ग करना होगा और सत्यवती का पुत्र युवराज है, इस कथन मे आनंद मानना होगा। ऐ नेत्रो ! तुम राजसी पोशाक को देखकर आनंद मानते थे, पर अब इस इच्छा को यज्ञ मे होमना होगा और भाई को राजा के रूप मे देखकर [illegible] होना पड़ेगा। हे ओ जिह्वा ! तू भी अपने विषयो से लोलुपता त्याग दे, क्योंकि पिता के हित के लिए तेरे विषयों को

भी मैं यज्ञ की सामग्री बनाऊँगा। अरे मस्तक! तू बहुत दिनों तक उन्नत ऊँचा रहा है पर अब सत्यवती के पुत्र के सामने तुझे झुकना होगा! और उसे राजा स्वीकार करना होगा।

अग्नि में घी का होम करने वालों की कमी नहीं है पर ऐसा महान् यज्ञ करने वाले विरले ही होते है।

गंगकुमार कहता है—हे शरीर! तू राजा बनना चाहता था पर अब भाई को राजा बनाकर अपने हाथ से उसके ऊपर चँवर ढोरने पड़ेंगे। इस प्रकार पिता के हित के लिए अपने स्वार्थ का यज्ञ करना पड़ेगा।

युवको के लिए यह एक महान् आदर्श है। देश, धर्म और माता पिता के लिए ऐसा अनूठा त्याग करने वाले युवको की बात कौन नहीं मानेगा?

इसी प्रकार पिता का कर्त्तव्य क्या है? यह बात राजा शान्तनु के विचारों से देखो। राजा चाहता तो यह वचन दे सकता था कि सत्यवती की कूख से जन्म लेने वाला पुत्र ही राज्य का अधिकारी होगा और यह वचन देकर वह सत्यवती के साथ विवाह कर सकता था। पर उसने ऐसा नहीं किया। उसने सोचा—मैं अपनी कामना की पूर्ति की खातिर पुत्र के अधिकार का अपहरण कैसे कर सकता हूँ! इस विचार के वशवर्ती होकर उसने अपनी इच्छा का दमन करना न्याय-संगत समझा, पर पुत्र के अधिकार को छीनना उचित न समझा। इसी प्रकार जहाँ पिता-पुत्र एक दूसरे के हित का ही विचार करते हैं वहाँ कभी आपसी वैमनस्य या संघर्ष उत्पन्न नहीं होता। वृद्ध

और युवक इसी भांति हिलमिल कर चले तो उत्थान और शान्ति के साथ-साथ आनंद का सर्वत्र प्रचार हो सकता है।

तो गंगकुमार ने सुदास से कहा—'पिता के हित के यज्ञ मे मैंने अपना सर्वस्व होम दिया हूं, इस कारण, सुदास! मैं तुम्हारे सामने प्रतिज्ञा करता हूॅ कि मै राज्य स्वीकार नहीं करूँगा और तुम्हारी पुत्री से जो पुत्र उत्पन्न होगा वही राज्य का अधिकारी होगा।'

गंगकुमार की यह प्रतिज्ञा सुनकर सुदास कहने लगा—'आप वास्तव मे वीर पुरुष है। आप जैसी प्रतिज्ञा और कौन कर सकता है? पर मुझ से एक भूल होगई है। आपका पुत्र भी आप ही जैसा पराक्रमी होगा। आप राज्य नहीं स्वीकार करेंगे पर आपका पुत्र, मेरी पुत्री के पुत्र को राज-सिंहासन पर भला कब बैठने देगा? वह यह कहेगा कि राज्य मेरे पिता के अधिकार में है अतएव राज्य का असली अधिकारी मैं ही हूं। मेरे पिता ने यदि राज्य त्याग दिया था तो क्या हुआ? मैंने तो कभी राज्य का परित्याग नहीं किया है। मै अपने उत्तराधिकार को क्यों त्याग दूँ? इस प्रकार कहकर आपका पुत्र, मेरी पुत्री के पुत्र को राज्यसिंहासन पर न बैठने दे, यह संभव है। ऐसी परिस्थिति में अपनी कन्या आपके पिताजी को सौप देना मेरे लिए शक्य नही है।'

जो लोग अपनी कन्या को धन के लोभ मे फँसकर बेच डालते हैं उन्हे सुदास के कथन पर विचार करना चाहिए। एक साधारण श्रेणी का आदमी धीवर भी अपनी कन्या के अधिकार के संरक्षण के लिए कितने उन्नत विचार रखता है। उच्च श्रेणी

और उच्च-कुलीन होने का दावा करने वालों को अपनी पुत्री के अधिकारो के सबंध मे कितने उच्चतर विचार रखने चाहिए ।

सुदास का यह कथन सुनकर गगकुमार ने कहा—"तुमने ठीक कहा है । तुम्हे मेरे भावी पुत्र का भय है, पर यदि मैं विवाह ही नहीं करूँगा तो पुत्र कहाँ से आएगा ? अतएव मैं देव, गुरु और धर्म की साक्षी से प्रतिज्ञा करता हूँ कि मैं जीवन-पर्यन्त विवाह नहीं करूँगा । मैं जीवन भर ब्रह्मचारी रहूँगा ।"

गंगकुमार ने विवाह करने का भी त्याग किया था, पर आज इससे ठीक विपरीत अवस्था दिखाई देती है । आज अनेक लोलुप विवाह करके भी नैमित्तिक सम्बन्ध जोडने से नही हिचकते । और यूरोप की तो लीला ही निराली है । वहाँ विवाह के बंधन को ही बुरा समझा जाता है । और कहा जाता है स्वेच्छा से बंधन मे पड़ना भला कौन-सी बुद्धिमत्ता है । इस धारणा के कारण वहाँ स्वैर विहार का प्रचार हो रहा है । अनेक पुरुप और युवत्तियाँ वहाँ न विवाह करते है, न ब्रह्मचर्य ही पालते है । इससे दुराचार और तज्जन्य अनर्थ फैल रहे हैं । यह पतन का पथ है । पर तुम्हारे सामने तो भीष्म का भव्य आदर्श विद्यमान है । अतएव ब्रह्मचर्य की आराधना और साधना मे ही अनेक महान् मंगल निहित हैं ।

गगकुमार की इस भीष्म प्रतिज्ञा को सुना, तो सुदास और सत्यवती स्तब्ध रह गये । गगकुमार ने ऐसी भीष्म प्रतिज्ञा की

थी, इसी कारण उनका नाम ही 'भीष्म' पड़ गया। अन्त में भीष्म सत्यवती को अपने पिता के पास ले गये। सत्यवती का राजा शान्तनु ने यथाविधि पाणिग्रहण किया। भीष्म ने आ-जीवन ब्रह्मचर्य पालन किया। उन्होने विवाह नहीं किया था फिर भी ब्रह्मचर्य के कारण वे जगत् मे 'पितामह' के गौरवपूर्ण पद पर प्रतिष्ठित हुए।

श्रीकृष्ण

जब कृष्ण का जन्म हुआ था, तब भारत धर्म से शून्य-सा हो रहा था। चहुँ ओर अधर्म का प्रचंड प्रताप फैला हुआ था। उस समय राजा पापी थे, यह कहना पर्याप्त नहीं है, क्योंकि पाप कोई स्थूल वस्तु नहीं है। वह किसी के हृदय ही में जन्मता है और जिसके हृदय में जन्मता है उसके द्वारा जगत में त्राहि-त्राहि मच जाती है। जब कृष्ण जन्मे थे, तब भी ऐसा ही हो रहा था। अधर्म और अत्याचार के कारण सर्वत्र हाहाकार मच रहा था। एक ओर कंस कहता था—मै राजा हूँ, राजा-परमात्मा का प्रतिनिधि! मेरा वाक्य परमात्मा का अमिट आदेश है। मेरी कृति परमात्मा की कृति है। दूसरी ओर मदांध जरासंध हुँकारता था, और तीसरी ओर दिल्लीपति दुर्योधन गरजता था। वह कहता था—मैं ईश्वर का अंश हूँ, विश्व के ऐश्वर्य पर मेरा एकाधिपत्य है। ऐश्वर्य मेरे लिये है। जगत् की मूल्यवान् वस्तुएँ मेरे लिए हैं। संसार की समस्त सम्पत्ति मेरे उपयोग के लिए है! इसी प्रकार शिशुपाल, रुक्मकुमार, कालीकुमार, और कालीनाग

भी अहंकार के पुतले बने बैठे थे। उनके उच्छृंखल अत्याचारो का पृथ्वी पर नंगा नाच हो रहा था। संसार मे धर्म भी कोई चीज है, न्याय की भी यहाँ सत्ता है, यह बात उन्हे समझ ही नहीं पडती थी। अगर कोई धर्म का नाम उनके सामने लेता था तो कहते थे-'धर्म क्या है ? हम जो कहते है, जो करते हैं, वही धर्म है, क्योंकि हम ईश्वर के अंश है! धर्म निर्बलो का सहारा है, अनाथो का नाथ है। हम न निर्बल है, न अनाथ है। हम से और धर्म से क्या वास्ता ? हमारे राजदंड को देखते ही धर्म और न्याय नौ-दो-ग्यारह हो जाते हैं। अतएव यहाँ न धर्म की दुहाई कारगर हो सकती है और न नीति की।' उस समय के नीतिज्ञ विद्वानो ने इन अभिमानी राजाओ को समझाने का प्रयत्न किया था, परन्तु सबको यही उत्तर मिलता था कि हम धर्म के गुलाम नहीं है—शास्त्र के दास नही हैं। हमे जो रुचिकर है, वही शास्त्र है। हमे केवल अर्थशास्त्र से जानकारी है और वह भी इस रूप मे कि किस प्रकार पराया धन अपना बना लिया जाय ? हम धनोपार्जन के लिए कहाँ जाएँ ? दुनिया कमावे और हम उसका उपभोग करे, बस यही अर्थशास्त्र का मर्म है।

श्रीकृष्ण के जन्मकाल की परिस्थिति का दिग्दर्शन कराने के लिये सबके अत्याचारो का वर्णन न करके केवल कंस के अत्याचारों का ही उल्लेख करूँगा। कंस एक प्रबल अत्याचारी था उसके अत्याचारो का अनुमान इसी बात से लगाया जा सकता है कि वह अपने पिता को कारागार के सींखचो मे बंद करके स्वयं राजा बन बैठा था। कंस के इस कार्य से प्रसन्न होकर और उसे वीर समझकर जरासंध ने अपनी कन्या उसे

ब्याह दी। जरासंध का दामाद बन जाने के कारण उसका साहस और अधिक बढ़ गया। अब वह समझने लगा कि जगत् मे मैं ही मैं हूँ—मेरा मुकाबिला करने वाला संसार मे और कोई नहीं है।

जैन-शास्त्र कहता है—कंस का अन्याय देख कर उसके भाई अतिमुक्त ने यह निश्चय किया—'जो अपने पूजनीय पिता को कैद करके आप राजा बना है और प्रजा पर घोर से घोर अत्याचार कर रहा है, उसके आश्रय मे रहना और उसके अन्याय के विष से विषैले टुकड़े खाना आत्मा का हनन करना है। जगल मे रहना और निरवद्य एवं नीरस आहार पर निर्वाह करना बेहतर और श्रेयस्कर है। कंस के पास रह कर अन्याय का प्रसाद लेना मेरे लिए उचित नही है।' ऐसा विचार कर अतिमुक्त ने दीक्षा धारण की और वे मुनि बन गये। एक बार अतिमुक्त मुनि भिक्षा के लिए या कंस की राजचर्या जानने के लिए कंस के महल में गये। वहाँ कंस की रानी जीवयशा मदान्ध होकर मुनि का उपहास करने लगी। उपहास के साथ वह मुनि के प्रति कटुक शब्दो का भी प्रयोग करने लगी। वह बोली— 'वाह वाह'! यह देखो राजघराने मे पैदा हुए हैं! कुल को कलंक लगाते हुए इन्हे लाज नहीं आती! हाथ से कमाकर नही खाया जाता, इसलिए भीख माँगने के लिए दर-दर भटकते फिरते हैं। इन्हे लज्जित होना चाहिए सो तो होते नहीं, उल्टा हमे लाजो मरना पडता है।'

जीवयशा की कठोर वाणी सुनकर मुनि ने उत्तर दिया— 'मेरी भर्त्सना करने के बदले अगर तुमने अपने पापो को देखा होता तो तुम्हारा कल्याण होता। जीवयशा! अपने दोष देखने

की निर्मल दृष्टि विरले ही पाते है और जिन्हे यह दृष्टि प्राप्त है, वे निस्संदेह भाग्यशाली है। दूसरो के दोषो को देखने और गुणो को दोष समझ लेने से अन्तःकरण मलीन बनता है, पर स्वदोषदर्शन से निर्मलता आती है। फिर भी अगर तुम्हे दूसरे के दोष ही देखने है, तो पति को क्यो नहीं देखती, जो पिता को कारागार मे बंद करके राजा बन बैठा है और जिसने अपनी संतान के सामने एक सुन्दर आदर्श उपस्थित कर दिया है। इस दुराचार का विचार आते ही लज्जा से मस्तक झुक जाना चहिए।

तुम अपनी जिस देवकी का सिर गूंथ रही हो उसके पुत्र द्वारा ही तुम्हारा पति मारा जायगा और तुम्हे वैधव्य की व्यथा भोगनी पड़ेगी। अन्याय का फल उसी समय तुम्हारी समझ मे आयगा।'

अतिमुक्त मुनि की खरी बात सुनकर जीवयशा घबरायी और सोचने लगी- मैंने वृथा ही इन मुनि को छेड़ा।' देवकी के पुत्र द्वारा अपने पति का हनन होगा, यह सुनकर उसके रोगटे खड़े हो गये। चेहरे पर उदासी छा गई। जीवयशा अपना मुँह लटकाए उदास बैठी थी कि उसी समय अहंकार मे चूर कस भी उसके समीप उसी महल मे आ पहुँचा। रानी को उदास देखकर कंस ने कहा-'प्रिये! इस असामयिक उदासी का कारण क्या है? सदा प्रफुल्लित रहने वाले तुम्हारे चेहरे पर उदासीनता क्यो झलक रही है? जब तुम उदासीन रहोगी, तो संसार मे प्रसन्नता किसके हिस्से आएगी? बताओ, उदासी का क्या कारण है?'

जीवयशा ने कहा—नाथ! मेरी उदासीनता का गहरा कारण है। यह कारण इतना भयंकर है कि मुँह से कहते भी नही बनता।

कंस—आखिर कहे विना कैसे चलेगा। उसका प्रतिकार करना होगा। विना कहे कैसे प्रतिकार होगा?

जीवयशा—आज आपके भाई अतिमुक्त अनगार यहाँ आये थे। मैंने उनका उपहास किया और कुछ कठोर वचन भी मुँह से निकल गये। उन मुनि ने मुझे कुछ शिक्षा देने के साथ अत्यन्त अनिष्टसूचक भविष्यवाणी की है। उसका स्मरण आते ही कलेजा मुँह को आता है। उन्होंने कहा है—'देवकी का पुत्र तेरे पति का नाश करेगा।' यह सुनकर मेरी चिन्ता का पार नहीं है।

जीवयशा का कथन सुनकर कस ने अट्टहास किया, मानों होनहार को वह अपने अट्टहास्य से उड़ा देना चाहता हो। उसने जीवयशा से कहा—'वस, इसी वात से इतनी चिन्ता हो गई! भला इन वावा-जोगियों की वात का क्या ठिकाना? वे तो इसी तरह की ऊल-जलूल वातें गढ़ कर दूसरों के मन में भ्रम घुसेड देते हैं। वेचारे देवकी के लडके की क्या मजाल कि वह मुझे मार सके। कदाचित मारने का प्रयत्न भी करता, तो यह और भी अच्छा हुआ कि हमें पहिले से मालूम हो गया। यह तो उदासी के वदले प्रसन्नता की वात है। देवकी का पुत्र मुझे नष्ट करे, उससे पहले मैं देवकी का ही काम तमाम कर देता हूँ। न रहेगा वाँस, न वजेगी वाँसुरी। इसमें चिन्ता की वात ही क्या है?'

जीवयशा को सान्त्वना देकर कंस राजसभा मे आया। उस समय राजसभा में एक विद्वान् आये थे। कंस के पूछने पर

उन्होंने बतलाया—मैं ज्योतिष-शास्त्र में पारंगत हूँ। कंस ने कहा—मुझे ज्योतिष-शास्त्र पर विश्वास नही है। पर ज्योतिषी ने कहा—'किसी शास्त्र की प्रामाणिकता, किसी के विश्वास पर अवलम्बित नही है। ज्योतिष-शास्त्र अगर प्रमाण है, तो आपके अविश्वास के कारण उसकी प्रामाणिकता नष्ट नही हो सकती। कंस ज्योतिर्विद की निखालिसता से कुछ आकृष्ट-सा हुआ। उसने कहा—'अगर आप ज्योतिषशास्त्र को प्रमाण मानते है तो यह बताइए कि मेरी मृत्यु किसके हाथ से होगी ?'

आज ज्योतिष-शास्त्र के सम्बन्ध मे अनेक प्रकार की भ्रांतियाँ फैली है। मेरे खयाल से इनके दो कारण है-प्रथम तो ज्योतिष का अविकल ज्ञान नही रहा है और दूसरे ज्योतिषी लोग लोभ के चगुल मे पड़े हुए हैं। साठ वर्ष के बूढ़े के साथ बारह वर्ष की लड़की का लग्न जोड़ने वाला कोई ज्योतिषी ही तो होगा! इस प्रकार लोभ ने इस विद्या को नष्ट-भ्रष्ट-सा कर डाला है। आर्थिक लोभ से प्रेरित होकर किसी भी शास्त्र का दुरुपयोग करना उसका अपमान करने के समान है। गणित विद्या सच्ची है, यह शास्त्र भी मानता है, और जो लोग निस्पृह है उनका गणित आज भी सही उतरता है। लेकिन लोभी लोगो ने गणित को बदनाम कर दिया है।

कंस की सभा मे आया हुआ ज्योतिषी लोभी नही था। लोभी में निर्भयता नही होती। निर्लोभी व्यक्ति सत्य कहने से भय नहीं खाता। अतएव ज्योतिषी ने कंस को साफ-साफ कह दिया—'आपके घर मे एक ऐसा महापुरुष जन्मेगा, जो आपको नष्ट करेगा।'

कंस—उसका लक्षण क्या होगा ?'

ज्योतिषी—'वह गोकुल में रह कर बड़ा होगा। गायों से प्रेम करेगा और जंगल में जाकर गायें चराएगा। वह अपने हाथ में बांसुरी रखकर जनता को उसकी मधुर ध्वनि से मोहित कर लेगा। तुम उसे मार डालने का प्रयत्न भी करोगे; पर ज्यों-ज्यों तुम प्रयत्न करोगे, त्यों-त्यों उसका बल बढ़ता जायगा। उसे नष्ट करने में कोई समर्थ न हो सकेगा और वह तुम्हारा नाश करने में समर्थ होगा।'

ज्योतिषी और मुनि की मिलती हुई भविष्य-वाणी सुनकर कंस का कलेजा एक बार काँप उठा। उसके सामने मृत्यु नाचने-सी लगी। पर दूसरी ही क्षण उसकी नास्तिकता ने उसके विचारों को ढँक लिया। अविश्वास का त्राण उसे प्राप्त हो गया। वह सोचने लगा—'यह लोग बड़े ठग और धूर्त हैं। मेरा लड़का ही क्या मुझे मार सकता है ?'

भविष्यवाणी सुनकर कंस को सावधान हो जाना चाहिए था। उसे अन्याय और अधर्म के मार्ग से विमुख होकर न्याय और धर्म के प्रशस्त पथ की ओर उन्मुख होना चाहिए था। पर कहा है—'विनाशकाले विपरीतबुद्धिः।' कंस के संबंध में यह उक्ति पूर्ण रूप से चरितार्थ होती है। अन्त में कंस ने ज्योतिषी से कहा—तुम्हारी धूर्तता की यहाँ दाल नहीं गलेगी। मैं तुम्हें कैद करता हूँ। मेरा काल जन्मेगा और मुझे मार डालेगा, तब वही तुम्हें कारागार से मुक्त भी कर देगा। अन्यथा मैं तो तुम्हारा काल होता ही हूँ।

राजा लोग कारागार को अपनी रक्षा का सफल साधन समझते हैं। उन्हे न्याय-अन्याय की परवाह नहीं होती। जिस पर उनका कोप हुआ, उसी को जेल के सीखचो मे बंद कर देते है और अपने आपको सुरक्षित मान बैठते हैं। मगर सत्ता का यह दुरुपयोग कब तक उनकी रक्षा कर सकता है ?

कंस का कथन सुनकर ज्योतिषी ने कहा—'आपके निर्णय मे मिन-मेख हो ही कैसे सकती है ? मुझे अपनी विद्या पर पूर्ण श्रद्धा है। अगर मेरी विद्या सच्ची ठहरे तो ही मुझे जीवित रहना चाहिए; नहीं तो जेल मे सड़कर मर जाना ही अच्छा है।'

कंस ने उस ज्योतिषी को जेल के हवाले कर दिया।

भागवत के अनुसार नारद ने कंस को समझाया था और देवकी के पुत्र द्वारा उसकी मृत्यु बतलाई थी। नारद ने कहा था—'तुम जल्दी सँभल जाओ, अन्याय को त्यागो और नीति तथा धर्म के अनुसार अपने कर्त्तव्य का पालन करो। ऐसा करते हुए अगर मृत्यु भी आ जाएगी, तो शान्ति से मर सकोगे।'

कंस ने नारद से कहा—'महाराज ? यह मेरा सद्भाग्य है कि मेरी मृत्यु की सूचना मुझे अभी से मिल गई है। भावी अनिष्ट की सूचना पहले ही मिल जाना निस्संदेह सौभाग्य ही समझना चाहिए ऐसा होने से, पहले ही उसके निवारण की व्यवस्था की जा सकती है। मैं इस बात से जरा भी भयभीत नहीं हूँ कि देवकी का पुत्र मुझे मारेगा। मै शूरवीर क्षत्रिय हूं। मौत मेरे लिए खेल है। दूसरे का प्राण ले लेना मेरे बॉए हाथ का काम है। आपने मुझे सावधान कर दिया, इसलिए आपका कृतज्ञ हूं। मै देवकी को देवलोक भेज दूंगा, तब किस का पुत्र मुझे मारने

के लिए जन्मेगा ? चोर की माँ को मार दिया जाय तो चोर कहाँ से आएगा ?'

इस प्रकार कह कर वह नारद के सामने ही क्रोध का मारा भड़क उठा। नारद ने उसे फिर समझाया—शान्त होओ। इस प्रकार क्रुद्ध होने से कोई नतीजा नहीं निकलेगा। तुम जो सोचते हो वह सफल नहीं हो सकता। महापुरुष धर्मात्मा होते हैं। धर्म जिसकी रक्षा करता है उसका कोई कुछ नहीं बिगाड़ सकता। 'धर्मो रक्षति रक्षितः।'

कंस को सब ने समझाया, पर वह न माना, न माना। वह न समझा पर आप तो समझो और मानो कि पाप की जाहोजलाली न कभी रही है, न रहेगी। दो दिन के लिए कोई भले ही मौज मान ले, अन्त में पाप के प्रभाव से पतन अवश्य होता है।

नारद के समझाने पर भी कंस न समझा। उसने कहा—महाराज! अब आप पधारिये। अब आपकी यहाँ आवश्यकता नहीं रही है। मुझे पहले खबर लग गई है तो मैं सारा प्रबंध कर लूंगा। भावी आपत्ति की सूचना देने के लिए मैं आपका कृतज्ञ हूँ। यह मेरा सौभाग्य है कि मुझे पहले ही सब सूचना प्राप्त हो गई।

नारदजी चले गये। कंस ने देवकी को मार डालने का निश्चय किया। पर किसी ने उसे समझाया—कुमारी कन्या को मार डालना अत्यन्त भीषण कृत्य है। ऐसा करने से घोर पाप लगता है, पुण्य क्षीण होता है और जगत् में अपकीर्ति होती है। यद्यपि कंस पाप-पुण्य को नहीं मानता था, पर जगत् में अप-

कीर्ति फैल जाने का उसे भय था। इस के अतिरिक्त उसने यह भी सोचा कि ऐसा करने से लोग मुझे डरपोक समझेंगे। अतएव उसने देवकी को मार डालने का विचार त्याग दिया। इसके बदले उसने दूसरा उपाय सोचा—देवकी का विवाह कर दिया और उसके गर्भ से जो सन्तान उत्पन्न हो उसे उसी समय तलवार के घाट उतार दिया जाय। ऐसा करने से मै अपने काल का भी नाश कर सकूंगा, मेरा अपयश भी न होगा और डरपोक भी नहीं कहलाऊँगा।

ऐसा निश्चय करके उसने वसुदेव के साथ देवकी का विवाह कर दिया। यद्यपि कंस के हृदय मे दूसरी बात थी, उसका हृदय कुटिलता से भरा हुआ था; लेकिन ऊपर से उसने वसुदेव के साथ खूब कपट-स्नेह प्रकट किया और वसुदेव की खूब सेवा की। वसुदेव ने इससे प्रसन्न होकर कह दिया—आप जो चाहे वही मैं आपको दूंगा! कंस जानता था–वसुदेव क्षत्रिय है और जो बात मुँह से निकालेंगे उसका अवश्य पालन करेगे। अतएव कंस ने कहा—'यदि आप मुझ पर कृपा रखते है तो मै आपसे यह चाहता हूँ कि मेरी बहन देवकी के गर्भ से जो बालक उत्पन्न हो, वे सब मुझे सौंप दिये जॉय और मै अपनी इच्छा के अनुसार उनका उपयोग कर सकूँ।' वसुदेव के हृदय मे लेशमात्र भी यह आशंका नहीं थी कि कंस अपनी बहन के बालकों को मार डालेगा। अतएव उन्होने सहज भाव से स्वीकृति दे दी। कंस यह स्वीकृति पाकर मानो निहाल हो गया। उसमे नई जान-सी आ गई।

वसुदेव जैसे सत्यवादी के छ. बालक मारे जावे यह नहीं हो सकता। इस संबध मे शास्त्र मे कहा है—सुलसा के

मृत-पुत्र होते थे। उसने देव की उपासना की। देव ने कहा—'मृत बालक को जीवित कर देना मेरे सामर्थ्य से बाहर है। मगर तुम्हारे मरे हुए बालकों के बदले में मैं ऐसे बालक ला दूंगा, जिनकी समानता कोई बालक न कर सकेगा।' इस प्रकार जब देवकी के बालक होता, तभी सुलसा के भी होता और देव सुलसा का मरा हुआ बालक देवकी के यहाँ रख कर देवकी का जीवित बालक सुलसा के पास पहुँचा देता था। इस तरह देवकी के छह बालक सुलसा के यहाँ पहुँच गये। सुलसा के जो मरे हुए बालक आते थे, वे कंस के सामने ले जाये जाते थे। कंस उन्हें मरा हुआ देख कर और यह सोच कर कि यह मेरे डर के मारे मर गये हैं, अभिमान से फूल उठता था। फिर भी उसे संतोष न होता और वह उन मरे बालकों को ही पछाड़ डालता था।

सातवीं बार वह महापुरुष आया जिसका आज जन्म-दिन है। ऐसा बालक देवकी के गर्भ में आने के कारण उसे शुभ सूचक स्वप्न आये। देवकी की शरीर इस प्रकार चमकने लगा जैसे काच की हंडी में दीपक रखने से वह चमकने लगती है। देवकी और वसुदेव चकित थे। उन्हें लक्षणों से यह मालूम हो गया था कि कोई महापुरुष गर्भ में आया है। देवकी को इस प्रकार तेजपूर्ण देखकर कंस भी समझ गया कि अब मेरा काल बताया जाने वाला बालक गर्भ में आया है। कई ग्रंथकारों ने लिखा है कि कंस ने देवकी और वसुदेव को बेड़ी और हथकड़ी से जकड़ दिया था और कारागृह में डाल दिया था। दोनों पर सख्त पहरे का प्रबंध किया गया था। इस मुसीबत में पड़े हुए वसुदेव, देवकी से कहने लगे—यह सब मेरे वचन-बद्ध होने का

परिणाम है। संसार मे पतिव्रता महिलाएँ तो और भी होगी, लेकिन देवकी, तुम जैसी पतिव्रता का होना दुर्लभ है। तुमने अपने पति के वचन की रक्षा के लिए अपने लाड़ले लाल भी मरने के लिए कंस के हाथ मे सौप दिये। तुमने अपना सर्वस्व निछावर कर मेरे धर्म की रक्षा की है। सचमुच तुम इस संसार की सारभूत विभूति हो। आर्य-ललनाएँ तुम्हारा अनुकरण कर संसार मे पतिव्रत-धर्म की रक्षा करेगी।

देवकी ने नम्रता पूर्वक मधुर स्वर में कहा—नाथ, इस में मेरा क्या है? यह शरीर भी आपका है। बालक तो जैसे आपके वैसे ही मेरे है। मै बालको को जितना प्यार करती हूँ, उतने ही आपको भी वे प्यारे हैं। बल्कि माता की अपेक्षा पिता को पुत्र से अधिक स्नेह होता है। दुर्योधन की माता गांधारी ने दुर्योधन का मोह त्याग दिया था, लेकिन धृतराष्ट्र पुत्र-मोह न छोड़ सके थे। इस प्रकार पिता को पुत्र से अधिक प्रेम होता है। जब अधिक प्रेम-परायण आपने ही उन बालको को दे दिया, तब मुझे क्या आपत्ति हो सकती है? इसके अतिरिक्त आपके कार्य मे किसी प्रकार का विसंवाद खड़ा करना मेरे लिए उचित भी नहीं है।

जिस सत्य की रक्षा के लिए वसुदेव ने अपने सुकुमार और प्यारे बच्चे काल के हाथ मे सौप दिये, उस महान् सत्य को आप भी अपनाइए और 'त सच्चं भगवओ' इस शास्त्र-वाक्य पर पूर्ण श्रद्धा रखिए। स्मरण रखिए, बुद्धि एक प्रकार की वंचना है! उसकी दौड़ बहुत थोड़ी है। सत्य इतना महान् और उच्च है कि वह बुद्धि की परिधि मे नहीं समा सकता।

पत्थर तोलने की तराजू पर कदाचित् सुई तुल सकती है पर बुद्धि की तराजू पर सत्य नहीं तुल सकता। बुद्धि से तर्क-वितर्क उत्पन्न होता है और तर्क-वितर्क सत्य की परछाई भी नहीं पा सकता। प्रगाढ़ श्रद्धा के कंटकाकीर्ण पथ पर चलते चलने से सत्य के सन्निकट पहुँचना पडता है। अतएव श्रद्धा को बुद्धि के वस्त्र न पहनाओ। विचार करो—सत्य की आराधना के लिए वसुदेव और देवकी ने अपने प्यारे पुत्र भी अर्पण कर दिये, तो सत्य का अनुसरण करने के लिए हम क्या नहीं त्याग सकते? अगर संसार में सर्वत्र सत्य की प्रतिष्ठा हो जाय और प्रत्येक व्यवहार मे सत्य भगवान् के दर्शन होने लगें, तो संसार का यह नारकीय रूप नष्ट हो सकता है, वकीलों को घर बैठ कर और-कोई उच्चतर आजीविका खोजनी पडे और कचहरी, कच-हरी (सिर के बाल तक हरने वाली) न रह जाय। वकीलों और अदालतों के आधिपत्य से ससार में शांति के बदले अशांति का ही प्रसार हुआ है। यह सब सत्य से विमुख होने का परिणाम है। जब हृदय-रूपी कुसुम मे सत्य के सौरभ का संचार होगा, तभी हृदय मे कृष्ण का जन्म हो सकेगा।

देवकी ने वसुदेव से कहा—पुत्र जैसे मेरे थे, वैसे ही आपके भी थे। जैसा दुःख मुझे हुआ है वैसा ही दुःख आपने भी अनुभव किया है। किन्तु आप पुरुष है, आप में सहन-शक्ति अधिक है। मैं स्त्री हूँ, मुझमें इतनी सहन-शीलता और कष्ट-सहिष्णुता नहीं है। मैंने अब तक छ बालकों का मरण-दुःख झेला है, पर अब कोई ऐसा उपाय कीजिए, जिससे इस बार का बालक जीवित बचा रहे।

पुत्र के लिए दुःख होना स्वाभाविक है। मनुष्य की तो बात ही क्या, उन पक्षियों को भी संतान के वियोग की वेदना

असह्य हो जाती है, जिनमे सतान का नाता अत्यन्त अल्पकालीन होता है। यहाँ एक मैना का बच्चा आया करता था। एक दिन वह उडकर ऊपर बैठा। उसके माँ बाप भी वहाँ मौजूद थे। इतने मे ही एक चील ने झपट्टा मारा और बच्चे को उड़ा ले गई। उस समय उस बच्चे के माता-पिता को इतना दु ख हुआ और वे ऐसे चिल्लाये कि कुछ कहा नहीं जा सकता।

देवकी के कथन के उत्तर मे वसुदेव ने कहा—तुम्हारी बात है तो ठीक, पर अब क्या सत्य का परित्याग करना पड़ेगा? जिस सत्य धर्म का पालन करने के लिए छह बालक त्याग दिये, अब क्या उसी सत्य को त्यागना उचित होगा?

देवकी ने कहा—छह बालक हम लोगो ने सत्य भगवान् की सेवा मे समर्पित किये है। तब सत्य से विमुख होने की प्रेरणा मै नहीं करती। ऐसा कोई यत्न करने के लिए कह रही हूँ जिससे धर्म की भी रक्षा हो और पुत्र की भी रक्षा हो। पुत्र की रक्षा की चिन्ता भी इसी कारण है कि वह महापुरुष होगा, और महापुरुष की रक्षा करना संसार की रक्षा करना है। पुत्र-प्रेम से प्रेरित होकर नहीं, वरन् ससार के कल्याण की कामना से हमे इस पुत्र की रक्षा करनी चाहिए। संसार मे उत्सर्ग और अपवाद–यह दो विधियाँ है। ऐसा जान पड़ता है कि यह गर्भस्थ महापुरुष संसार के अपवाद सुनकर भी जगत का कल्याण करेगा। इसलिए इसकी रक्षा करने के लिए हमे भी अपवाद-मार्ग का अवलंबन करना पड़े तो अनुचित नहीं है।

तुम्हारी बात मेरी समझ मे आ रही है। पर यह अत्यन्त कठोर साधना है। महापुरुष की रक्षा करते समय अगर

हमारे हृदय में लेशमात्र भी पुत्र मोह उत्पन्न हो गया, तो हम अपनी साधना से भ्रष्ट हो जाएँगे। यह निष्काम कर्म कठिनतम व्यवहार है। बड़े-बड़े योगी भी इसमें अकृतकार्य हो जाते हैं। हमें अपना हृदय विश्व-हित की कामना से लबालब भर लेना होगा, जिससे व्यक्तिगत हित या सुख की अभिलाषा को उसमें तिलभर भी स्थान न मिल सके। हमें आत्मोत्सर्ग की पराकाष्ठा पर पहुँचना चाहिए। ऐसा किये बिना हम सत्य की सेवा से विमुख हो जाएँगे। पर यह तो समझ में नहीं आ रहा है कि क्या यत्न किया जाय ?

देवकी ने कहा—गर्भस्थ महापुरुष का महत्व मैंने मुनि महाराज से जान लिया है। यह महापुरुष जगत् में सुख एवं शान्ति की सृष्टि करेगा। इसकी रक्षा करने के उद्देश्य से मैंने गोकुल में रहने वाले राजा नन्द की रानी यशोदा को अपनी सखी बनाया है। वह मेरी ऐसी सखी है कि मेरी खातिर वह अपनी सन्तान का त्याग कर सकती है। वह पूर्ण विश्वास पात्र है। साथ ही मुझे यह भी विश्वस्त-सूत्र से ज्ञात हो गया है कि जिस दिन मेरे गर्भ से बालक का जन्म होगा उसी दिन वह भी सन्तान प्रसव करेगी। अतएव इस महापुरुष को यशोदा के यहाँ ले जाना चाहिए और यशोदा की सन्तान यहाँ ले आना चाहिए।

वसुदेव ने कहा—उपाय तो अच्छा है, पर देखना तो यह है कि हम इस समय किस हालत में हैं! हथकड़ी-बेड़ी पड़ी हुई हैं। द्वार जड़ा है, पहरा लग रहा है। ऐसी दशा में कैसे बाहर निकलना होगा ?

देवकी—यह सब तो आँखो दिखाई दे रहा है। इतना होते हुए भी अगर हमारी भावना मे सत्य है और इस महापुरुष की रक्षा होनी है, तो यह सब कठिनाइयाँ दूर हो जाएँगी। आप बाहर निकल भी सकेंगे और मार्ग भी मिल जायगा। बस, आप तो तैयार हो जाइए।

कई लोग प्रश्न करते हैं कि पुरुषार्थ बड़ा है या दैव बड़ा है? इस प्रश्न का उत्तर कृष्ण के चरित्र से यह फलित होता है कि दोनों ही समान है और सिद्धि-लाभ के लिए दोनो की समान आवश्यकता है। जैसे दोनो चक्रो मे रथ चलता है उसी प्रकार दोनो के सद्भाव से कार्य सिद्ध होता है। किन्तु इन दोनो में से उद्योग करना मनुष्य के हाथ मे है। अतएव मनुष्य को सतत उद्योगशील रहना चाहिए। भाग्य अनुकूल होगा तो सफलता अवश्य मिलेगी। हाँ, भाग्य की अनुकूलता की प्रतीक्षा करते हुए निठल्ले बैठे रहना उचित नही है। कौन कह सकता है कि किसका भाग्य किस समय अनुकूल होगा? आज के लोग अपने काम के लिए तो भाग्य के भरोसे नही बैठे रहते—उद्योगशील रहते हैं, लेकिन धर्म के काम मे भाग्य का भरोसा ताकने लगते हैं। इसी कारण हानि उठानी पड़ती है।

वसुदेव ने देवकी का कथन स्वीकार किया। जैसे पूर्व दिशा सूर्य को जन्म देती है, उसी प्रकार भाद्रपद कृष्णा अष्टमी की रात को, अर्द्ध-रात्रि के समय, देवकी ने सुन्दर, स्वस्थ और सर्वांग-सम्पन्न बालक को जन्म दिया। बालक का जन्म होते ही देवकी और वसुदेव की हथकड़ियाँ और बेडियाँ तड़ाक से टूट कर गिर पडी। देवकी ने वसुदेव से कहा—नाथ, आइए। अब यह महापुरुष आपके उद्योग की परीक्षा करता है।

वसुदेव सोचने लगे—महापुरुष के प्रताप से हथकड़ी-बेड़ी टूट गई है, मगर द्वार पर अब भी पहरा मौजूद है। पहरेदारों के सामने बाहर कैसे निकल सकेंगे?

वसुदेव सत्य के लिए इस प्रकार के कष्ट उठा रहे थे, लेकिन आज के लोगों को सत्य बोलने या सत्य पालने में किस प्रकार की रुकावट है? फिर क्यों नहीं उनके जीवन में सत्य की आभा चमकती? सत्य की आराधना करने के कारण अगर आपके पैरों में बेड़ी भी पड़ जायगी, तो वह उसी प्रकार टूट जायगी जैसे वसुदेव की टूट गई थी। कहावत है—मुर्दे के साथ श्मशान तक जाया जाता है, उसके साथ जला नहीं जाता। इसी प्रकार हम लोग भी उपदेश दे सकते हैं, इससे अधिक क्या कर सकते हैं? आपके साथ-साथ घूमने से रहे।

वसुदेव देवकी से कहने लगे—द्वार पर पहरा लग रहा है। निकलने का क्या उपाय है?' देवकी ने कहा—'उद्योग करना आपका काम है, फिर सफलता मिले या न मिले। प्रयत्न कर देखिए।'

वसुदेव जाने को तैयार हुए। वे प्रथानुसार सूप में और जैन-कथा के अनुसार अपने हाथ में बालक कृष्ण को लेकर रवाना हुए। द्वार पर पहुँचे तो देखते क्या है कि द्वार खुला पड़ा है, और पहरेदार पड़े-पड़े खुर्राटे ले रहे हैं। वसुदेव ने यह भी महापुरुष का प्रताप समझा। दरवाजे से बाहर निकल कर आगे बढ़े। उस समय मूसलाधार पानी बरस रहा था। बादल गड़गड़ा रहे थे, मानो कृष्ण-जन्म के उपलक्ष्य में इन्द्र का नगाड़ा बज रहा था। बिजली चमक रही थी, मानो महापुरुष का जन्मोत्सव

मनाने के लिए प्रकृति चपलतापूर्वक नृत्य कर रही थी। झींगुर और मेढक खुशी-खुशी बोल रहे थे, जैसे कृष्ण-जन्म की खुशी मे संगीत गा रहे हो। ग्रथो मे लिखा है—उस समय शेषनाग ने कृष्ण पर छाया की थी और एक देव, वसुदेव के आगे-आगे प्रकाश करता जाता था।

वसुदेव चलते-चलते नगर के द्वार पर आये। देवकी के पुत्र-प्रसव का समय सन्निकट आया जानकर कस ने नगर-द्वारो पर भारी-भारी ताले डलवा दिये थे। वसुदेव ने नगर के बंद द्वार देखे, पर वे एक क्षण भर के लिये भी रुके नही। उन्होने सोचा—जहाॅ तक जाना सभव है, वहाॅ तक तो मुझे जाना ही चाहिए।

दीधा छे दरवाजा, ये आरत मोटी राजा।
हरि अँगूठो अड़िया, ताला तो सब झड़िया ॥

वसुदेव जाकर नगर के द्वार से टकराये। जैसे वे द्वार से टकराये और कृष्ण का अंगूठा अड़ा, वैसे ही ताले राख के ढेर की तरह नीचे गिर पड़े। फाटक खुल गये। उस समय और तो सब लोग सो रहे थे, द्वार के ऊपर बने हुए पीजरे मे केवल उग्रसेन जाग रहे थे। ऐसे समय पर शत्रु को नीद आना और मित्रो का जागना स्वाभाविक है। उग्रसेन ने फाटक खुलने की आवाज सुनी।

उग्रसेन कहे कोई, तुम बंधन काटे सोई।
ये वचन सुने सुखदायी, कहे वेग सिधावो भाई ॥

उस समय उग्रसेन ने पूछा—कौन ? वसुदेव ने कहा—वही जो तुम्हें बंधन से छुड़ायेगा। यह उत्तर सुनकर उग्रसेन अति प्रसन्न हुए और कहा—अच्छा भाई, जल्दी पधारो।

वसुदेव आगे चले। उस घोर अंधकारमयी काली निशा में, आधी रात्रि के समय, वर्षा और बिजली की विपदा के होते हुए, कौन घर से निकल सकता था? लेकिन वसुदेव कृष्ण को लिये हुए जा रहे थे। जब और आगे बढ़े, तो यमुना सामने आई। वर्षा के कारण उसमें पूर आ रहा था। वसुदेव ने निश्चय किया—भले ही आज मुझे यमुना में बह जाना पड़े, परन्तु जहाँ तक संभव है मैं अवश्य जाऊँगा। इस प्रकार दृढ़ संकल्प करके वे यमुना में उतर पड़े। ग्रंथों में लिखा है कि यमुना पहले तो पूर थी, पर कृष्ण के पैर का अँगूठा लगते ही यमुना ने मार्ग कर दिया, अर्थात वह छिछली हो गई।

इतनी सब विघ्न-बाधाओं को पार कर वसुदेव नन्द के घर पहुँचे। उसी समय यशोदा के गर्भ से पुत्री उत्पन्न हुई थी। वसुदेव ने पुत्री की जगह कृष्ण को रख दिया और पुत्री को लेकर लौट पड़े। उनके लौट आने पर द्वार आदि फिर पहले की ही तरह बन्द हो गये। उनके हाथ-पैरों में पूर्ववत् हथकड़ी-बेड़ी भी पड़ गई। यह कैसा दैविक चमत्कार था, सो कहा नहीं जा सकता।

उधर 'जय कन्हैयालाल की' होने लगी और इधर पहरेदार जागकर लड़की को लेकर कंस के पास गये। कंस लड़की उनसे लेकर कहने लगा—'देखो, यह बाबा-जोगी और ज्योतिषी लोग कैसे झूठे होते हैं। और तो और, नारद भी अब झूठ

बोलने लगे है। लड़के के बदले यह लड़की उत्पन्न हुई है!' कंस जब अभिमान-भरी यह बातें कह रहा था, तभी वह सद्यःप्रसूता बालिका बोली—'मुझे लड़की कह कर तू क्षणिक सान्त्वना भले ही प्राप्त करले और ऋषियो-मुनियो को झूठा बता दे, पर तेरा संहार करने वाला अवतीर्ण हो ही चुका है।'

एक ओर वसुदेव ने उद्योग किया था और दूसरी ओर कंस ने। किन्तु वसुदेव का उद्योग प्रशस्त था, वह न्याय और धर्म की प्रतिष्ठा के लिए था, जबकि कंस नीति-धर्म का ध्वंस करने की चेष्टा कर रहा था। वसुदेव का हेतु शुभ था, अतएव उन्हे देवों की सहायता प्राप्त हो सकी थी। अगर आप भी इसी प्रकार शुभ हेतु से प्रशस्त प्रयास करेंगे तो आपको ज्ञात हो जायगा कि दैविक सहायता कहाँ से और कैसे मिलती है! कदाचित् कोई कह सकता है कि परमार्थ के लिए हमने अमुक उद्योग किया था, पर वह असफल रहा। उन्हे अपने हृदय की बारीकी से परीक्षा करनी चाहिए। उन्हे मालूम करना चाहिए कि बाह्य और आभ्यन्तर दोनो एक रूप थे, या बाहर परमार्थ था और भीतर स्वार्थ था? स्वार्थ से मलीन हृदय लेकर दिव्य सहायता की कामना करना ऐसी ही बात है, जैसा कि कहा है—

चाहत मुनि मन अगम सुकृत फल मनसा अघ न अघाती

इसके अनुसार बुरी भावना रख कर भी अच्छे फल की आशा रखना दुराशा मात्र है।

कृष्ण धीरे-धीरे नन्द के घर बड़े होने लगे। पालने मे पोढ़े ए भी उन्होने अनेक महत्वपूर्ण और असाधारण काम किये। नन्द के यहाँ रहते हुए उन्होने जो कुछ किया उसमें एक महत्व-

पूर्ण बात यह भी थी कि कुछ बड़े होते ही वे कम्बल और लकड़ी लेकर गायें चराने के लिए जाया करते थे। जन्माष्टमी मनाने के लिए आज आप बढ़िया-बढ़िया वस्त्र पहनते हैं, पर जिसकी जन्माष्टमी मनाते हैं वह कैसा सादा था, यह भूल कर भी नहीं सोचते। भक्त उनके उसी रूप पर मुग्ध हैं और कहते हैं—

मोर मुकुट कटि काछनी, उर गुंजन की माल।
सो बालक मम उर बसो, सदा बिहारीलाल॥

इससे स्पष्ट है कि कृष्ण ने मोरपंखों का मुकुट पहना था, चिरमी (घुंगची) की माला पहनी थी और कमर में लंगोटी लगा रक्खी थी। कृष्ण इस सीधे-सादे भेष में रहते थे। कवि कृष्ण के इसी भेष को अपने हृदय में बसने की भावना व्यक्त करता है।

कृष्ण में इस तरह की सादगी थी, परन्तु आजकल तो सादगी घृणा की वस्तु बन गई है। जिनका उत्पन्न किया हुआ अन्न खाकर लोग जीवन-निर्वाह करते हैं, उन किसानों को इस सादगी के कारण भोजन में पास तक नहीं बैठने दिया जाता। गाय को मुसीबत माना जा रहा है। मोटरें रखने का स्थान है, पर गाय बाँधने को स्थान नहीं मिलता! तब पीने के समय क्या पीते हो? गाय का दूध या मोटर का धुआं? प्राचीन ग्रन्थों में गाय की महत्ता का खूब बखान किया गया है। गाय "गो" कहलाती है। "गो" पृथ्वी का भी नाम है और गाय का भी नाम है। इसका तात्पर्य यह है कि जैसे पृथ्वी हमारा आधार है, उसी प्रकार गाय भी हमारे जीवन का आधार है। इसीलिए कृष्ण ने गो-रक्षा की थी। कृष्ण ने अपने व्यवहार के द्वारा गाय

बोलने लगे है। लड़के के बदले यह लड़की उत्पन्न हुई है।' कंस जब अभिमान-भरी यह बाते कह रहा था, तभी वह सद्यःप्रसूता बालिका बोली—'मुझे लड़की कह कर तू क्षणिक सान्त्वना भले ही प्राप्त करले और ऋषियो-मुनियो को झूठा बता दे, पर तेरा संहार करने वाला अवतीर्ण हो ही चुका है।'

एक ओर वसुदेव ने उद्योग किया था और दूसरी ओर कंस ने। किन्तु वसुदेव का उद्योग प्रशस्त था, वह न्याय और धर्म की प्रतिष्ठा के लिए था, जबकि कंस नीति-धर्म का ध्वंस करने की चेष्टा कर रहा था। वसुदेव का हेतु शुभ था, अतएव उन्हे देवो की सहायता प्राप्त हो सकी थी। अगर आप भी इसी प्रकार शुभ हेतु से प्रशस्त प्रयास करेगे तो आपको ज्ञात हो जायगा कि दैविक सहायता कहाँ से और कैसे मिलती है! कदाचित् कोई कह सकता है कि परमार्थ के लिए हमने अमुक उद्योग किया था, पर वह असफल रहा। उन्हे अपने हृदय की बारीकी से परीक्षा करनी चाहिए। उन्हें मालूम करना चाहिए कि बाह्य और आभ्यन्तर दोनो एक रूप थे, या बाहर परमार्थ था और भीतर स्वार्थ था? स्वार्थ से मलीन हृदय लेकर दिव्य सहायता की कामना करना ऐसी ही बात है, जैसा कि कहा है—

चाहत मुनि मन अगम सुकृत फल मनसा अघ न अघाती

इसके अनुसार बुरी भावना रख कर भी अच्छे फल की आशा रखना दुराशा मात्र है।

कृष्ण धीरे-धीरे नन्द के घर बड़े होने लगे। पालने मे पोढ़े हुए भी उन्होने अनेक महत्वपूर्ण और असाधारण काम किये। नन्द के यहाँ रहते हुए उन्होने जो कुछ किया उसमे एक महत्व-

पूर्ण बात यह भी थी कि कुछ बड़े होते ही वे कम्बल और लकड़ी लेकर गायें चराने के लिए जाया करते थे। जन्माष्टमी मनाने के लिए आज आप बढ़िया-बढ़िया वस्त्र पहनते हैं, पर जिसकी जन्माष्टमी मनाते हैं वह कैसा सादा था, यह भूल कर भी नहीं सोचते। भक्त उसके उसी रूप पर मुग्ध है और कहते हैं—

मोर मुकुट कटि काछनी, उर गुंजन की माल।

सो बानक मम उर बसो, सदा बिहारीलाल॥

इससे स्पष्ट है कि कृष्ण ने मोरपंखों का मुकुट पहना था, चिरमी (घुंगची) की माला पहनी थी और कमर मे लंगोटी लगा रक्खी थी। कृष्ण इस सीधे-सादे भेष में रहते थे। कवि कृष्ण के इसी भेष को अपने हृदय में बसने की भावना व्यक्त करता है।

कृष्ण मे इस तरह की सादगी थी, परन्तु आजकल तो सादगी घृणा की वस्तु बन गई है। जिनका उत्पन्न किया हुआ अन्न खाकर लोग जीवन-निर्वाह करते हैं, उन किसानो को इस 'सादगी के कारण भोजन मे पास तक नहीं बैठने दिया जाता। गाय को मुसीबत माना जा रहा है। मोटरें रखने का स्थान है, पर गाय बाँधने को स्थान नहीं मिलता। तब पीने के समय क्या पीते हो? गाय का दूध या मोटर का धुंआ? प्राचीन ग्रन्थो में गाय की महत्ता का खूब बखान किया गया है। गाय "गो" कहलाती है। "गो" पृथ्वी का भी नाम है और गाय का भी नाम है। इसका तात्पर्य यह है कि जैसे पृथ्वी हमारा आधार है, उसी प्रकार गाय भी हमारे जीवन का आधार है। इसीलिए कृष्ण ने गो-रक्षा की थी। कृष्ण ने अपने व्यवहार के द्वारा गाय

का जैसा महत्त्व प्रदर्शित किया है, वैसा विश्व के इतिहास मे किसी ने प्रदर्शित नहीं किया। आज गाय का आदर नहीं हो रहा है पर प्राचीन काल के राजा और सेठ अपने-अपने घर में गायों के झुंड के झुंड रखते थे। उस समय शायद ही कोई ऐसा घर रहा होगा जहाँ गाय न पाली जाती हो। उसी युग मे गाय 'गौमाता' कहलाती थी और 'जय गोपाल' की ध्वनि सर्वत्र सुनाई देती थी–अर्थात् गाय पालने वाले की जय बोली जाती थी। मगर आज परम्परा का पालन करने के लिए गाय को कोई माता भले ही कह दे, पर उसका पालना विपत्ति से कम नही समझा जाता। लोग गोवंश के ह्रास का कलंक मुसलमानो के मत्थे मँढ़ते हैं पर मेरी समझ मे हिन्दू लोग अगर गाय को माँ समझ कर घर मे आदर के साथ स्थान देते तो गोवंश का ह्रास न होता और न कोई उसे मार ही सकता। हिन्दुओं ने गाय की रक्षा नहीं की, इसी से गोवंश नष्ट होता जाता है। यही नहीं, मैं तो यहाँ तक कहूँगा कि हिन्दू लोग भी किसी न किसी रूप मे गोवंश के विनाश मे सहायक हो रहे है। उदाहरण के लिये वस्त्रो को लीजिए। गाय की चर्बी वाले वस्त्र बड़े शौक से पहने जाते है। क्या गायों की हत्या किये बिना चर्बी निकाली जाती है ? चर्बी के लिये बड़ी क्रूरता से गायो को कत्ल किया जाता है और उन चर्बी वाले वस्त्रों को पहन कर लोग कहते है—हम गो-भक्त है—गाय हमारी माता है ! धन्य है ऐसे मातृ-भक्त सपूतों को !

पर यह न समझ बैठना कि इससे गायों की ही हानि हुई है। इस पद्धति से जहाँ गोवंश को हानि पहुँची है वहाँ मानव-वंश को भी काफी हानि उठानी पड़ी है, और पड़ रही है। दूध

मर्त्यलोक का अमृत कहलाता है। उसकी आजकल बेहद कमी हो गई है। परिणाम यह है कि लोगो मे निर्बलता और निर्बलता-जन्य हजारो रोग आ घुसे हैं। इसके अतिरिक्त तामसिक भोजन पेट मे जाता है, जिससे सतोगुण का नाश होता जा रहा है।

कृष्ण के चरित्र से गोरक्षा विषयक बहुमूल्य और उपयोगी शिक्षाएँ मिलती हैं। गायें चराने के बहाने जंगल मे रहने से वहाँ जो शिक्षा प्रकृति से मिलती है, वह आजकल के बड़े-बड़े कॉलेजो और विश्वविद्यालयो मे भी नहीं मिलती।

कृष्ण अपनी मुरली की ध्वनि द्वारा जगत् मे नवीन स्फूर्ति, नवीन चेतना फूँकते रहते थे। उनकी मुरली की ध्वनि अलौकिक संगीत की सृष्टि करती थी। वह ध्वनि कानो को अमृत-सी मधुर लगती थी और उसे सुनकर लोग मुग्ध हो जाते थे।

कई लोग कृष्ण के चरित्र पर यह अपवाद लगाते हैं कि उन्होंने गोपियो के साथ मर्यादा-विरुद्ध दुराचार किया था। वास्तव में यदि कृष्ण ने ऐसा किया होता तो उनका जीवन पतित हो जाता, उसमें पवित्रता नहीं रह जाती। साथ ही ऐसे व्यक्ति का स्मरण करना भी त्याज्य हो जाता है। इस अवस्था में वह महापुरुष नहीं रह जाते। भक्तिसूत्र मे लिखा है—

सा न कामयमाना निरोधरूपत्वात्, निरोधस्तु लोकवेद-व्यापारन्यास ।

इसका मतलब यह है कि विषय-वासना होने पर भक्ति नही रह सकती। परमात्मा की भक्ति और विषय-वासना एक साथ कैसे निभ सकती है ? ऐसी अवस्था मे कृष्ण के सबंध मे

यह किस प्रकार कहा जा सकता है कि उन्होने गोपियो के साथ कोई नीच कृत्य किया था? जिन लोगो के मस्तिष्क मे मलीन भावना भरी हुई है, वे सर्वत्र ही मलीनता की कल्पना कर डालते हैं। उन्हे पवित्र भावना से किये जाने वाले कार्य मे भी अपवित्रता की गंध आती है। कृष्ण मर्यादा-पुरुषोत्तम थे। किन्तु विषय-वासना से दूषित व्यक्तियो ने अपनी अपावन भावना के अनुसार कृष्ण की कल्पना कर डाली है। इस कल्पना मे अपना मार्ग प्रशस्त बना लेने की भावना भरी हुई है। इधर कुछ शृङ्गार-रस के प्रेमी कवियो ने भी काव्य की मर्यादा का उल्लंघन करके कृष्ण का चित्रण किया है और इससे कृष्ण के चरित्र पर आक्षेप करने का अवसर मिल गया है।

नन्द के घर पलते हुए कृष्ण तरुणावस्था मे प्रविष्ट हुए। अब उन्होने सोचा—सादगी और गोपालन का आदर्श मैने मानव समाज के सामने उपस्थित कर दिया है। अब ससार मे बढ़े हुए पाप का विनाश करना चाहिए। ऐसा सोचकर, कंस का आमन्त्रण पाकर या कोई अवसर हाथ लगने पर वे कंस के यहाँ गये। कंस के पास जाने के लिए लोगों ने उन्हे हटका और कंस द्वारा मारे जाने का भय बताया, पर कृष्ण असाधारण सत्यशाली पुरुष थे। वे कब भय खाने वाले थे! वे निडर होकर कंस के यहाँ गये। कंस ने उन्हे मार डालने के अनेक प्रयत्न किये, पर उसके सब प्रयत्न निष्फल हुए। हाथी और मल्ल आदि को मार कर कृष्ण, कंस के पास पहुँचे। कृष्ण को सामने देख कंस प्रसन्न हुआ। उसने सोचा—मेरा शत्रु सामने आ पहुँचा है, अतएव इसे अभी-अभी समाप्त कर देता हूँ। वह तलवार हाथ मे लेकर कृष्ण को मारने दौड़ा। पर कृष्ण ने कंस की

चोटी पकड़ी और उसे घुमा दिया। सिर पर बंशी का प्रहार कर उसकी जीवन-लीला का अन्त कर दिया।

उस समय कृष्ण भिन्न-भिन्न लोगो को भिन्न-भिन्न रूपो मे दिखाई दिये। कृष्ण ने कंस को मार डालने के पश्चात् वसुदेव और उग्रसेन आदि को कारागार से मुक्त किया। भला राज-मुकुट किसे अप्रिय लगता है? सभी राजमुकुट से अपने सिर की शोभा बढ़ाना चाहते हैं। मगर कृष्ण ने सोचा—'मेरा विरोध किसी व्यक्ति से नहीं है—पाप से है। अगर कोई पापी पुरुष अपने पुराने पापो के लिए पश्चात्ताप करता है और भविष्य मे पापाचरण न करने के लिए प्रतिज्ञाबद्ध होता है तो उसे मैं क्षमा कर सकता हूँ। कंस ने ऐसा नहीं किया, अतएव उसका प्राणान्त करना पड़ा। उसके प्राणान्त से राजसिंहासन सूना हो गया है। न्याय के अनुसार राज्य उग्रसेन का है और उन्हीं को यह मिलना चाहिए।' ऐसा विचार कर कृष्ण ने राज्य पर स्वय अधिकार न करके उग्रसेन के सिर पर राजमुकुट स्थापित कर दिया। यह थी कृष्ण की महानुभावता!

कस की रानी जीवयशा रोती-पीटती अपने बाप जरासध के पास गई। जरासध में यदि विवेक की तनिक भी मात्रा होती, तो वह कंस के सहज ही मारे जाने से समझ लेता कि कृष्ण से लड़ाई मोल लेना हंसी-ठट्ठा नहीं है। मगर उसे ऐसे सलाहकार मिले कि उन्होने उसे शान्त करने के बदले और अधिक भड़-काया। उसका जो परिणाम हो सकता था, वही हुआ—जरा-संध भी मारा गया। कृष्ण के आगे कालिय नाग भी नम्र हो गया। दुर्योधन भी मारा गया। इस प्रकार तत्कालीन सब बड़े-बड़े अपराधी-जिन्होने अपना अपराध नहीं त्यागा था, नष्ट हो गए।

इस सम्बन्ध मे हमे एक महत्त्वपूर्ण बात ध्यान में रखनी चाहिए। कृष्ण कहते है कि न किसी से मै वैर रखता हूँ और न किसी को अपना शत्रु समझता हूँ। कृष्ण के चरित्र पर अर्जुन के सारथी बनने ने कारण अनेक अपराध लगाये जाते है। परन्तु महाभारत के अनुसार अश्वत्थामा के ब्रह्मास्त्र से जब उत्तरा के गर्भ का घात हो गया, तब कृष्ण ने कहा था—मृत्यु असत्य पर आती है। सत्य के सामने मृत्यु थर्राती है। अतएव किसी सत्य-परायण सत्पुरुष के कहने से यह गर्भ जीवित हो सकता है। लोग कहने लगे—कौन है ऐसा सत्पुरुष? किसके द्वारा मृतक गर्भ पुनर्जीवित हो सकता है? कृष्ण ने कहा—'आप सब सज्जन अपना-अपना सत्य आजमाइए और उसकी शक्ति प्रदर्शित कीजिए। अगर आप सफल न हो सकेंगे, तो अन्त मे मै अपनी सत्य-शक्ति उपस्थित करूँगा।' कृष्ण की इस बात से लोग मन ही मन मुस्कराने लगे—कृष्ण और सत्य-परायण! कृष्ण ने समझ लिया कि यह लोग मुझ पर अविश्वास कर रहे है। उन्होंने कहा—मैंने अपनी जिंदगी मे सत्य की आराधना की है। मेरे सभी कार्य सत्य के लिए है। अगर आप मुझे सत्य-निष्ठ न मानते हुए अपने को ही सत्याचारी समझते हैं, तो आप कहिए—'अगर मुझ मे सत्य है, तो यह बालक जीवित हो जावे।'

कृष्ण की यह चुनौती सुन कर सब लोग कुंठित हो गये। कौन ऐसा था जो अपने को सत्यवादी समझता था और अपने भीतर इस प्रकार की दिव्य-शक्ति के अस्तित्व पर भरोसा करता था? सब को चुप्पी साधे देख कृष्ण ने कहा—अच्छा, आप इस बालक को जीवित नहीं कर सकते तो मैं जीवित करता हूँ। यह कह कर वे तैयार हो गये। भक्त लोग तो कृष्ण का यह

कथन सुन कर प्रसन्न हुए, लेकिन विरोधियों ने कहा—अच्छा, देखे आप इस अभिमन्यु के बालक को कैसे जीवित कर सकते हैं ? कृष्ण ने कहा—

अब्रवीच्च विशुद्धात्मा सर्वं विश्रावयत् जगत् ।
नोक्तपूर्वं मया मिथ्या स्वैरेष्वपि कदाचन ॥

कृष्ण कहने लगे—'अगर हँसी-मजाक मे भी मैंने कभी असत्य का प्रयोग न किया हो, अगर मैं सदा सत्य मे निष्ठ रहा होऊँ, मैने क्षात्रधर्म का पालन किया हो, पराजित के प्रति किसी प्रकार का द्वेष न रक्खा हो, अपना जीवन धर्म के लिए उत्सर्ग कर दिया हो, सदा धर्म का ही आचरण किया हो, किसी भी समय क्षण भर के लिए भी धर्म न त्यागा हो और धर्मोपासकों पर मेरी निश्चल निष्ठा रही हो, तो उत्तरा का यह मृत बालक पुनर्जीवित हो जाय ।'

कृष्ण के मुख से इन शब्दों के निकलते ही बालक जीवित हो गया । यह कौतुक देखते ही सज्जन जयजयकार करने लगे और दुर्जनो के चेहरे मुरझा गये ।

कृष्ण के जीवन में अगर असत्य और अधर्म को प्रश्रय मिला होता, तो उनकी वाणी में यह लोकोत्तर सामर्थ्य कहाँ से आता ? कोई पापी किसी मृतक बालक को जीवित नहीं कर सकता । अतएव कृष्ण के उज्ज्वल चरित्र में कलंक की कालिमा देखने वाले लोगों को अपनी दृष्टि निर्मल बनानी चाहिए । उन्हे अपने हृदय की मलीनता की परछाई कृष्ण जैसे महापुरुष के जीवन में नहीं देखनी चाहिए । संतों का समागम करके कृष्ण-

जीवन का मर्म समझना चाहिए। किसी पुराण मे तो यहाँ तक लिखा है कि एक बार रास-क्रीड़ा करते समय गोपियों के मन मे दुर्भावना उत्पन्न हुई। कृष्ण को जैसे ही यह मालूम हुआ, वे अन्तर्धान हो गये। क्या यह किसी दुराचारी का काम हो सकता है ?

द्वारिका में प्रजा की सुख-सुविधा और शान्ति के लिए मदिरापान न करने, द्यूत न रमने और व्यभिचार न करने के लिए खास तौर पर व्यवस्था की गई थी। यद्यपि इन तीन बातों पर पूरा लक्ष्य दिया जाता था, पर स्वयं यादव लोग ही इनका आचरण करने लगे। तब कृष्ण ने वसुदेव से कहा—अब अपने घर के सर्वनाश का समय आगया है। अब घर मे ही फूट पड़ गई है और यादव तीनों निषिद्ध वस्तुओ का सेवन करने लगे हैं। जैन-शास्त्र कहते है कि इन तीन बातो के कारण द्वारिका नगरी भस्म होगई। लेकिन ग्रंथ कहते हैं कि सब यादव-कुमार प्रभास-पाटन गये थे। वहाँ उन्होने मदिरा-पान किया। मदिरा के मद मे मत्त होकर दो कुमार आपस मे लड़ने लगे। शेष कुमार भी दोनो मे शामिल हो गये और इस प्रकार उनके दो दल बन गये। आपस मे लड़ाई छिड़ी। जो जिसके हाथ आया, उसीसे वह लड़ने लगा। यह लड़ाई देखकर कृष्ण हँसने लगे। अपने परिवार को आपस में लड़कर नष्ट होते देख, कृष्ण की हँसी का आशय न समझ कर किसी ने उनसे कारण पूछा। कृष्ण ने कहा—अब इन्हे पृथ्वी पर रहने का अधिकार नहीं है। इन्हे नष्ट होना ही चाहिए।

कृष्ण का यह व्यवहार स्पष्ट रूप से प्रमाणित करता है कि न उन्हें पाण्डवों से प्रेम था, न कौरवो से द्वेष था। उन्हें

एक मात्र सत्य से प्रेम था, न्याय से अनुराग था और धर्म के प्रति उनकी श्रद्धा थी। पापों को समूल निर्मूल करना उनके जीवन का ध्रुव ध्येय था।

यादव आपस मे लड मरे। महाभारत के अनुसार वे मूसल से लड़े थे, जिससे मूसल-पर्व का निर्माण हुआ। कृष्ण घर लौटे। यादव कुमारों का अन्त जानकर वसुदेव और देवकी ने खूब विलाप किया। लेकिन कृष्ण घर पर नहीं रुके। वे घर से चल दिये। अन्त मे कौशाम्बी-वन में जराकुमार के बाण से उनकी मृत्यु हुई। जैसे बाजीगर अपनी बाजी समेटता है, उसी प्रकार कृष्ण ने अपनी लीला समेट ली।

कृष्ण की जयन्ती मनाते समय आप देखें कि जैसे कृष्ण जन्म से पहले जगत् मे पाप फैला हुआ था, उसी प्रकार आपके हृदय में तो पाप नहीं छा रहा है? अगर आप हृदय में पाप का अनुभव करते हैं तो अपने हृदय में कृष्ण को जन्म दीजिए। वास्तव में कंस या शिशुपाल बुरे नहीं थे, काम क्रोध आदि बुरे हैं। अगर अपने अन्तःकरण में आप इन्हें स्थान देंगे, तो आप कृष्ण के विरोधी बन जाएँगे। कृष्ण की भक्ति का सर्वश्रेष्ठ प्रकार अपने हृदय की दुर्भावनाओ पर विजय प्राप्त करना ही है। यही विजय कल्याणकारी है।

मृतक-भोजन

एक ग्रन्थ में मैंने सांख्यशास्त्र के प्रणेता कपिल मुनि की बात पढ़ी थी। उससे आप समझ जाएँगे कि ब्राह्मणो के लिए मृतकभोज ही नहीं किन्तु पराम्न-भोजन भी कितना गर्हित माना गया है।

कपिल मुनि किसी जंगल मे, एक वृक्ष की छाया मे बैठकर संसार के लिए सांख्यशास्त्र लिख रहे थे। वे इस कार्य मे इतने मग्न थे कि उन्हे अपने शरीर का भी भान नहीं था। वास्तव मे एकाग्र भाव से लिखा हुआ ग्रन्थ ही संसार के लिए उपयोगी होता है।

एक बार युधिष्ठिर ने कुछ ब्राह्मणो को भोजन कराना चाहा। उन्होने कपिल मुनि को भी आमंत्रित करने की इच्छा की। कपिल मुनि उस युग के बड़े प्रतिष्ठित और विद्वान् ब्राह्मण थे। अतएव उन्हे आमंत्रित करने के लिए किसी और को न भेजकर युधिष्ठिर ने खुद अर्जुन को ही भेजा।

अर्जुन कपिल मुनि के पास पहुँचे पर ऋषि अपने कार्य में तन्मय थे। अर्जुन ने उनकी तन्मयता को भग करना उचित नहीं समझा। वह हाथ जोड़ कर उनके सामने खड़े रहे। ऋषि को अर्जुन के आने और खड़े रहने की खबर ही नहीं थी। जब वे अपने कार्य से निवृत्त हुए तो सामने अर्जुन को खडा देखकर आश्चर्य करने लगे और बोले-राजपुत्र, यहाँ कैसे ?

अर्जुन—महाराज युधिष्ठिर ने श्रीमान् को सादर प्रणाम कहलाया है और निवेदन किया है कि आज श्रीमान् का भोजन वहीं हो।

ऋषि इन वचनों को सुनकर खिन्न हो गये। उनके नेत्रो से आंसू बहने लगे। अर्जुन ऋषि की यह अवस्था देखकर भय-भीत हुए। उन्होंने सोचा-कदाचित् मुझसे कोई अपराध हो गया है। अन्यथा ऋषि रोये क्यों ?

आखिर अर्जुन ने प्रकट में पूछा-श्रीमन्! आप की उदासी का क्या कारण है ? क्या मुझसे कुछ अपराध हो गया है ? अथवा धर्मराज का कोई अपराध है ? क्या आप उनके अन्न को पापमय मानते हैं ? क्या महाराज युधिष्ठिर को अध-र्मात्मा राजा समझकर उनके निवेदन को स्वीकार नही करना चाहते ? भगवन्! हमारे अपराधों को क्षमा कीजिए और अपनी उदासी का कारण स्पष्ट रूप से समझाइए।

कपिल मुनि—अर्जुन, धर्मराज के अन्तःकरण में ऐसी भावना ही क्यों उत्पन्न हुई ? फिर मुझ जैसे ब्राह्मण को, जो शिलोंछवृत्ति से, स्वतन्त्रता के साथ भोजन प्राप्त करता है, बंधन में डालने की इच्छा राजा को क्यों हुई ? हाय, यह ब्राह्मणों की

भावी अशुभ दशा को बतलाने वाला शकुन है! अब मेरे सांख्यशास्त्र का अध्ययन करके कौन ज्ञान का प्रकाश फैलाएगा? वत्स अर्जुन, मैं इसमे स्वतंत्रजीवी ब्राह्मणों का पतन समझता हूँ।

भाइयो! पराये अन्न को न खाने के लिए कपिल मुनि के यह हार्दिक उद्गार ब्राह्मणो को ध्यान में लेने योग्य हैं। जब वे साधारण परान्न भोजन को, और वह भी युधिष्ठिर जैसे धर्मात्मा के अन्न को, खाने के लिए मना कर रहे हैं, तब मृतक के पीछे का अन्न आपके ब्रह्मतेज के लिए कितना घातक न होगा?
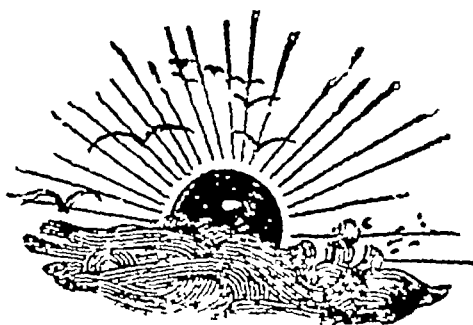
पतिव्रता का प्रभाव

सुभद्रा एक जैन बालिका थी। उसका विवाह किसी अजैन के साथ हुआ था। मात-पिता को पहले मालूम नहीं था कि वर जैन नहीं है। विवाह हो जाने के बाद पता चला। पहले मालूम हो जाता तो शायद उसके साथ सुभद्रा का विवाह न करते। परन्तु सुभद्रा की कसौटी होनी थी। इस कारण वह विवाह हो गया।

कसौटी के बिना धर्मवीर की परीक्षा नहीं होती। धर्मवीर कसौटी से डरते भी नहीं हैं। वे अपनी धर्मवीरता की परीक्षा देने को सदैव प्रस्तुत रहते हैं।

सुभद्रा अपने धर्म पर दृढ़ थी। वह अपनी सुसराल में अर्हन्त भगवान् का नाम लेती तब पति आदि उसे रोकते। सुभद्रा नम्रता से कहती-आप लोग मुझे क्यो रोकते हैं? इस मंत्र ने आपका क्या बिगाड़ा है? आप मुझे डाँट-डपट बतलाते हैं, फटकारते है। सब मैं इसी मंत्र के प्रताप से सहन कर रही हूँ। यह मंत्र मेरा जीवनधन है। आप इसके जाप के लिए मना न

किया करे तो अच्छा है।

परन्तु सुभद्रा के घर वालो ने उसके विनम्र कथन पर कुछ भी ध्यान नहीं दिया। वे हर वक्त कुछ न कुछ खटपट किया ही करते थे। जब जो मन मे आता, वह कह देते थे।

एक दिन सुभद्रा के घर साधुजी गोचरी के लिए आये। उनकी आँख मे फूस पड़ गया था। आँख से पानी भर रहा था। पूर्ण भक्तों को भक्तिके आवेश मे लोक व्यवहार का खयाल नही रहता। सुभद्रा पूर्ण भक्त थी। साधुजी की आँख मे कुछ गिरा जानकर वह उनके पास गई और उसने अपनी जीभ से फूस निकाल डाला फूस निकालते समय सुभद्रा के ललाट की सिन्दूर की टीकी साधु के ललाट पर लग गई थी।

साधुजी या सुभद्रा को इस बात का कोई खयाल नही था। साधुजी गोचरी लेकर रवाना हुए। लोगो ने साधु के ललाट पर टीकी देखी। सब जगह बात फैल गई कि सुभद्रा ने साधु को विचलित कर दिया है। सब कहने लगे-सुभद्रा महादुष्ट, व्यभिचारिणी और धूर्ता है। वह धर्म का केवल ढोंग करती है।

सुभद्रा के सास-ससुर, देवर-जेठ और पति आदि ने भी यह बात सुनी। वे भी सुभद्रा को कलंकिनी समझने लगे।

पर सुभद्रा का अन्त करण स्वच्छ था। उसे अपनी सचाई पर विश्वास था। वह समझती थी कि लोग कुछ भी कहे, सत्य तो सत्य ही रहेगा। असली बात छिपी नही रह सकती। फिर मुझे घबराने की क्या आवश्यकता है?

उसी दिन से सुभद्रा तेला करके पौषध मे बैठ गई। तपस्या मे अजब शक्ति होती है। सच्चे दिल से तपस्या करने वालो को

जल्दी फल मिल जाता है। दो दिन यो ही बीत गये। तीसरे दिन दैवी शक्ति के प्रभाव से नगर के चारो फाटक बंद हो गये। उन्हे खोलने के अनेक-अनेक प्रयत्न किये गये, पर सब व्यर्थ सिद्ध हुए। दैवी शक्ति के द्वारा बद किये हुए किवाड़ मानवीय प्रयत्नो से भला किस प्रकार खुल सकते थे?

आकाशवाणी हुई कि जो स्त्री मन, वचन और तन से पतिव्रता होगी उसके हाथ से किवाड खुलेंगे। आकाशवाणी में यह भी सुना गया कि पहले उसकी परीक्षा कच्चे धागे में, चालनी बाँधकर, उसमें पानी निकालने से होगी। जो इस परीक्षा में उत्तीर्ण होगी, वही सच्ची पतिव्रता समझी जायगी।

यह वाणी सब नगर-निवासियो ने सुनी। राजा ने सब से पहले अपनी रानियो से ही कहा—तुम लोग पर्दे मे रहा करती हो, कहीं आती-जाती भी नहीं हो। तुम्ही खोलकर देखो न?

रानियों ने उत्तर दिया-शरीर से तो हम पतिव्रता ही हैं, परन्तु मन और वचन से कह नही सकती। आप हमे कसौटी पर चढ़कर क्यो फजीहत कराते हैं?

नगर की अन्य बड़ी-बड़ी सेठानियों आदि से भी इसी प्रकार का उत्तर मिला।

अब सुभद्रा से न रहा गया। वह अपना पोषध समाप्त करके सासू के पास आई। बोली—आप आज्ञा दें तो मै जाकर फाटक खोलने का प्रयत्न करूँ।

सास—घर मे बैठी रही तो भी गनीमत है। तेरा पतिव्रता धर्म तो जगजाहिर हो चुका है। सब तेरे गुणों को जानते है। अब कुछ कसर रह गई हो तो वहाँ जाकर पूरी करले!

सुभद्रा—मुझे लोग कलंकिनी तो कहते ही हैं। कलंकिनी को और क्या कलंक लगेगा ? फिर और भी तो बहुत सी स्त्रियाँ जा चुकी है। उनमे एक मै सही। लेकिन सासूजी, विश्वास रखिए, आपका उपहास न होगा। लोग चाहते है सो कहते है। उनकी जीभ पकडने कौन जाय ? मगर मे विश्वास दिलाती हूँ कि आपका नाम बदनाम नहीं होगा।

सास—रहने भी दे अपनी शेखी ! नगर में इज्जत के साथ रहने भी देगी या इज्जत पर पोत फेर कर ही मानेगी ? तू कलंकिनी मेरे घर मे न जाने कहाँ से आई है ! नगर भर मे अपवाद फैला दिया !

सुभद्रा ने बहुत-बहुत अनुरोध किया, अनेक निहोरे किये, पर सास ने एक न मानी। उसने अनेक वचन-बाण छोड़े। फिर भी सुभद्रा का विश्वास अटल था। जब सास न मानी तो उसने घर के द्वार पर आकर कहा—मै नगर के फाटक खोलने जाना चाहती हूँ, पर मेरी सासू मुझे आज्ञा नही देती। अगर आप लोग किसी प्रकार आज्ञा दिलादे तो अच्छा हो।

लोग हँसने लगे। फिर सुभद्रा के बहुत विश्वास दिलाने पर लोगो ने आग्रह करके आज्ञा दिलवा दी।

सुभद्रा कुए पर गई। हजारो आदमी इकट्ठे हो गये। उसने कच्चे धागे से चालनी बाँधी और सर—सर कुए मे छोड़ दी। लोगों के आश्चर्य का पार नही रहा। राजा भी वहाँ मौजूद था। लोग आपस मे ही कहते—देखो, कच्चा धागा टूट भी नही रहा है ! उत्तर आता-टूटे कैसे ? इसका दिल टूटा हो तो धागा टूटे ! लोगो ने सुभद्रा के विषय मे मिथ्या अपवाद फैला रक्खा

है। अगर यह सच्ची पतिव्रता न होती तो क्या यह अनूठा काम कर सकती थी।

थोड़ी ही देर में पानी से भरी चलनी ऊपर आने लगी। प्रशंसक आनन्द से नाच उठे। निन्दको का मुख काला स्याह पड़ गया। मध्यस्थ लोग कहने लगे-कितने विस्मय की बात है कि चालनी में से एक भी बूंद नहीं टपक रहा है! दूसरे ने कहा-इसी को कहते हैं शील की महिमा! बेचारी को लोगो ने वृथा बदनाम कर रक्खा है।

अब तो राजा से लेकर रंक तक के मुँह से सुभद्रा की प्रशंसा के शब्द निकलने लगे। सुभद्रा आगे-आगे चली। उसके पीछे राजा और राजा के पीछे हजारों की भीड़ चल पड़ी। फाटक पर पहुँचते ही सुभद्रा ने किवाड़ो पर जल छिड़का। चट-चट ध्वनि करके फाटक उसी समय खुल गये!

सुभद्रा के ऊपर धन्य-धन्य की वर्षा होने लगी। घर वालो ने यह समाचार सुना तो उन्हे बड़ा हर्ष हुआ। वे अपनी मूर्खता को धिक्कारने लगे। सुभद्रा को आशीर्वाद दिये गये। सब ने उससे क्षमायाचना की।

तपस्या और शील की लोकोत्तर महिमा का वर्णन नहीं हो सकता।

धन का प्रभाव !
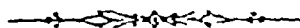
ईशु के पास एक आदमी आया। उसने कहा-आपने स्वर्ग का द्वार खोल दिया है। मैं भी स्वर्ग मे जाना चाहता हूँ। मुझे वहाँ भेज दीजिए।

ईशु ने कहा—तू जाना चाहता है?

आदमी—हाँ।

ईशु—जाना चाहता है?

आदमी—जी हाँ।

ईशु—जरा सोच ले। जाना चाहता है?

आदमी—खूब सोच लिया है।

ईशु—सोच लिया है तो अपने घर की तिजोरियों की चाबियाँ मुझे देदे।

आदमी—ऐसा तो नहीं कर सकता।

ईशु—तो तू स्वर्ग में नहीं जा सकता। कदाचित् सुई के

छेद में से ऊँट का निकल जाना संभव हो जाय, पर कंजूस धन-वानों का स्वर्ग में प्रवेश होना संभव नहीं है।

मित्रो ! आपने मनुष्य जन्म पाया है। इसे व्यर्थ मत खोओ। आपके पास धन है तो उसे परोपकार में लगा सकते हो। धन आपके साथ जाने वाला नहीं है। धन के मोह में मत पड़ो। मोह मे पड़े तो मोक्ष मिलना असम्भव होगा। काम-क्रोध आदि विकारों को जीतो। तभी आप महावीर के सच्चे शिष्य कहला सकोगे।
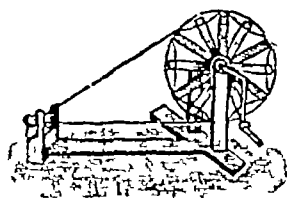
भोग—रोग

(सीताजी की तेजस्विता)

रावण सीता को हरण करके लंका में ले आया। उसने सीता को मनाने की लाख-लाख चेष्टाएँ कीं, पटरानी बना देने का प्रलोभन दिया, परन्तु परम-पतिव्रता सीता टस से मस न हुई। रावण के सभी प्रयत्न असफल हुए। तब उसने अपनी रानी मन्दोदरी से कहा—तुम जाओ और बहुमूल्य वस्त्राभरण ले जाकर सीता को मनाओ।

मन्दोदरी यह आदेश सुनकर सन्नाटे मे आगई। उसके विवेक का प्रदीप बुझा नहीं था। वह धर्म को पहचानती थी। व मन ही मन सोचने लगी—पतिदेव यह क्या कह रहे हैं? क्या मैं सती स्त्री के सतीत्व को भंग करने के लिए दूती बनूँ? यह तो बहुत बुरी बात है, परन्तु पतिव्रता को पति की आज्ञा भी तो माननी चाहिए। हाय! मैं धर्म संकट मे पड़ गई! एक

ओर कुआ और दूसरी ओर खाई है। सती को सतीत्व से डिगाना धर्म का अपराध है और पति की आज्ञा का उल्लंघन करना धर्म और नीति के विरुद्ध है। प्रभो! मुझे क्या करना चाहिए? कुछ भी नहीं सूझ पड़ता। सोचते-सोचते मन्दोदरी का मुँह कुम्हला गया।

मगर यह स्थिति बहुत दिनो तक नहीं रही। एकाएक मन्दोदरी का मुख कमल की भाँति खिल उठा। वह प्रभु को धन्यवाद देने लगी—प्रभो! आपने खूब रास्ता दिखलाया। मैं सीता देवी के दर्शन करना हो चाहती थी। यों जाती तो पति को सन्देह होता। वे सोचते—मन्दोदरी ही उन्हे सिखा आई होगी, इसी कारण सीता कावू में नही आ रही है। मगर उनके कहने पर मुझे अच्छा अवसर मिला है। सती सीता मेरे कहने पर कदापि नहीं डिग सकती, मगर मैं उनके दर्शन करके अपने नेत्रों को सफल कर लूँगी। उनसे कुछ न कुछ सीखकर ही आऊँगी। देखूँ उतका सत्य कैसा है?

आखिर मन्दोदरी वढिया से वढ़िया सुन्दर हीरो से जडे आभूषण, वस्त्र, तेल, इत्र और ऊँचे दर्जे के पकवानों से थाल भर कर सीता की तरफ चली। सीता के पास पहुँच कर वह लाई हुई उन उत्तम वस्तुओ की प्रदर्शिनी जमा कर वैठ गई। वह बोली—वहिन, इतनी क्यों शर्माती हो? खूब उदासी लाई हो! देखो, यह सव वस्तुएँ तुम्हारे लिए ही हैं। उठो, भोग भोगो। क्यो अपने सुन्दर शरीर को चिन्ता की आग में जला रही हो? सारी लंका तुम्हारी ही है। मैं तुम्हारी दासी वन कर रहूँगी। चिन्ता त्यागो और मेरे साथ अन्तःपुर में चलो।

सीता ने अपनी दृष्टि ऊपर उठाई। आँख खोलते ही

चन्द्रमा का सा प्रकाश निकला। उस प्रकाश के सामने मन्दोदरी की सारी चकाचौंध फीकी पड़ गई। उसका मुख—कमल कुम्हला गया।

अहा ! पतिव्रता का कैसा अपूर्व तेज है ! उसकी ज्योति कितनी जाज्वल्यमान और प्रखर है !

मन्दोदरी ने बहुत अनुनय-विनय की, पर क्या सीता उन वस्तुओं को छू भी सकती थी ? नहीं, क्योंकि वह वस्त्राभूषण राक्षस के थे। राक्षस के वस्त्र लेने मे वह अपना अपमान, धर्म का अपमान, कुल का अपमान और अपने सर्वस्व का अपमान समझती थी। उन वस्त्रों को सीता ग्रहण कर लेती तो अपने धर्म से भ्रष्ट हो जाती। क्या आप इस निष्कर्ष को सही समझते है ?

अगर आप के खयाल से यह बात सत्य है तो आप अपने सम्बन्ध मे भी निर्णय कीजिए। भारत माता के और पुत्रियो ! तुमने राक्षस के—मीलो के—वस्त्र पहने है। पर क्या आपको पता है इन वस्त्रो की बदौलत कितनी माताओं का शील लुट गया है ? कितनी अपने धर्म से गिर गई है। कितनी माया के चक्कर मे फँस गई है ? कितने भाई चरित्र से भ्रष्ट हुए, कितने धर्म से विमुख हो गये और कितने देशद्रोही बने ? जरा विचार कीजिए, भारत माता का इन वस्त्रो से कितना अपमान हुआ है ?

जिस डोरी से निरपराध साधु को फाँसी दी जाय, क्या आवश्यकता पड़ने पर उस डोरी को आप कन्दोरा बनाकर पहनना पसन्द करेगे ? नहीं। याद रखिए, इन वस्त्रों से लाखो

को फांसी लग चुकी है। फिर भी आप इन राक्षसी अशुद्ध वस्त्रो को न त्यागेंगे ?

हाँ, तो मन्दोदरी की बात सुनकर सीता ने कहा—वाह ! मैं तो समझती थी कि घर में तुम्हारा पति अकेला ही बिगड़ा हुआ है, पर तुम भी उसी की जोड की निकलीं ! ऐसी पटरानी की क्या तारीफ की जाय ?

मन्दोदरी—बस बस, रहने दो बहिन ! इतनी बातें क्यों बनाती हो ? ऐसा ही था तो मेरे पति के साथ समुद्र पार क्यों आई ?

सीता—तुम अभी तक नहीं समझी तो अब समझ लो। मेरी और मेरे राम की प्यारी प्रजा पर विकट संकट आया हुआ है। गरीबो को, सन्तो को और साधुओ को घोर दुःख हो रहा है। अनेक निरपराध कैद मे पडे सड़ रहे है। कई स्त्रियो की लज्जा का हरण हो रहा है। इन सब का कारण तुम्हारा पति है। तेरी जैसी सती-साध्वी के पवित्र हाथों में, ऐसे अधर्मी के सौभाग्य—चिह्न स्वरूप चूडियाँ नहीं सोहती। मै इन्हीं को फोड़ने के लिए, चूर-चूर करने के लिए यहाँ आई हूँ।

मन्दोदरी सीता के सच्चे किन्तु हृदयवेधी वचनों को सुनकर चुप-चाप अपनी प्रदर्शिनी समेट कर चलती बनी।

भोग दुनिया में पापो का प्रसार करने वाले है। भोग रोग बढाने वाले हैं। भोगों मे आसक्त राष्ट्र, समाज और व्यक्ति धूल मे मिल जाता है।

श्रीकृष्ण सजे-सजाये महल में पहुँचाये गये। वहाँ रत्नजटित सिंहासन था। दुर्योधन ने उस पर विराजने के लिए अनुरोध किया। तब श्रीकृष्ण बोले-पहले काम की बात करो। जिस काम के लिए मैं आया हूँ, पहले उसी के संबंध में चर्चा होनी चाहिए।

दुर्योधन ने कहा—इतनी जल्दी क्या है? अभी आप आए है, पहले तनिक विश्राम कर लीजिए। फिर बातें होती रहेंगी।

कृष्ण—मेरा नियम है-प्रथम काम फिर भोजन-विश्राम।

दुर्योधन—यह तो उलटा क्रम है?

कृष्ण—तुम्हारे लिए जो उलटा है, मेरे लिए वही सुलटा है।

मित्रो! कृष्ण के कथन में क्या तत्त्व है, इसे आप नहीं समझे होंगे। श्रीकृष्ण महान नीतिज्ञ थे। जानते थे कि दुर्योधन के भोजन में बुरी भावनाएँ घुसी हुई हैं। मैं इसका भोजन करूँगा तो मेरी बुद्धि भी भ्रष्ट हो जायगी। दुर्योधन के अन्न ने भीष्म आदि की बुद्धि बदल डाली थी, यह बात उन्होंने स्वयं स्वीकार की है। अस्तु।

दुर्योधन ने श्रीकृष्ण से कहा—फरमाइए, आपका क्या काम है?

कृष्ण—मैं युधिष्ठिर का दूत बनकर आया हूँ। तुम्हारे लिए उचित है कि उनका राज्य उन्हें लौटा दो। तुमने बारह के वनवास के लिए कहा था। वह उन्होंने पूरा कर

अध राज्य पर तुम्हारा कोई अधिकार नहीं है। किन्तु अगर इतना नही कर सकते तो पॉच गांव ही उन्हे दे दो।

दुर्योधन—इस विषय मे पीछे सलाह करेंगे। पहले भोजन कर लीजिए।

कृष्ण—पीछे सलाह क्या करोगे, दगा दोगे। आढ़ी-टेढ़ी बातें बनाने से कोई लाभ नहीं दुर्योधन। मैं तुम्हारे यहाँ भोजन नहीं कर सकता।

कृष्णजी ने उद्धव से कहा—उद्धव चलो। विदुर के घर जाकर भोजन करेंगे और वही ठहरेंगे।

उद्धव ने लोगो को जतलाने के लिए कहा—नाथ, वहाँ क्यों? विदुर की झौंपड़ी टूटी-फूटी है। वहाँ भोजन साधारण होगा। महाराज, यह सुन्दर महल और उत्तम भोजन त्याग कर वहाँ क्यो चलते हैं?

कृष्ण—उद्धव, तुम समझते नही। यहाँ के उत्तम भोजन मे युद्ध भावना का विष मिला हुआ है। मैं ऐसा भोजन पसन्द नहीं करता। मुझे यह महल भी अच्छा नहीं लगता। मै विदुर की झौंपड़ी को इस महल से श्रेष्ठ समझता हूँ।

कृष्णजी विदुर के घर चले गये। उस समय विदुरजी कहीं बाहर गये हुए थे। विदुर की पत्नी ने कृष्ण के समान अतिथि को अनायास अपनी झौंपड़ी मे आया देखा तो उसने अपना धन्य भाग्य समझा। वह भावना में मस्त हो गई। कृष्णजी भोजन करने बैठे तो उन्हें केले के छिलके-छिलके परोसती और आप केला खाती जाती। भक्ति और प्रीति मे वह बेभान हो रही थी। उसे खयाल ही न रहा कि वह क्या खिला रही है और स्वयं क्या खा रही है।

इसी समय विदुरजी बाहर से आ पहुँचे। उन्होंने यह अनूठा अतिथि-सत्कार देखकर कहा—पगली, यह क्या कर रही है? यह सुनकर विदुरपत्नी को होश आया।

कृष्णजी बोले—विदुरजी, आपने भोजन का सारा मजा किरकिरा कर दिया! केले के उन छिलको मे प्रीति का अनूठा ही रस था!

मित्रो! अप्रीति के पकवानों में भी वह रस नहीं है, जो प्रेम के छिलको मे है।

गांधीजी

रवीन्द्रनाथ एक बार अमेरिका गये। अमेरिका वासियों ने उनसे कहा—भारत के गांधीजी की हम बहुत प्रसंशा सुनते हैं। आपके साथ उनका सन्निकट परिचय होगा। कृपया गांधीजी के सम्बन्ध मे आप अपने विचार प्रकट कीजिए।

रवीन्द्रनाथ ने कहा—गांधीजी को मैंने देखा क्यो नहीं है? मेरा उनके साथ घनिष्ट परिचय भी है। पर कठिनाई यह है कि जिस रूप मे मैंने गांधीजी को देखा है, उसका वर्णन नहीं किया जा सकता। गांधीजी की महत्ता उनके शरीर के कारण नहीं है। शारीरिक दृष्टि से वे बहुत ह्रस्व है, फिर भी वे महान् हैं। भूतवादियो के मत से सारी करामात भूतों की है। इस दृष्टि से जिसका भारी-भरकम शरीर हो वही महान् होना चाहिए और जिसका शरीर दुर्बल हो वह तुच्छ होना चाहिए। मगर गांधीजी इस भूतवाद के सशरीर साक्षात् खंडन है। शरीर से दुबले-पतले होने पर भी उनमे तीन बातें ऐसी हैं जिनके कारण उनकी

महत्ता है। पहली बात उनमें निर्भयता है। मैं कवि-सम्राट् कहलाता हूँ। पर कोई छुरा लेकर मुझे मारने आवे तो अपने बचाव के लिए मैं प्रयत्न करूँगा और भाग जाऊँगा। मेरा हृदय भय से काँप उठेगा। मगर गांधीजी को मारने के लिए अगर कोई छुरा लेकर जायगा तो उसे देखकर वे लेश मात्र भी भयभीत न होंगे। यही नहीं, वरन् हँसेंगे, मुस्कराएँगे और पहले से भी अधिक प्रसन्न होंगे। उनकी दूसरी महत्ता है—सत्य के प्रति दृढ़ता। अगर सम्पूर्ण अमेरिका का विपुल वैभव उनके चरणों पर चढ़ा दिया जाय और बदले मे सत्य का परित्याग कर असत्य आचरण करने के लिए कहा जाय तो वे उस वैभव को लात मार देंगे। वे सत्य का त्याग नहीं करेंगे।

गांधीजी अमेरिका की अतुल धनराशि को सत्य के लिए ठुकरा सकते हैं, पर आप लोगों में कोई ऐसा तो नहीं है जो आठ आने के लिए साठ बार असत्य का आचरण कर सकता हो ? भीलों के विषय मे कहा जाता है कि शपथ दिलाने पर वे मरने से बचने के लिए भी झूंठ नहीं बोलते। फिर आप कुलीन और धर्मात्मा कहला कर भी अगर तुच्छ बात के लिए असत्य का आचरण करें, तो कितना अनुचित है ? सत्य के प्रति गांधीजी की दृढ़ता से यह जाना जा सकता है कि जब आज भी इस प्रकार का सत्यनिष्ठ व्यक्ति हो सकता है तो अर्हन्तो के समय में पूर्ण सत्य की प्रतिष्ठा हो तो इसमें आश्चर्य की बात ही क्या है ? कामदेव श्रावक को गजब का भय दिखाया गया पर उसने सत्य का परित्याग नहीं किया। सीता अनेक प्रलोभनों के आगे भी सत्य का ही आराधन करती रही ! इन सब प्राचीन आख्यानों को गांधीजी की सत्यनिष्ठा देखते हुए कपोल-कल्पना या मिथ्या कैसे कहा जा सकता है ? गांधीजी की सत्या

को देखते हुए सहज ही यह विचार आता है कि इस गये-गुजरे जमाने मे भी अगर सत्य के प्रति ऐसी दृढ़ता दिखाने वाले पुरुष मौजूद है तो प्राचीन काल मे ऐसे सत्य-निष्ठ पुरुष क्यों न रहे होगे?

कविसम्राट् ने आगे कहा—गांधीजी में प्रामाणिकता की भी प्रचुरता है। उनके जीवन-व्यवहार मे कही अप्रामाणिकता का प्रवेश नहीं देखा जाता। आप चाहे जितनी सम्पत्ति उन्हे दीजिए। जिस कार्य के लिए आप देंगे उसी मे वे व्यय करेगे। एक पाई भी वे उसमें से अपने लिए व्यय न होने देगे।

एक ओर इस समय भी गांधीजी इसी प्रकार की प्रामाणिकता रखते है। दूसरी ओर आजकल अप्रामाणिकता की पराकाष्ठा देखी जाती है। कई लोग अपने यहाँ जमा धर्मादा खाते की रकम मे से थोड़ा-बहुत देकर नाम कमाते है और कुछ तो धर्मादे की सारी रकम ही हड़प जाते है। ऐसे लोगो को गांधीजी की प्रामाणिकता से शिक्षा लेनी चाहिए।

गांधीजी की इन विशेषताओ को सुनकर अमेरिका के बड़े-बड़े पादरियो तक ने उन्हे संसार का सर्वश्रेष्ठ पुरुष स्वीकार किया। गांधीजी मे उल्लिखित विशेषताओ के अतिरिक्त और भी अनेक असाधारण गुण विद्यमान है। उन गुणो के सम्बन्ध में वही व्यक्ति ठीक-ठीक बतला सकता है जो गांधीजी के निकट परिचय मे रहता है। फिर भी उनके सार्वजनिक जीवन से फलित ने वाले कुछ गुणो का सभी को परिचय मिलता है। उन अनुकरणीय गुणों में से एक है—सेवाधर्म। गांधीजी के सेवा-धर्म के विषय मे श्रीयुत श्रीनिवास शास्त्री ने कहा है। शास्त्रीजी

राजनीति में नरम दली माने जाते थे। गांधीजी से उनका राजनैतिक मतभेद भी रहता था। शास्त्रीजी ने सन् १९१४ मे यूरोप में देखा कि गाधीजी भयंकर कोढी और इसी प्रकार के अन्य रोगियो के शरीर पर भी अपने हाथों से पट्टी बाँधते हैं। सहानुभूति से उनका हृदय द्रवित हो रहा है। प्रेम की प्राञ्जल ज्योति उनकी आँखो में चमक रही है। यह सब देखकर श्रीनिवासजी शास्त्री का हृदय गांधीजी के विषय मे सहसा पलट गया। मन ही मन गाधीजी जैसे सच्चे मानव-सेवक की अवज्ञा करने के अपराध के लिए उन्होंने पश्चात्ताप किया।

गांधीजी की विशेषता को जान लेना मात्र ही आपके लिए पर्याप्त नहीं है। उनके जीवन की अपने जीवन के साथ तुलना भी कर देखो। गाधीजी अज्ञात-अपरिचित रोगियो की आत्मीय भाव से सेवा करते हैं, तब आप अपने घर के या सहधर्मी की भी सेवा करते हैं या नहीं? किसी दीन-दुखी को देखकर आप लापरवाही से यह तो नहीं सोचते या कहते कि—हम क्या करे, इसने जैसा किया है वैसा भोगेगा! इसके कर्म-फल-भोग मे हम हस्तक्षेप क्यों करें? अगर आपके मुख से ऐसे शब्द निकलते हैं तो आप अपनी वाणी का दुरुपयोग ही नहीं करते बल्कि मानवता के प्रति घोर अपराध करते हैं। अगर हाथी के भव में मेघकुमार ने यही सोचा होता कि यह खरगोश अपने किये का फल भोग रहा है, तो क्या हाथी मेघकुमार का जीवन पा सकता था? भगवान् क्या यह कहते कि—मेघकुमार! तुम हाथी के भव में शशक पर अनुकम्पा करने के कारण मेघकुमार बने हो? वास्तव मे दुखी को देखकर जिसके दिल में दया का स्रोत बहने लगता है, उसके दुःख उसी स्रोत में बह जाते हैं।

जिसका अन्तःकरण करुणा की कल्लोलमाला से संकुल है उसने अपना जीवन सार्थक बनाया है। सेवा, मानव-जीवन का बहु-मूल्य लाभ है। सेवा की सीमा नहीं है। वहाँ स्व-पर का भेद नहीं है। अपनी संतान के समान ही प्रेमपूर्वक दूसरे की सन्तान की सेवा करना मनुष्य का पवित्र कर्त्तव्य है। शास्त्र सेवा-भावना की शिक्षा देता है। शास्त्र की इस शिक्षा के होते हुए भी सेवा मे आपको कठिनाई प्रतीत होती है। गांधीजी जैसी महिमा यदि आपको मिले तो आप बड़ी प्रसन्नता के साथ उसे अपना लेने को तत्पर हो जाएँगे, पर गांधीजी जैसी सेवा करने का कार्य किसी और को सौंप देने का प्रयत्न करेंगे। गांधीजी की सेवा-भावना ने उनके विरोधियों को भी अपना प्रशंसक बना लिया है। आज उनके विरोधी भी मुक्त कण्ठ से उनकी प्रशंसा करते हैं।

जैन शास्त्र मे क्षमा की बड़ी प्रशसा की गई है। साधु के दस धर्मों मे क्षमा को पहला स्थान दिया गया है। साथ ही क्षमा का असली रूप क्या है और उसकी सीमा क्या है, यह बताने के लिए गजसुकुमार मुनि का आदर्श दृष्टान्त भी शास्त्रो मे लिखा है। गजसुकुमार की क्षमा चरम सीमा की क्षमा है।

गांधीजी की क्षमा के विषय मे एक बात सुनी जाती है। दक्षिण अफ्रिका मे गांधीजी ने सत्याग्रह संग्राम छेड़ा था। उस समय एक पठान को न मालूम क्यों यह संदेह हो गया कि उन्हों ने हमे तो सत्याग्रह मे झौंक रक्खा है और आप स्वयं सरकार से मिल गये हैं। पठान इस सदेह के कारण गांधीजी पर अत्यन्त क्रुद्ध हुआ और उन्हे मार डालने तक के लिए संकल्प कर बैठा।

एक दिन पठान को गांधीजी मिल गये। पठान मौका देख ही रहा था, उसने उन्हें उठाकर गटर में पटक दिया। गांधीजी चोट खाकर बेहोश हो गये। उनके मित्रों ने पता लगाकर उन्हें अस्पताल पहुँचाया। गांधीजी होश में आये। उनके मित्रों ने कहा-आपको उस दुष्ट पठान ने बहुत कष्ट पहुँचाया है। आपके ठीक होते ही उस पर मुकद्दमा चलाया जायगा। गांधीजी की महत्ता उस समय देखने योग्य थी। उन्होने कहा—अपने भाई पर मुकद्दमा मैं नहीं चला सकता। उसे मुझ पर सदेह हुआ और इसी कारण उसने मेरे साथ यह व्यवहार किया है। ऐसे प्रसंग तो मेरी क्षमा की कसौटी है। मुझमें कितनी क्षमा है, यह अब मालूम हो सकेगा। गन्ना खेत में भी मीठा रहता है, घानी में पेला जाता है तब भी मीठा रहता है, भट्ठी पर चढाने पर भी मीठा रहता है। वह अपनी मिठास कभी नहीं त्यागता है। मैं क्या गन्ने से भी बदतर हूँ, जो अपनी प्रकृति का परित्याग कर अपने ही एक भाई पर दावा दायर करूँ। चलो, उसके पास चलें और इस तरह कसौटी करने के कारण उसका आभार मानें।

गांधीजी उसके यहाँ गये। गांधीजी की बातें सुनकर उसका हृदय पलट गया। वह अपने कृत्य के लिए पश्चात्ताप करने लगा कि मैंने लोगों के कहने-सुनने मे व्यर्थ ही एक सत्पुरुष को पीडा पहुँचाई। पठान ने अन्त मे गांधीजी के पैरों पड़कर क्षमा-याचना की। गांधीजी ने अगर पठान पर मुकद्दमा दायर किया होता तो वे उसे कारागार में भले ही भिजवा देते, पर उस पर विजय नहीं प्राप्त कर सकते थे। उस अवस्था मे दोनों को वह रस कैसे मिलता।

गांधीजी की दया के विषय मे भी एक घटना सुनी जाती है। जगत् के दूसरे लोग जिसे दुतकारते है, सच्चा दयालु उसे अपनी दया का प्रथम पात्र समझता है। आज संसार मे बहुतेरे लोग है जो मुँह से दया-दया चिल्लाते हैं पर दया के लिये करते कुछ भी नही है। मगर गांधीजी ने दया के लिये क्या किया है, यह ध्यान देने योग्य है। गांधीजी गन्तूर गये थे। वहाँ वेश्याओं की एक सभा थी। वेश्याओ ने गांधीजी से मिलने का विचार किया। गांधीजी ने कहा—वे बहिनें है, प्रसन्नता के साथ मुझसे मिल सकती हैं। आखिर वे गांधीजी से मिलीं। गांधीजी ने उनके वस्त्र देख कर कहा—बहिनो! तुम इस प्रकार के गन्दे वस्त्र न पहना करो। तब वेश्याओ ने कहा—आप इन वस्त्रों को गन्दा कहते है, पर हमारे पास दूसरे वस्त्र ही नहीं है।

वेश्याओं का यह कथन सुन कर गांधीजी ने कहा—नीच धन्धा करने पर भी अगर इन्हे पूरे और साफ-सुथरे वस्त्र नसीब नहीं होते तो मेरे दूसरे गरीब भाइयो की क्या स्थिति होगी? यह सोच कर उन्होने अपने सब कपड़े त्याग दिये। वे चादर और लंगोटी लगा कर रहने लगे।

दया का यह कैसा आदर्श उदाहरण है। आप तो दया की खातिर चर्बी के भी वस्त्र नही त्याग सकते! अगर आप सच्चे अहिंसा-धर्म का पालन करें तो आपका भी कल्याण हो और दूसरो का भी। चर्बी लगे हुये वस्त्र की अपेक्षा खादी मे अधिक पैसे लगते जान पड़ेंगे, लेकिन यह देखना चाहिए कि खादी मे खर्च हुआ प्रत्येक पैसा हमारे देश के गरीब भाइयो के पास पहुँचता है और मैंनचेस्टर की मलमल मे व्यय हुआ रुपया

विदेश चला जाता है। अंग्रेज लोग अपने देश का कितना खयाल रखते हैं ? कहते हैं, बम्बई में एक अंग्रेज ने अपने नौकर से बूट की जोड़ी मँगवाई। नौकर बाजार गया। उसने देखा— देशी बूट और विलायती बूट बनावट और मजबूती में समान हैं। फिर भी देशी कीमत में सस्ते और विलायती महँगे हैं। यह सोच कर वह देशी बूट ले आया। अंग्रेज ने कहा—अरे यह इन्डियन बूट तू क्यों ले आया है ? नौकर ने जब देशी बूट लाने का कारण उसे समझाया, तब वह अंग्रेज कहने लगा-विलायती बूट महँगा है तो भी मुझे वही खरीदना है। वह पैसा मेरे देश में रहेगा। अगर हम लोग इस प्रकार दूसरे देश को अपना पैसा देने लगेंगे, तो हम अपनी मातृभूमि के द्रोही हो जाएँगे।

गांधीजी की दया का एक और उदाहरण सुनिये। सुना है, राजकोट के ठाकुर साहब लाखाजीराज गांधीजी के प्रति बहुत सद्भाव रखते थे। गांधीजी जब राजकोट आये, तो लाखाजीराज ने उन्हें मान-पत्र देने का विचार किया। मान-पत्र रखने के लिए उन्होंने पैरिस से एक बढ़िया संदूक बनवा कर मँगवाया। संदूक अत्यन्त सुन्दर था। पर जिसके हृदय में पाप के प्रति गर्हा होती है, वह दूसरों के पाप को भी अपना पाप मानता है। बेटे की बीमारी के लिए बाप अपने अभाग्य को कोसता है। बाप अपने बेटे को ही बेटा समझता है, पर जिसका हृदय अत्यन्त उदार होता है, जो 'वसुधैव कुटुम्बकम्' की विशाल भावना का प्रतीक बन जाता है, वह इस बात का भलीभाँति विचार करने लगता है कि मेरे असंयम से किस-किस को किस-किस प्रकार का कष्ट होता है !

गांधीजी ने राजकोट में ही शिक्षा पाई थी और वहीं पर

साधुमार्गी जैन महात्मा बेचरजी स्वामी से मदिरा, मांस और परस्त्री-सेवन का त्याग किया था। उन्होंने जिन चीजों का त्याग किया, अनेक कष्ट उठाने पर भी फिर कभी उनका सेवन नहीं किया।

लाखाजीराज पेरिस से बनकर आये हुए संदूक मे मान-पत्र देने लगे। उस समय गांधीजी ने कहा—हमारे लाखो भाई रोटी के लिए तरस रहे है। इस अवस्था मे मुझे ऐसे सन्दूक मे मानपत्र देना क्या मेरा उपहास नहीं है? ऐसा कीमती सन्दूक रखने की जगह भी मेरे घर मे नहीं है। गांधीजी मे यह कैसा अपुरस्कार भाव है।

गांधीजी मे अनेक उत्तमोत्तम सद्गुण है। उनकी प्रामाणिकता की प्रशंसा उनके विरोधी भी करते हैं। उनकी सादगी सराहनीय है। हृदय मे सच्ची दया तभी अंकुरित होती है, जब श्रीमन्ताई का ढोंग त्याग कर सादगी अपनाई जाती है। इसीलिये उन्होने श्रीमन्ताई त्याग कर फकीरी बाना धारण किया है। वे अगर चाहते श्रीमान् बन कर संसार के सभी भोग-विलास भोग सकते थे। कहते हैं—गांधीजी के लड़के ने उन्हें पत्र लिखा था कि-'अब आप बड़े आदमी गिने जाते है, आप बैरिस्टर भी हैं और बुद्धिमान् भी है। इसलिए अब आप ऐसा व्यवसाय सोचिये जिससे हम लोग श्रीमान् बन सके।' उसका अत्यन्त भावमय और धार्मिक उत्तर गांधीजी ने दिया था। उन्होने लिखा था—"मै सुदामा और नरसी मेहता से ज्यादा गरीब बनने की भावना रखता हूँ। तुम बहुत धनवान् बनना चाहते हो और मै बहुत गरीब बनना चाहता हूँ। ऐसी दशा मे तुम्हारा और मेरा मेल कैसे बैठेगा?

आजकल बहुत-से लोग श्रीमंताई के ढोंग मे पड कर गरीबों की ओर से आँखे बन्द कर लेते हैं। उनके दिल मे दीन-दुखियों की सेवा-सहायता करने का विचार तक नहीं आता है। मगर उन्हे यह ध्यान रखना चाहिए कि समाज की यह विषमता एक दिन असह्य हो जायगी और तब भयंकर क्रांति होगी। उस क्रांति मे गरीब-अमीर का भेद-भाव विनष्ट हो जायगा और एक नई सामाजिक व्यवस्था का निर्माण होगा। बनेड़ा (मेवाड़) में पूज्य श्रीलालजी महाराज ने कहा था कि "गरीबो पर दया करो। उनकी उपेक्षा न करो। नहीं तो बोलशेविज्म आ जायगा। उस समय आप श्रीमंत लोगो को कष्ट में पडना पड़ेगा। उस समय गरीब लोग अमीरों से कहेंगे—'बताओ, तुम्हारे पास यह धन कहाँ से आया है? हम गरीबों की रोटियों को पैसे के रूप में जमा करके हमें तुमने भूखों मारा है। अब तुम अमीर और हम गरीब नहीं रह सकते। तुम्हें भी हमारे समान बनना पड़ेगा। हमारे समान परिश्रम करके खाना होगा। अब दूसरे के परिश्रम पर चैन की गुड्डी नही उडा सकते। बिना पर्याप्त परिश्रम किये किसी को भर-पेट खाने का क्या अधिकार है?' इस प्रकार जिन गरीबों की आज उपेक्षा की जाती है वही गरीव आपकी श्रीमंताई नष्ट कर डालेंगे। अगर आप चाहते हैं कि बोलशेविज्म न आवे—क्योंकि वह सिद्धांत भी अनेक दोषो और त्रुटियों से भरा हुआ है—तो आपको गरीबो की सुधि लेनी चाहिए। अगर आप गरीबों की रक्षा करेंगे, तो गरीब आपकी रक्षा में अपने प्राण तक निछावर कर देंगे। इस संबंध के आपको गांधीजी की जीवनी से शिक्षा लेनी चाहिए।
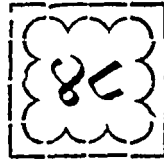
उपवास

गांधीजी ने अपने जीवन मे अनेक बार उपवास किये है। उन्होंने उपवास की महिमा और शक्ति समझ ली थी। एक बार उन्होने इक्कीस दिन का उपवास किया। सुनते है, किसी ने उनसे प्रार्थना की—आपका शरीर पहले से ही दुबला-पतला है। अब उपवास करके उसे अधिक सुखाना उचित नहीं है। आप कृपा कर उपवास छोड़ दे।

गांधीजी ने उत्तर दिया—फिर यों कहो कि जीना ही छोड़ दो। गांधीजी के उत्तर का स्पष्ट अर्थ यह है कि जीवन भोजन पर ही निर्भर नही है, किन्तु उपवास पर भी निर्भर है।

× × × ×

एक बार किसी ने गांधीजी से प्रश्न किया-क्या आप महात्मा हैं ? गांधीजी ने कहा-लोग ऐसा कहते हैं, पर मुझे ऐसा

नहीं जान पड़ता कि मैं महात्मा हूँ।

प्रश्नकर्त्ता—तो फिर आप महात्मा कहने वालों को रोकते क्यो नहीं हैं ?

गांधीजी—रोकने से तो ज्यादा—ज्यादा कहते हैं।

× × × ×

एक दिन इंग्लेण्ड मे उनसे पूछा गया—महात्मा किसे कहते है ?

गांधीजी—जो तुच्छ से तुच्छ हो, उसे महात्मा कहते हैं।
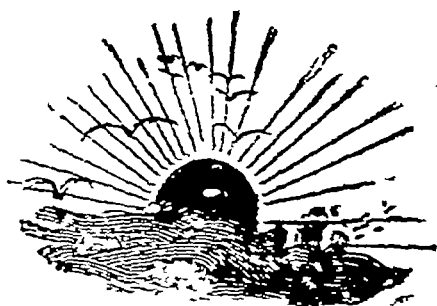
वीर बालक

भारत के इतिहास में सिक्खों का इतिहास बडा जाज्वल्यमान है। सच्चे क्षात्रधर्म की झलक उनमें दिखाई देती है। माता के सामने उसके प्राण-प्यारे बच्चे के टुकड़े-टुकड़े कर दिये गये मगर माता ने धर्म का परित्याग करना स्वीकार न किया। उन्हे भयंकर से भयंकर त्रास दिया गया, मगर उन्होंने सभी कुछ हँसते-हँसते स्वीकार कर लिया। गुरु गोविन्दसिंह के बच्चों को बादशाह भीत मे चिनता है, फिर भी वे धर्म त्यागने से इन्कार ही करते हैं। जब बड़े भाई को बादशाह दीवार मे चिनता है तो छोटा भाई खड़ा-खड़ा रोता है। उसे रोते देख बादशाह समझता है कि यह डर गया है। इसलिये धर्म छोड़ देगा। वह लड़के को आश्वासन देकर कहता है—बच्चे, रोओ मत। तुम्हें नहीं चिनेंगे। किन्तु वह शेर बच्चा कहता है—डर कर नहीं रोता—दीवार मे चिने जाने का मुझे खौफ नही है। मुझे अफसोस यह है कि मै अपने भाई से पहले क्यों नहीं चिना गया ? मेरा भाई हँसते-हँसते धर्म के ऊपर बलिदान हो गया। उसका बलिदान मेरी आँखो ने देखा, पर मेरा बलिदान कौन देखेगा ? यह सोचकर मुझे रोना आता है।

ओह ! कितनी वीरता है ! कितनी धीरता है !

दृढ़ता

'सीता की अग्नि परीक्षा' पुस्तक में लिखा है—एक बादशाह ने अपनी मूर्ति बनवाकर ढिंढोरा पिटवा दिया कि सब लोग मेरी मूर्ति के सामने सिर झुकाएँ और इसे ईश्वर के तुल्य मानें। बादशाह के हुक्म के अनुसार हजारों नर-नारी—जो बेचारे कायर थे—उस मूर्ति के सामने सिर झुकाते। परन्तु बादशाह के खास वजीर और सेनापति ने सिर नही झुकाया। यह बात बादशाह को मालूम हुई। उसने कहा—सब लोग मुझे सिर झुकाते है, पर मेरा ही नौकर मेरी मूर्ति के आगे सिर नहीं झुकाता ! यह बर्दाश्त नहीं किया जा सकता। उसे अभी मेरे सामने बुलाओ।

वजीर हाजिर हुआ। बादशाह ने क्रोध-भरे स्वर में कहा—क्योंजो तुम उस मूर्ति के सामने सिर क्यों नहीं झुकाते ?

वजीर—मैं उस मूर्ति के सामने सिर नहीं झुकाऊँगा और न उसे ईश्वर मानूंगा।

वजीर के यह शब्द सुनकर बादशाह के क्रोध का पारा बहुत ऊँचा चढ़ गया। उसने वजीर को जला डालने की आज्ञा दे दी।

वजीर को अग्नि मे प्रविष्ट किया गया, पर उसके कपड़े का एक सूत भी न जला। बादशाह ने उसका आत्मविश्वास देखकर और आश्चर्यजनक घटना से चकित होकर अपना हठ छोड़ दिया।

मित्रो! आत्मविश्वासियों के उदाहरणों से इतिहास भरा पड़ा है। उन्हें पढ़े तो पता चलेगा कि कितने ही पुरुषों और नारियों ने नारकीय यातनाएँ सहना स्वीकार किया मगर अपना दृढ़ विश्वास न छोड़ा।

उदारता

आज कल के बहुत से लोग अपने धन का सद्व्यय न करके ब्याह में, शादी में, वेश्या नृत्य में और फुलवाड़ी लुटाने मे व्यय करते है। गरीबों को भी अपनी सामाजिक प्रतिष्ठा कायम रखने के लिए उनकी देखादेखी ऐसा करना पडता है। उन्हें नीति और सत्य के काम पसन्द नहीं आते। लेकिन बाजार जब मन्दा होता है—आमदनी का द्वार बन्द होजाता है तब उनकी आँखें खुलती हैं। उस समय इन खर्चों की बुराइयाँ उनकी समझ में आती हैं। ऐसे समय में वह परोपकार के कार्यों को पहले बन्द करते हैं, जहां धन का विशेष और अनावश्यक व्यय होता है वहां फिर भी व्यय करते रहते है। प्रकृति से भद्र मनुष्य परोपकार का कार्य कड़ी से कडी और बडी से बड़ी मुसीबत आने पर भी बन्द नहीं करते। एक दन्तकथा प्रसिद्ध है:——

युद्ध के समय महाराणा प्रताप, जंगल में एक छोटे से

खेमे मे परिवार सहित रहते थे। नौकर अगर कोई रहा होगा तो केवल भील। बादशाह अकबर ने ऐसे समय राणा की शक्ति और धैर्य की परीक्षा करने का विचार किया। स्वय अकबर फकीर का भेष बना कर उस जंगल मे जा पहुँचा। वह राणा के खेमे पर पहुँचा। सूचना मिलने पर राणा प्रताप बाहर आये। फकीर ने कहा—राणाजी, आपका बडा नाम और प्रताप सुन-कर आया हूँ। चांदी के थाल में मेवे की खिचड़ी खाना चाहता हूँ। खिलाओगे ?

फकीर की याचना से राणा को मार्मिक व्यथा होने लगी राणा ने सोचा—यहाँ जगली फल फूल खाकर काम चलाया जा रहा है और फकीर चांदी की थाली मे मेवा की खिचड़ी मांग रहा है। यह कोई असाधारण घटना है। साधारण फकीर की यह माँग नहीं हो सकती। मै नांही करूं तो कैसे ? और हाँ करके खिलाऊँ कैसे ?

राणा ने फकीर को बैठने का आमन्त्रण दिया और आप खेमे मे गया। राणा का धैर्य जवाब दे रहा था। अतिथि का यथेष्ट सत्कार न कर सकते हुए जीवित रहने से तो मृत्यु होजाना श्रेष्ठ है। इस प्रकार विचार कर उनने अपघात करना निश्चित कर लिया। पीछे के द्वार से निकल कर राणा जंगल मे चले गये और सोचने लगे—किस प्रकार मरना चाहिये ? संयोग से उस समय एक मनुष्य लदा हुआ बैल लेकर उनके समीप आया और कहने लगा—आप थोड़ी देर बैल को थामे रहे तो मैं शौच हो आऊँ। राणा ने सोचा मुझे मरना तो है ही, अन्तिम समय मे इसका छोटा सा काम क्यों न करदूँ ? राणा ने बैल पकड़ लिया।

बैल का मालिक आंखों से ओझल होगया। वह गया सो सदा के लिए चला गया फिर लौट कर न आया। राणा ने उसे आवाजें लगाई। चिल्ला-चिल्ला कर पुकारा, मगर प्रतिध्वनि के सिवाय और कहीं से कोई उत्तर न मिला।

इधर राणा को खेमे मे न देख परिवार के लोग चिन्ता में पड़ गये। कुछ लोग इधर उधर खोजने निकले। राणा मिले, बैल को थामे हुए। उन्होंने ऐसा करने का कारण पूछा। राणा ने सब वृत्तान्त कहा और बैल के स्वामी को खोज निकालने का आदेश दिया। अनुचर उसकी तलाश मे निकले। पैरों के निशान देखते वे आगे बढ़े तो उनके आश्चर्य का ठिकाना न था। कुछ ही दूर जाकर पैरों के निशान गायब थे। जान पड़ता था-वह अचानक विलीन होगया है।

लाचार राणा बैल लिये अपने खेमे पर आये। बैल पर लदी गौन उतार कर देखा तो उसमे एक ओर मेवा भरा था, दूसरी ओर चाँदी के थाल।

राणा ने मेवा की खिचड़ी बनवाई और फकीर वेषधारी बादशाह को इच्छा-भोजन कराया। बादशाह यह देखकर हैरान रह गया। 'प्रकृति जिसका साथ दे रही है, उसे कौन हरा सकता है?' इस प्रकार सोचता हुआ बादशाह वहां से चल दिया।

ऐसी ही एक कथा सुप्रसिद्ध यूरोपियन वीर नैपोलियन बोनापार्ट के विषय मे प्रचलित है। कहते हैं, नैपोलियन की माता ने, एक बार उससे कुछ पैसे मांगे। नैपोलियन के पास पैसे

नहीं थे। उसे बड़ी लज्जा हुई और वह मरने का सङ्कल्प करके नदी की ओर चला। इसी बीच उसके एक मित्र ने आकर उसके हाथ में रुपयों से भरी एक थैली दी और कहा—'जरा इसे लीजिए। मैं लघुशंका कर आता हूँ।' थैली देकर वह मित्र ऐसा गायब हुआ कि फिर आया ही नहीं।

इन कथाओं का तात्पर्य यह है कि प्रकृति के उदार मनुष्य सत्य के काम को भी नहीं बिगाड़ते और प्रकृति भी उनकी सहायता करती है।

५२

दो बहिनें-सम्पत्ति और विपत्ति

राजा भोज अपनी सभा मे बैठा हुआ पण्डितो के साथ विनोद की बातें कर रहा था। उसके द्वार पर एक पण्डित आया। वह पण्डित शरीर से दुर्बल था। उसके बाल रूखे थे। मस्तक पर लम्बी सी चोटी फहरा रही थी। द्वार पर आकर उसने पहरेदार से कहा—मैं महाराज भोज से मिलना चाहता हूँ।

पहरेदार ने व्यंगपूर्वक कहा—महाराज को और काम ही क्या है! वह तो तुम जैसो से मिलने के लिए ही बैठे हैं न! दिन भर में तुम सरीखे सैकड़ो आते हैं। महाराज किस-किस से मिलें?

पण्डित—तू आज नहीं मिलने देगा तो मै कल या दो दिन बाद मिल लूँगा। लेकिन ऐसा न हो कि तेरा कोई अहित हो जाय! तू जाकर राजा से कह दे कि आपके भाई आये है। यदि वह मुझे अपना भाई बतलाएँ तो तू मुझे ले चलना। नहीं तो मत ले चलना।

पहरेदार को यह बात पसन्द आई। उसने जाकर राजा से कहा-एक पुरुष द्वार पर खड़ा है। वह अपने को आपका भाई बतलाता है और आपसे मिलना चाहता है।

राजा भोज कुछ विचारने लगा। थोड़ी देर बाद, मानो कोई भूली बात याद आ गई हो, राजा ने कहा-हाँ, मेरा एक भाई है। वही शायद आया होगा। तू जा और उसे लिवा ला।

सिपाही उलटे पैरों लौटा। उसने आगत पुरुष से कहा-आप भीतर पधारिये और मेरा अपराध क्षमा कीजिये। अनजान में मुझ से भूल होगई।

पण्डित—कोई बात नहीं है! यह तो तुम्हारा कर्त्तव्य ही है।

यह कह कर पण्डित द्वारपाल के साथ राजा के पास गया। पण्डित को देखते ही राजा ने खड़े होकर उसका स्वागत किया। राजा के साथ सभासदों को भी उठना ही पड़ता है। वह मन ही मन कहने लगे-यह कौन आया है?

राजा ने उसे अपने साथ सिंहासन पर बिठालाया। सभासद सोचने लगे-चन्द्र के साथ राहु के समान यह सिंहासन पर कौन बैठ गया है?

सिंहासन पर बैठकर राजा ने प्रश्न किया—कहो, मौसी जी सकुशल है?

पण्डित—हाँ, अब तक तो सकुशल थी पर आपका दर्शन होते ही वह मर गई हैं।

राजा—मरना-जीना तो प्रकृति का अटल नियम है। वह किसी के हाथ की बात नही है। लेकिन उनका अन्तिम संस्कार अच्छी तरह करना।

पण्डित—मेरी दशा आप देख ही रहे है। मैं अपनी स्थिति के अनुसार अन्तिम संस्कार करूँगा ही। पहनी हुई इस धोती मे से आधी फाडकर उसके शव पर डाल दूँगा। इससे अधिक क्या कर सकता हूँ?

राजा—नहीं जी, ऐसा क्यों? अपनी मौसी के अन्तिम संस्कार के लिए मैं तुम्हें सहायता दूँगा।

पण्डित—आप सहायता देंगे तो उसी के अनुसार क्रिया-कर्म कर दूँगा।

राजा ने भण्डारी को एक हजार मोहरें निकालकर दे देने की आज्ञा दी। भण्डारी यह आज्ञा सुनकर आश्चर्य में पड़ गया। राजा ने उससे कहा—मेरी मौसी का अन्तिम संस्कार करना है। इसलिए मेरे नाम लिखकर दे दो।

राजा की आज्ञा के अनुसार भण्डारी ने हजार मोहरें गिन दीं। ब्राह्मण पण्डित हजार मोहरें लेकर बाहर निकला। उसने पहरेदार को भी कुछ दिया। कई लोग राजसम्मान पाकर दूसरे का अहित करने में ही अपना बडप्पन मानते हैं। लेकिन ब्राह्मण पण्डित ने पहरेदार का अहित नहीं किया। बल्कि उसे कुछ देकर सन्तुष्ट कर लिया और अपने घर चला गया।

ब्राह्मण के चले जाने के बाद एक सभासद ने साहस करके पूछा-आपके यह भाई कहाँ रहते हैं? कौन-सी मौसी की बात अभी हो रही थी? यह पहले तो कभी मिले नहीं।

राजा—वह मेरा ही नहीं, तुम लोगों का भी भाई है। लेकिन तुम्हारी आँखे फिरी हुई है। इसी कारण तुम उसे नहीं पहचान सके। पहले इस वात पर विचार करो कि मैं किसका पुत्र हूँ ? तुम मुझे किसी और का पुत्र वताओगे लेकिन मैं सम्पत्ति का पुत्र हूँ। और सम्पत्ति की वहिन है विपत्ति। यह जो अभी आया था सो विपत्ति का पुत्र है। तुमने देखा ही है कि उसका शरीर कितना कृश था। वाल कितने रूखे थे। इससे ज्यादा विपत्ति और क्या हो सकती है। मैं सम्पत्तिपुत्र हूँ और वह विपत्तिपुत्र है। सम्पत्ति और विपत्ति वहिने हैं। इस कारण वह मेरा भाई हुआ।
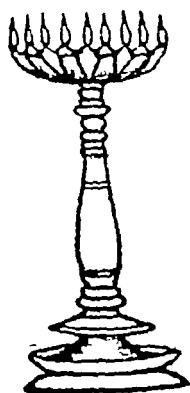
देवी माता

अद्वैताचार्य नामक एक महान् विद्वान् हो गए हैं। उनके पिता बंगाल में किसी राजा के गुरु थे। अद्वैताचार्य ने एक बार विचार किया—सिर पर कितनी ही बडी विपत्ति आ पडे, फिर भी जो बात सत्य हो—सत्य प्रतीत हो, वही प्रकट करनी चाहिए।

अद्वैताचार्य के पिता जिस राजा के गुरु थे, वह राजा शाक्त था। देवी का उपासक था। यह बात करीब १५ वीं या १६ वीं शताब्दी की है। उस समय देवीपूजा के नाम पर बहुत पशुवध होता था और ब्राह्मण पण्डित वेद के नाम पर उसका समर्थन करते थे।

एक दिन अद्वैताचार्य देवी के मन्दिर में गये तो राजा देवी का पूजन कर रहा था। अद्वैताचार्य देवी को नमस्कार किये बिना ही देवी के सामने बैठ गये। उनके इस व्यवहार को

देखकर राजा सोचने लगा—यह मेरे राजगुरु का पुत्र होकर भी देवी का इस प्रकार अपमान करता है? राजा से रहा नहीं गया। उसने अद्वैताचार्य से कहा—तेरी बुद्धि तो ठिकाने है न?

अद्वैताचार्य—हाँ महाराज, बुद्धि ठिकाने ही है।

राजा—तो जरा अपने व्यवहार पर विचार कर।

अद्वैता०—मेरी समझ मे कुछ नही आता। आप ही कहिए।

राज—तू माता देवी को नमस्कार किये विना कैसे बैठ गया?

अद्वैता०—यह देवी किसकी माता है महाराज?

राजा—देवी मेरी माता है, तेरी माता है और अखिल ससार की माता है।

अद्वैता०—अगर देवी अखिल संसार की माता है तो अपने पशु-पुत्रों को खा क्यो जाती है? देवीपूजा के नाम पर पशुओं की बलि क्यों चढ़ाई जाती है? अगर यह देवी सब की माता है तो इन पशुओं की रक्षा क्यों नहीं करती? माता का कर्त्तव्य तो सन्तान की रक्षा करना है। कोई क्रूर से क्रूर माता भी अपने पुत्रो का भक्षण नहीं कर सकती। मगर यह देवी अखिल संसार की माता होकर भी अपनी सन्तानों का नाश करती—कराती है तो इसे माता कहा जाय या राक्षसी?

अद्वैताचार्य को राजा कुछ भी उत्तर नहीं दे सका। वह चुप हो गया। पर अद्वैताचार्य के पिता ने, जो वहीं बैठे थे,

कहा—पुत्र, जान पड़ता है तू भ्रष्ट हो गया है। माता के विषय में ऐसे शब्द कहीं बोले जाते हैं! माता तो भोग माँगती है, अतएव उसे पशुओं की बलि दी जाती है।

अद्वैता०—अगर यह माता अपने पुत्रों का बलिदान माँगती है तो मेरी माता मेरी बलि क्यों नहीं माँगती ? आप शास्त्रों के प्रकाण्ड विद्वान् होते हुए भी सत्य बात प्रकट क्यों नहीं करते ?

अद्वैताचार्य की युक्तिसंगत बात का कोई उत्तर नहीं था।

सच है—आशा और तृष्णा के फेर में पड़कर लोग सत्य का आचरण करना तो दूर रहा, सत्य बात प्रकट भी नहीं कर सयते।

मदिरापान

कहा जाता है, बादशाह अकबर को शराब का शौक लगा। शराब पीने से उसमे खराबी आने लगी। वजीर ने सोचा—बादशाह की यह लत छुड़ानी चहिए। लेकिन बड़े की जिद को दूर करना भी बड़ा कठिन काम होता है। वजीर उपाय सोचने लगा।

एक दिन बादशाह नशा करके दरबार मे बैठा था। उसने किसी एलची से न कहने योग्प बात भी कह दी। इससे भी वजीर को खटका हो गया और वह बादशाह को शराब पीने की आदत छुड़ांने का प्रयत्न ककने लगा।

मौका पाकर एक रोज वजीर उस कमरे में घुस गया, जिसमे बादशाह की शराब रक्खी रहती थी। उसने एक बोतल उठा कर बगल में छिपा ली और बादशाह के सामने से छिपता छिपता चलने लगा। बादशाह ने वजीर को देखकर कहा-बगल में क्या छिपा रक्खा है वजीर ।

वजीर डरते-डरते बोला-कुछ नहीं।

बादशाह—कुछ नहीं। क्या 'कुछ नहीं' को बगल में छिपाने की जरूरत होती है?

वजीर—कुत्ता है?

बादशाह—कुत्ता? और बगल मे?

वजीर—मैं भूल गया हुजूर। घोड़ा है।

बादशाह—कभी कुत्ता और कभी घोड़ा! कभी कुछ नहीं। बात क्या है? सच-सच कहो।

वजीर—सच तो यह हाथी है।

बादशाह—पागल हो गया है क्या? कहीं बगल मे भी हाथी दबाया जा सकता है? सच क्यों नहीं कहता?

वजीर—माफ कीजिए। माफ कीजिए। कुछ भी नहीं है।

बादशाह ने झुंझलाकर दुपट्टा हटाया तो शराब की बोतल निकली। उसने कहा-बेवकूफ, यह क्यों नहीं कहता कि शराब की बोतल है।

वजीर—यही तो मैं कह रहा था।

बादशाह—तू तो कुत्ता, हाथी, व घोडा और कुछ नहीं बतला रहा है।

वजीर—हुजूर, एक ही बात है। एक बोतल में चार ग्लास शराब है। जब तक मनुष्य इसे नहीं पीता, तब तक यह कुछ नहीं है। इसी कारण मैंने कहा था कि यह कुछ नही है।

जिसने एक ग्लास पी ली वह कुत्ता बन जाता है। कुत्ता के आगे जो भी जाता है, उसी को वह भौंकने लगता है। वह नहीं देखता कि कौन आदरणीय है और कौन अनादरणीय है? एक ग्लास पीने पर आदमी भी ऐसा ही बन जाता है। प्रमाण चाहिए तो आप अपनी कल की बात याद कीजिए, जो आपने कल उसे कही थी। इसलिए यह शराब नहीं, कुत्ता है।

बादशाह—ठीक, यह घोड़ा कैसे है?

वजीर—दूसरा ग्लास पीते ही आदमी घोड़ा बन जाता है। जैसे घोड़ा हींसता रहता है, घोड़ी को देखकर बेकाबू हो जाता है वही दशा आदमी की होती है। उसमे बुद्धि नहीं रहती। इसके अतिरिक्त जैसे घोड़ा सवारी दे सकता है, दूसरे पर सवारी कर नहीं सकता, इसी प्रकार मनुष्य शराब पीकर दूसरे के अधीन हो जाता है; दूसरे को अपने अधीन नहीं कर सकता।

बादशाह—अच्छा, इसे हाथी क्यों कहा?

वजीर—तीसरा ग्लास पीने पर आदमी हाथी सरीखा मस्त हो जाता है। उसे पता नहीं चलता कि कौन उस पर सवारी कर रहा है? वह कहाँ जा रहा है? कितने अंकुश पड़ रहे हैं?

बादशाह—तो फिर 'कुछ नही' क्यों कहा?

वजीर—इस बोतल की शराब का चौथा प्याला पीने पर मनुष्य मुर्दा-सा हो जाता है। चाहे जहाँ बेभान, संज्ञाहीन होकर पड़ जाता है। इसीलिए मैंने कहा—कुछ नहीं है। आप इसे चाहे

शराब कहें, मगर मैं तो इसे कुत्ता, घोड़ा, हाथी और मुर्दा ही कहना ठीक समझता हूँ।

यह सुनकर बादशाह बहुत प्रसन्न हुआ। उसने उसी दिन से शराब पीना त्याग दिया।

मित्रो! बादशाह ने द्रव्यमदिरा का ही त्याग किया, मगर आप भावमदिरा का भी त्याग करें। भावमदिरा, द्रव्य-मदिरा से अनन्तगुणी हानि करती है। वह भावमदिरा है—मोह! मोह में बड़ी ताकत है। इसके प्रभाव से अनन्त शक्ति का धनी आत्मा भी कीड़ा-मकोड़ा और घास जैसी दशा को प्राप्त होता है।
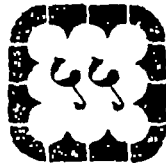
अनुकम्पा

मगध-सम्राट् श्रेणिक के पुत्र मेघकुमार अपने पूर्व भव में हाथी की योनि मे थे। वह हाथी से मनुष्य कैसे हो गए? और मनुष्य भी मामूली नहीं, राजकुमार! राजकुमार भी मगध के सम्राट् श्रेणिक के यहाँ!

यह सब अनुकम्पा का ही प्रताप था!

श्री ज्ञातासूत्र मे उनका वर्णन है। वह इस प्रकार है:— मेघकुमार ने दावानल के प्रकोप से बचने के लिए जंगल मे चार कोस का एक मण्डल बनाया। चार कोस के इर्दगिर्द जमीन मे एक तिनका भी नहीं रहने दिया। उसने सोचा—जब यहाँ जलने योग्य कोई चीज ही न होगी तो आग किसमे लगेगी?

जङ्गल मे आग लगी तब हाथी अपने परिवार के साथ उसी मण्डल में आकर खडा हो गया। जंगल के और-और पशु भी अपने प्राणों की रक्षा के लिए उस मण्डल मे आकर भरने

लगे। हाथी चाहता तो दूसरे पशुओं को अपने मण्डल से बाहर निकाल सकता था। उसी ने लगातार कई वर्षों तक कड़ी मिहनत करके मण्डल तैयार किया था। दूसरों को उसमें घुसने का अधिकार क्या था? मगर हाथी ने ऐसा नहीं सोचा। वह सोचने लगा—'जैसे मैं दुःख से बचना चाहता हूँ, उसी तरह यह प्राणी भी बचना चाहते हैं। जैसे मुझे दुःख अप्रिय है, वैसे ही इन्हें भी दुःख प्यारा नहीं लगता। जैसी मेरी आत्मा वैसी ही इनकी भी है।' इस प्रकार सोच कर उसने किसी को नहीं निकाला।

हाथी ने तो अपने मण्डल में से किसी को नहीं निकाला, सबको आने दिया, लेकिन क्या आप किसी गरीब को अपने यहाँ आश्रय देते हैं? यह तो नहीं कहते कि—निकल यहाँ से, तेरे बाप का घर है? जिसके हृदय में अनुकम्पा होगी, वह ऐसा कदापि नहीं कहेगा।

सारा मंडल जीवों से भर गया। हाथी के पैरों के बीच जो जगह थी वह भी खाली नहीं रही। सारा मंडल ठसाठस भर गया था, कहीं तिल धरने की जगह नहीं थी। हाथी सन्तोष के साथ खड़ा था। इतने जीवों की प्राणरक्षा हो रही है, इस विचार से उसका हृदय एक अनूठे ही हर्ष का अनुभव कर रहा था।

प्रश्न हो सकता है कि प्रकृति से ही विरोधी जीव एक जगह कैसे रह सकते हैं? इसका उत्तर यह है कि घोर विपत्ति के अवसर पर पारस्परिक वैर-विरोध विस्मृत हो जाता है। महाकवि कालीदास ने ग्रीष्म ऋतु का वर्णन करते कहा है :—

फणी मयूरस्य तले निषीदति ।

अर्थात्–नीचे की गरम जमीन और ऊपर से पड़ने वाली गरम सूर्य-किरणों से घबराया हुआ साँप, मयूर के नीचे–छाया में बैठ जाता है।

तो उस मंडल मे सभी प्रकार के जीव–जन्तु घुसे थे। हाथी के लिए केवल इतनी ही जगह थी कि वह अपने चार पैर रखकर खडा रहे। फिर भी वह सन्तुष्ट था। हाथी इस प्रकार खड़ा था कि उसके शरीर में खुजली चली। उसने खुजली मिटाने के लिए ज्यो ही एक पैर ऊपर उठाया और जगह खाली हुई कि वहाँ एक खरगोश आकर बैठ गया।

हाथी चाहता तो खरगोश को कुचल सकता था, या कम से कम क्रोध तो उसे आ ही सकता था। वह सोच सकता था कि मैने चार कोस लम्बा–चौड़ा मंडल बनाया और चार पैर रखने की भी जगह मुझे नहीं मिल रही है? मगर हाथी का अन्त करण तो करुणा के रस मे डूबा था। वह एक पैर ऊँचा रखकर सिर्फ तीन ही पैरो के सहारे खडा हो गया। खरगोश की अनुकम्पा के लिए उसने स्वयं कष्ट झेला, मगर खरगोश को कष्ट नहीं दिया। शास्त्र मे कहा है:—

एयं खु णाणिणो सारं, ज न हिंसइ किंचणं ।

अहिंसा समय चेव, एयावन्तं वियाणिया ॥

इस कथन के अनुसार सब शास्त्रो का सार अनुकम्पा शास्त्र सुन कर भी जिनके हृदय मे अनुकम्पा नहीं आई,

जो कम से कम अपने घर में भी अनुकम्पा का व्यवहार नहीं कर सकते, उन्होंने शास्त्र क्या सुना है।

हाथी के हृदय में नैसर्गिक अनुकम्पा भाव था। वह बीस पहर तक एक पैर ऊँचा उठाये खडा रहा। जब आग शान्त हो गई और मंडल में के जीव निकल कर बाहर चले गये, तब हाथी ने अपना पैर नीचे रखने की चेष्टा की। मगर वह सफल नहीं हुआ। बीस पहर तक पैर ऊपर रहने के कारण अकड गया था, वह जमीन पर टिक न सका और हाथी गिर पड़ा। गिर पड़ने पर भी उसने अनुकम्पा के लिए कुछ भी पश्चात्ताप नहीं किया। उसे यह विचार नहीं आया कि खरगोश क्या मेरा सगा था कि मैंने उसे खडा रहने दिया और मुझे इतना कष्ट भोगना पड़ा। मैंने उसे लतिया क्यों नहीं दिया? उसने यह न सोचकर अपने कृत्य के लिए सन्तोष ही माना।

भगवान् महावीर ने मेघकुमार को बतलाया मेघ, इसी अनुकम्पा के प्रताप से तेरा उद्धार हुआ है। जीवरक्षा की बदौलत ही तू राजा श्रेणिक के घर जन्म लेकर संयम ग्रहण करने के लिए सौभाग्यशाली बन सका है।

परार्थ राज्य

स्वार्थ के लिए राज्य करने मे और प्रजा की सेवा के लिए राज्य करने मे बडा अन्तर है। जो राजा, प्रजा की सेवा के लिए राज्य करना है, वह राज्यकोष को प्रजा का पैसा समझता है। वह उसमे से अपने लिए एक पैसा भी नहीं लेता।

मुगलो से लड़ते-लड़ते राणा प्रताप की शक्ति क्षीण हो गई। न उनके धन रहा और न सेना रही। विवश और निराश होकर राणा मेवाड़ त्यागने का विचार करने लगे। वह सोचते है—पिता ने केवल चित्तौड़ ही खोया था, मगर मै सारा मेवाड़ ही खो बैठा हूँ। मुझे अब इस भूमि पर रहने का अधिकार नहीं है। मै अब इस योग्य भी नही रहा कि अपनी पत्नी की और बाल-बच्चो की भी रक्षा कर सकूँ। चलूँ, चित्तौड़ तथा सारे मेवाड़ को अन्तिम नमस्कार करके विदा होऊँ।

राणा प्रताप एक पहाड़ी पर चढ़कर मेवाड़ भूमि को

अन्तिम नमस्कार करने को उद्यत होते हैं। इतने में ही दूर से एक आदमी सिर पर गठरी लिए आता दिखाई देता है। राणा प्रताप उधर दृष्टि किये खड़े रहते हैं। आदमी के कुछ पास आने पर स्पष्ट दिखाई देता है—अहा! यह तो मेरा मन्त्री भामाशाह है? सोचा-सिर पर कुछ खाने पीने की वस्तुएँ लाया होगा। मगर वह अब किस काम की? जिस भूमि को मैंने परतन्त्रता की बेड़ी पहना दी, जिसका मैं उद्धार नहीं कर सका, उसका नमक खाने का मुझे क्या अधिकार है?

इतने में भामाशाह निकट आ पहुँचे। गठरी उतार कर राणा के चरणों में रख दी। राणा को झुककर प्रणाम किया। फिर गद्गद हृदय से कहा—कृपानाथ, यह तुच्छ भेंट स्वीकार कीजिए।

राणा—भामाशाह! तुम्हारी स्वामी-भक्ति प्रशंसनीय है, मगर मैं कलंकित हूँ। मैं मेवाड़ माता की परतन्त्रता के बन्धन नहीं काट सका। मैं अब इस भूमि का नमक नहीं खा सकता।

भामाशाह—अन्नदाता! सूर्य के आगे बादली आ जाने से कुछ समय के लिए सूर्य का प्रकाश मन्द पड़ जाता है। पर बादली के हटने पर वह फिर सारे संसार में अपने स्वाभाविक प्रखर तेज से चमकने लगता है।

इतना कह कर भामाशाह गठरी खोलता है और वह विशाल धनराशि देखकर प्रताप चकित रह जाते हैं।

राणा को चकित देखकर भामाशाह कहते हैं—महाराणा! यह धन मेरा नहीं, आपका ही है। मैं किसी की गर्दन काटकर

नहीं उड़ा लाया हूँ। इसे स्वीकार कीजिए और मेवाड़ के उद्धार का कार्य फिर आरम्भ कीजिए।

महाराणा फिर मेवाड़ के उद्धार मे लग जाते हैं वे एक पाई भी उसमे से अपने निज के लिए नही लेते।

मित्रो ! इसे कहते है परार्थ राज्य ! यह है शान्तिरक्षा के लिए राज्य !

देशसेवा की एक मात्र भावना से प्रेरित होकर अपने हाथ मे शासन-सूत्र ग्रहण करने वाला मनुष्य धन्य है ! आज हमारे देश मे ऐसे सेवको की कितनी आवश्यकता है !

महान् पुरुष

एक वजीर अपने घोड़े पर सवार होकर जंगल में जा रहा था। रास्ते में किसी के कराहने की आवाज उसके कानों में पड़ी। वजीर ने घोड़ा थामा और इधर-उधर नजर फेंकी। मगर उसे कोई दिखाई नहीं दिया। मगर उसके चित्त में कुतूहल हुआ और दया की भावना भी जागृत हुई। तब वह उधर ही चल पड़ा जिधर से आवाज आई थी।

थोड़ी-सी दूर जाने पर वजीर ने देखा-एक मनुष्य जमीन पर पड़ा है। उसके शरीर पर जगह-जगह मार-पीट के चिह्न बने हैं। एक टांग टूट गई है और उसमें से लोहू बह रहा है। मक्खियाँ भिनभिना रही हैं।

वजीर देखते ही घोड़े से नीचे उतर पड़ा। उसने अपने दुपट्टे से उस आहत मनुष्य के पैर पर पट्टी बाँधी। उसके बाद कहा-आप यहाँ कैसे पड़े हैं? इस घोड़े पर बैठ जाइए और शहर चलिए। आदमी चुपचाप घोड़े पर बैठ गया। वजीर घोड़े

नहीं उड़ा लाया हूँ। इसे स्वीकार कीजिए और मेवाड के उद्धार का कार्य फिर आरम्भ कीजिए।

महाराणा फिर मेवाड के उद्धार मे लग जाते है वे एक पाई भी उसमे से अपने निज के लिए नही लेते।

मित्रो! इसे कहते है परार्थ राज्य! यह है शान्तिरक्षा के लिए राज्य!

देशसेवा की एक मात्र भावना ने प्रेरित होकर अपने हाथ मे शासन-सूत्र ग्रहण करने वाला मनुष्य धन्य है! आज हमारे देश मे ऐसे सेवकों की कितनी आवश्यकता है!
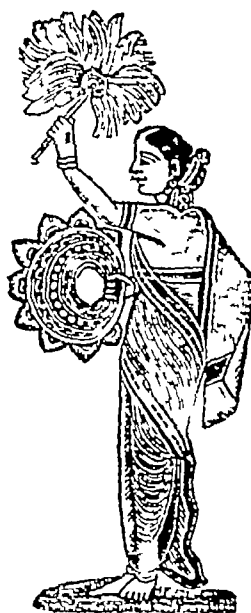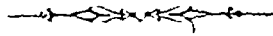
महान् पुरुष

एक वजीर अपने घोडे पर सवार होकर जंगल में जा रहा था। रास्ते में किसी के कराहने की आवाज उसके कानों में पडी। वजीर ने घोड़ा थामा और इधर-उधर नजर फैंकी। मगर उसे कोई दिखाई नहीं दिया। मगर उसके चित्त में कुतूहल हुआ और दया की भावना भी जागृत हुई। तब वह उधर ही चलपड़ा जिधर से आवाज आई थी।

थोड़ी-सी दूर जाने पर वजीर ने देखा-एक मनुष्य जमीन पर पडा है। उसके शरीर पर जगह-जगह मार-पीट के चिह्न बने हैं। एक टांग टूट गई है और उसमें से लोहू बह रहा है। मक्खियाँ भिनभिना रही है।

वजीर देखते ही घोड़े से नीचे उतर पडा। उसने अपने दुपट्टे से उस आहत मनुष्य के पैर पर पट्टी बाँधी। उसके बाद कहा-आप यहाँ कैसे पडे है? इस घोड़े पर बैठ जाइए और शहर चलिए। आदमी चुपचाप घोड़े पर बैठ गया। वजीर घोड़े

की लगाम पकड़ कर आगे-आगे चलने लगा।

कुछ दूर जाने पर वजीर ने उसके चेहरे की तरफ देखा। चेहरा प्रसन्न दिखाई दिया। तब पूछा-कहो भाई। तबीयत कैसी है?

उसने कहा-जनाब, अब अच्छी है। इस कृपा के लिए मैं आपको धन्यवाद देता हूँ।

वजीर धन्यवाद तो ईश्वर को दीजिए। मैं किस योग्य हूँ? आपने बहुत तकलीफ सही है। दूसरा कोई होता तो शायद घबराहट का मारा प्राण छोड़ देता।

वह बोला-आप ठीक कहते है, पर रोने-धोने से क्या होता है। मौत आ जाय तो हाय-हाय करने से भी वह नही रुकेगी। रोने-चीखने से दुख दूर तो होता नही है, यह तो ईश्वर को भूल जाना है।

वजीर- आप तो कोई महान् पुरुष मालूम होते है।

उसने कहा-महान् पुरुष तो आप है कि जानते नहीं, पहिचानते नही, फिर भी मेरी सहायता कर रहे है।

भय
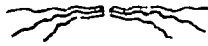
बगदाद के एक किसान ने एक विचित्र दृश्य देखा। उसने पूछा—'तू कौन है?'

उत्तर मिला—महामारी रोग!'

किसान—कहाँ जा रही है?

महामारी—बगदाद।

किसान—क्यों?

महा०—भक्ष्य के लिए।

किसान—मुझे भक्षण क्यों नहीं कर लेती?

महा०—मैं जब तेरे सामने खड़ी हूँ तब भी तू नहीं डरता है। फिर तेरा भक्षण कैसे करूँ?

किसान—बगदाद में कितना भक्ष्य लेगी?

महा०—पाँच हजार मनुष्यों का।

किसान—लौट कर इधर आएगी?

महा०—हाँ, आऊँगी।

वह गई और कुछ दिनों बाद फिर उसी किसान से मिली। किसान ने पूछा—कौन ?

महा०—वही महामारी।

किसान—भक्ष्य ले आई ?

महा०—हाँ।

किसान—कितना लाई ?

महा०—पचास हजार मनुष्यों का।

किसान—झूठी कहीं की! मुझसे पाँच हजार कहा था और लाई पचास हजार!

महा०—मैं क्या करूँ ? मैंने तो पाँच हजार ही लिए, बाकी पैंतालीस हजार तो अपने आप ही डर के मारे मर गए।

सिकन्दर

परिग्रह-परिमाण-व्रत मे विस्तीर्ण मर्यादा रखने से पारलौकिक हानि तो है ही, साथ ही मर्यादा मे रखा हुआ धन कभी न कभी तो त्यागना ही होता है। उसको कोई साथ तो ले नहीं जा सकता। सिकन्दर, अपने समय का बहुत बड़ा बादशाह माना जाता था। उसने यूरोप और एशिया का अधिकांश भाग जीत लिया था, और वह उस भाग का बादशाह था। फिर भी वह मरने पर उस-राज्य संपदा मे से कुछ भी अपने साथ न ले जा सका। सब कुछ यहीं रह गया। सिकन्दर ने यह देख कर, कि मैं मर रहा हूँ और कोई सम्पत्ति मेरा साथ न देगी, यह आज्ञा दी कि मेरे दोनों हाथ कफन से बाहर रखे जावें। उसने अपने चोबदार को इस आज्ञा का कारण भी बता दिया था। इस प्रकार की आज्ञा देकर, सिकन्दर मर गया। उसका जनाजा निकला। सिकन्दर के दोनों हाथ जनाजे से बाहर निकले हुए थे। रीति-परम्परा के विरुद्ध बादशाह के हाथ जनाजे से बाहर निकले हुए देख कर, लोगो को बहुत आश्चर्य हो रहा था।

जब जनाजा चौराहे पर पहुँचा, तब चोबदार ने आवाज देकर सब लोगों से कहा, कि आपके बादशाह के हाथ जनाजे से बाहर क्यो निकले हुए हैं ? इसका कारण सुन लीजिये। सब लोग चोबदार की बात सुनने के लिए खड़े हो गये। चोबदार कहने लगा कि बादशाह ने अपने हाथ जनाजे से बाहर रखने की आज्ञा यह बताने के लिए दी थी, कि 'मैंने अनेक देशों को जीता, बहुत-सी सम्पत्ति एकत्रित की और इसके लिए बहुत लोगों को मारा, लेकिन मै मौत को न जीत सका। इस कारण आज मैं तो जा रहा हूँ, परन्तु जिस राज्य-सम्पदा के लिए मैंने यह सब किया था, वह यहीं रह गई है। देख लो, ये मेरे दोनों ही हाथ खाली है, इसलिए जैसी गल्ती मैंने की, वैसी गल्ती और कोई मत करना।'

चोबदार द्वारा सिकन्दर की कही हुई बात सुन कर, लोगो को बहुत प्रसन्नता हुई। सब लोग, इस उपदेश के लिए सिकन्दर की प्रशंसा करने लगे। इस घटना के कारण ही यह कहा जाता है कि—

लाया था क्या सिकन्दर और साथ ले गया क्या ?
थे दोनों हाथ खाली बाहर कफन से निकले।

तात्पर्य यह कि चाहे कैसी भी बड़ी सम्पत्ति हो, मरने के समय तो छोडनी ही होगी; और जिसके पास जितनी ज्यादा सम्पत्ति है, मरने के समय उसको उतना ही ज्यादा दु:ख होगा। ल पहले ही अधिक से अधिक धन-सम्पदा क्यों न त्याग जावे, जिसमे मरने के समय भी आनन्द रहे और मरने के पश्चात् भी।

टाल्सटाय

कल एक सज्जन (श्री रामनरेश त्रिपाठी) के सामने मैंने टाल्सटाय का जिक्र किया। तब उन्होंने उसके जीवन की एक बात मुझे सुनाई। उसके पतित जीवन का उत्थान किस प्रकार हुआ, यह दिखलाने के लिए ही मैं उस घटना का उल्लेख कर रहा हूँ। टाल्सटाय का पतन इतना अधिक हो चुका था कि उसके कुकृत्यो की पराकष्ठा हो चुकी थी। शायद ही कोई कुकर्म शेष रहा होगा, जिसका टाल्सटाय ने सेवन न किया हो। ऐसी पतित आत्मा एक वेश्या की घटना से जागृत हो उठी।

एक सुन्दरी कुंवारी कन्या को टाल्सटाय ने धन का लोभ देकर भ्रष्ट किया था। वह उस समय युवक तो था ही, धन भी उसके पास चालीस लाख रूबेल का था और साथ ही सत्ता भी प्राप्त थी। एक रूबेल करीब डेढ़ रुपये के बराबर माना जाता है। टाल्सटाय राजघराने मे जन्मा था, अतएव अधिकार भी उसे प्राप्त था।

यौवनं धनसम्पत्तिः प्रभुत्वमविवेकिता ।
एकैकमप्यनर्थाय किमु यत्र चतुष्टयम्[?]

जवानी, धन, अधिकार और अविवेक मे से कोई एक भी अनर्थ का कारण हो जाता है। जहाँ चारो मिल जाएँ वहाँ तो कहना ही क्या है? यह चाण्डाल-चौकड़ी सभी अनर्थों का कारण बन जाती है। प्रथम तो युवावस्था को ही शान्तिपूर्वक विताना कठिन है। फिर ऊपर से धन-सम्पत्ति और अधिकार मिल जाय तो उसकी अनर्थकरी शक्ति वैसे ही बढ़ जाती है, जैसे तीन इकाइयाँ मिल जाने पर एक सौ ग्यारह हो जाते है। इन तीनो के होने पर भी अगर विवेक हुआ तो वह इन्हें ठीक रास्ते पर लगा देता है। अगर अविवेक हुआ तो मत पूछिये बात ! फिर तो अनर्थ की सीमा नहीं रहती।

टाल्सटाय को तीनों शक्तियाँ प्राप्त थीं और ऊपर से अविवेक था। इस कारण उसने कुंवारी कन्या को भ्रष्ट कर दिया। कन्या गर्भवती हो गई। घर वालो ने सगर्भा समझ कर उसे घर से निकाल दिया। कुछ दिन तक तो वह इधर-उधर भटकती रही, मगर दूसरा मार्ग न मिलने से उसने वेश्यावृत्ति अंगीकार कर ली। कहा है—

विवेकभ्रष्टाना भवति विनिपातः शतमुखः।

जो एक बार विवेक से भ्रष्ट हो जाता है उसका पतन होता ही चला जाता है। कोई भी स्त्री जब पतित होती है और उसकी पवित्रता मलीनता के रूप मे परिणत हो जाती है तो फिर उसके पतन का ठिकाना नही रहता। वेश्या के संबध में भी

यही बात है। वेश्या किन-किन नीच कार्यों में प्रवृति नहीं करती, यह कहना कठिन है। इस वेश्या ने भी किसी धनिक को अपने चंगुल में फांस लिया और धन के लोभ में पडकर उसे मार डाला। पुलिस ने पता लगा लिया और वेश्या अदालत में पेश की गई। संयोगवश उस अदालत का न्यायाधीश वही टाल्सटाय था, जिसने उसे भ्रष्ट किया था और जिसकी बदौलत उसे वेश्यावृत्ति स्वीकार करने के लिए बाध्य होना पड़ा था। वेश्या ने तो उसे नहीं पहचान पाया, मगर वह वेश्या को पहचान गया। टाल्सटाय ने उस वेश्या को धैर्य बन्धाकर हत्या के विषय में पूछा। वेश्या ने हत्या करने का अपराध स्वीकार करते हुए कहा—'मुझे एक पापी ने धन का लोभ देकर भ्रष्ट किया। उस समय मै अबोध थी और उस पाप के परिणाम को नहीं समझ सकी थी। इसी कारण मैं उसके चगुल में आ गई। मैं गर्भवती हुई। घर से निकाली गई। निरुपाय होकर मैंने वेश्यावृत्ति स्वीकार कर ली। एक दूसरी वेश्या की बातों में आकर धन के लिए मैंने इस धनिक की हत्या की।'

वेश्या का बयान सुनते-सुनते टाल्सटाय घबरा उठा। उसकी अन्तरात्मा प्रश्न करने लगी—इस हत्या के लिए कौन उत्तरदायी है—वेश्या या मैं? वास्तव मे इस पाप के लिए यह अपराधिनी नहीं है। अपराधी मैं हूँ।

लोग अपने अपराधो को छिपाना जानते हैं, उन्हें स्वीकार करना नहीं आता। इस अविद्या से आज संसार पतित हो रहा है।

टाल्सटाय अपने पाप की भीषणता का विचार करके इतने घबराये कि पसीने से तर हो गये। पास मे बैठे हुए दूसरे

न्यायाधीश उसकी यह दशा देखकर आश्चर्य करने लगे। टाल्सटाय की परेशानी और घबराहट का कारण समझ में नहीं आया। टाल्सटाय ने अपना आसन छोड़ दिया। उनकी जगह दूसरा जज अभियोग का विचार करने के लिए बैठा। टाल्सटाय ने जाते हुए अपने स्थानापन्न जज से कहा—किसी भी उपाय से इस वेश्या को फांसी से बचा लेना।

टाल्सटाय एकान्त मे जाकर जी भर रोये और अपने अपराध के लिए पश्चात्ताप करने लगे। वह सोचने लगे—इस वेश्या के समस्त पापो का कारण मै ही हूँ। वेश्या पापिनी नहीं, मैं पापी हूँ। मैने ही इसे पापकार्य मे प्रवृत्त किया है। ईश्वर का उपदेश दूसरी जगह नही, उन बन्धुओ से ही मिल सकता है, जिन्हे हमने हानि पहुँचाई है। जिन्हे हमने हानि पहुँचाई है, वे हमारे विषय मे क्या कहते होगे? इस वेश्या ने यथार्थ ही कहा है।

अदालत ने वेश्या को साइबेरिया भेज दिया। साइबेरिया रूस का वह भाग है जो वहाँ का काला पानी समझा जाता है और जहाँ शीत अधिक पड़ता है।

टाल्सटाय सोचने लगे—वेश्या को तो दण्ड मिल गया। पर असली अपराधी बच गया। मगर दूसरे की निगाहों से बच गया तो क्या हुआ, मै अपनी निगाह से कैसे बच सकता हूँ? टाल्सटाय ने साइबेरिया के अधिकारियों से मिल-जुल कर उस वेश्या को सहायता पहुँचाना आरम्भ किया। उसने यह भी प्रबन्ध कर लिया कि वेश्या के समाचार उसे मिलते रहें। यद्यपि टाल्सटाय उसकी यथायोग्य सहायता कर रहा था,

किन्तु किसी के पूछने पर वह यही उत्तर देती थी कि एक दुष्ट ने मुझे भ्रष्ट कर दिया था और उसी पापी का पाप मैं यहाँ भोग रही हूँ।

वेश्या के यह उद्‌गार टाल्सटाय को मालूम होते रहते थे। दूसरा होता तो कह सकता था—क्या मैं अकेला ही पापी हूँ ? उसने भी तो पाप किया था। उस पापिनी की मैंने जान बचाई और सहायता भी कर रहा हूँ, इतने पर भी वह ऐसा कहती है ! लेकिन इस घटना से टाल्सटाय की आँखें खुल चुकी थीं। वह उस वेश्या की बातें सुनकर पश्चात्ताप करते और उसकी अधिकाधिक सहायता करते थे। वह सोचते-मेरा ही पाप उसके पास पहुँचकर ऐसा कहला रहा है। वह मुझे अप-शब्द नहीं कहती वरन् मंगल-उपदेश दे रही है। धीरे-धीरे टाल्सटाय के जीवन में आमूल परिवर्तन हो गया।

सन्देह किया जा सकता है कि कहीं गालियों से या वेश्या से भी उपदेश मिल सकता है ? इसका उत्तर यही है कि हम सब मे और वेश्या में मूल तत्त्व तो एक ही है। मगर उसे समझने के लिए गहराई मे घुसना पड़ता है। इसी प्रकार आत्मा और परमात्मा में भी मूल तत्त्व समान है। उसे खोज लेने, उस तक पहुँचने और प्राप्त करने के लिए जिस उपाय की आवश्यकता है, वह आचार्य मानतुंग ने प्रकट कर दिया है।

मित्रो ! लोग दूसरों की बुराई देखना छोड़कर अपनी बुराइयाँ देखो। यह देखो कि आपने दूसरों को पतित ही किया है या किसी का उत्थान भी किया है ? इस बात पर विचार करने से आपका उत्थान होगा। ईश्वर दूर नहीं है। जिनको

तुमने पतित किया है, उनके अन्तःकरण से निकलने वाली ध्वनि अपने कानो से सुनो और सोचो कि वह तुम्हारे विषय में क्या कहते हैं ?

टाल्सटाय ने वेश्या को भ्रष्ट किया था। अगर आपके जीवन मे ऐसा कोई काला धब्बा नहीं है तो आप भाग्यशाली हैं। लेकिन दूसरे पदार्थों को तो आप भ्रष्ट करते ही हैं। यह कपड़े जब तक आपने नही पहने थे पवित्र माने जाते थे, मगर आपके पहन लेने पर यह निर्माल्य हो गये। इसी प्रकार आप स्वादिष्ट और सुगंधित भोजन पेट मे डालते है मगर पेट में पहुँचकर उसकी क्या स्थिति हो जाती है? क्या आप पवित्र वस्तु को अपवित्र करने के लिए ही पैदा हुए है ? मित्रो! दूसरे के कल्याण मे अपना कल्याण मानने से आत्मा का उद्धार होने मे देर नही लगती। इस लिए शास्त्र मे कहा गया है—

परोपकाराय सता विभूतयः ।

अर्थात्—सत्पुरुषों की विभूतियाँ परोपकार के लिए होती है।

सुबुकतगीन

सुबुकतगीन बादशाह का वृत्तान्त इतिहास मे आया है। वह अफगानिस्तान का बादशाह था। वह एक गुलाम खानदान में पैदा हुआ था और सिपाही था। एक बार वह ईरान से अफगानिस्तान की ओर घोड़े पर सवार होकर आ रहा था। मार्ग की थकावट से या किसी अन्य कारण से उसका घोड़ा मर गया। जो समान उससे उठ सका वह तो उसने उठा लिया और शेप वहीं छोड़ दिया। मगर उसे भूख इतनी तेज लगी कि व्याकुल होने लगा। इसी समय सामने की ओर से हिरनों का एक झुण्ड आ निकला। उसने झपट कर उस झुण्ड में से एक बच्चे की टांग पकड ली। झुण्ड के और हिरन तो भाग गये मगर उस बच्चे की माँ वहीं ठिठक गई और अपने बच्चे को दूसरे के हाथ मे पड़ा देख कर आँसू बहाने लगी। अपने बालक के लिए उसका दिल फटने लगा।

बच्चे को लेकर सुबुकतगीन एक पेड़ के नीचे पहुँचा और उसे भून कर खाने का विचार करने लगा। उसने ने

बच्चे की टांगें बांध दीं ताकि वह भाग न जाय। इसके बाद वह कुछ दूर एक पत्थर के पास जाकर अपनी छुरी पैनी करने लगा। इतने मे मृगी अपने बच्चे के पास आ पहुँची और वात्सल्य के वश होकर बच्चे को चाटने लगी, रोने लगी और अपना स्तन उसके मुँह की ओर करने लगी। बच्चा बेचारा बँधा हुआ तड़फ रहा था। वह अपनी माता से मिलने और उसका दूध पीने के लिए कितना उत्सुक था, यह कौन जान सकता है? मगर विवश था। टांगे बँधी होने के कारण वह खड़ा भी नहीं हो सकता था। अपने बच्चे की यह दशा देखकर मृगी की क्या हालत हुई होगी, यह कल्पना करना भी कठिन है। माता का भावुक हृदय ही मृगी की अवस्था का अनुमान कर सकता है। मगर वह भी लाचार थी। वह आँसू बहा रही थी और इधर-उधर देखती जाती थी कि कोई किसी ओर से आकर मेरे बालक को बचा ले!

इसी समय छुरी पैनी करके सुबुक्तगीन लौट आया। बच्चे की मां हिरनी यहां भी उसके पास आ पहुँची है, यह देखकर उसको आश्चर्य हुआ। हर्ष और विषाद की अनुभूति हृदय में होती है मगर चेहरे पर उस अनुभूति का असर पड़े विना नहीं रहता। उसने हिरनी के चेहरे पर गहरे विषाद की परछाई देखी और नेत्रो मे आंसू देखे। यह देखकर उसका हृदय भी भर आया। वह सोचने लगा—मैं इन मृगों को नाचीज समझता था, बेजान मानता था और सोचता था कि यह मनुष्य के खाने के लिए ही खुदा ने बनाये है। मगर आज म हुआ कि मै भारी भ्रम मे था। कौन कह सकता है कि हिरनी मे जान नहीं है? जो इसे बेजान कहते है, समझना

चाहिए कि वह खुद ही बेजान है। अगर हिरनी में जान नहीं है तो इन्सान में भी जान नहीं है। अगर इन्सान मे जान है तो फिर हिरनी मे भी जान है। अगर हिरनी को मनुष्य की भाषा प्राप्त होती और मैं इससे पूछता तो यह तीन लोक के राज्य से भी अपने बच्चे को बड़ा बतलाती। मेरे लिए यह बच्चा दाल रोटी के बराबर है, मगर जिसके हृदय मे इसके प्रति गहरा प्रेम है, उसका हृदय इस समय कितना तडफता होगा ? अपना खाना-पीना छोडकर और प्राणों की परवाह न करके हिरनी यहाँ तक भागी आई है। इस बच्चे के प्रति इसके हृदय में कितना प्रेम होगा ? धिक्कार है मेरे खाने को ! जिससे दूसरे को घोर व्यथा पहुँचती हो, वह भलेमानुस का खाना नहीं हो सकता। अगर मैं अपना पेट भरने के लिए इस बच्चे की जान ले लूँगा तो इसकी इस स्नेहमयी माता को कितनी व्यथा होगी ! अब चाहे मैं भूख का मारा मर जाऊँ मगर इस अपनी माता के दुलारे को नहीं खाऊँगा।

आखिर उसने बच्चे को छोड दिया। बच्चा अपनी माता से और माता अपने बच्चे से मिलकर उछलने लगे। यह स्वर्गीय दृश्य देखकर सुबुकुतगीन की प्रसन्नता का पार न रहा। इस प्रसन्नता मे वह खाना-पानी भूल गया। आज ही उसकी समझ मे आया कि प्राणी पर दया करने से कितना आनन्द होता है ?

जगली पशुओं के डर से सुबुकुतगीन रात के समय पेड़ पर चढ़ कर सोया करता था। उस दिन भी वह पेड़ पर ही सोया था। स्वप्न मे उसके पैगम्बर ने उससे कहा—'तूने बच्चे पर दया करके बहुत अच्छा काम किया है। तू अफगानीस्तान का बादशाह होगा।' उसके पैगम्बर की भविष्यवाणी सच्ची

हुई। कुछ दिनो वाद वह सचमुच ही अफगानीस्तान का बादशाह वन गया।

अव आप विचार कीजिए कि बच्चे से उत्कट प्रेम होने के कारण हिरनी ने प्राण की परवाह नहीं की तो परमात्मा से प्रेम होने पर मनुष्य को कैसा होना चाहिए? जिसके हृदय में परमात्मा के प्रति सच्ची भक्ति होगी वह धन-दौलत को बड़ी चीज नहीं समझेगा। उसकी बुद्धि झूठ-कपट आदि बुरे कामों की ओर कभी नहीं जाएगी। भक्त-हृदय भलीभांति समझता है कि यह सब कुत्सित काम भक्ति का विनाश करने वाले हैं। जो ऐसी भक्ति तक पहुँच जाता है, उसका कल्याण ही कल्याण होता है।
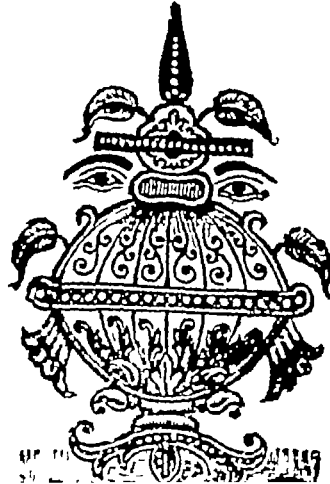
खादी

एक भाई ने मेरे शरीर पर खादी देखकर कहा—'पूज्यजी के शरीर पर खादी !' उसे शायद यह सोचकर आश्चर्य हुआ कि इतने धनिक समाज का आचार्य होकर मैं खादी क्यों पहनूँ ? मगर उस भोले भाई को पता नहीं कि खादी का कितना महत्त्व है ? महावीर-चरित्र के अन्त में, उसके रचयिता हेमचन्द्राचार्य का जीवन चरित दिया गया है। उसमें लिखा है कि आचार्य हेमचन्द्र एक बार अजमेर से पुष्कर गये थे। वहाँ एक श्राविका ने अपने हाथ से सूत कात कर खादी बुनी थी। खादी तैयार हुई ही थी कि हेमचन्द्राचार्य गोचरी के लिए वहाँ पहुँचे। श्राविका ने बड़ी श्रद्धा-भक्ति के साथ आचार्य से खादी लेने की प्रार्थना की। हेमचन्द्राचार्य गुजरात के प्रसिद्ध राजा कुमारपाल के गुरु थे। आपके विचार से हेमचन्द्राचार्य को खादी लेनी चाहिए थी ? पर यह स्वांग तो आप लोगों को ही सूझता है, उन्हें नहीं सूझता था।

हेमचन्द्राचार्य ने बड़े प्रेम से खादी का वस्त्र स्वीकार किया।

उसे पहिन कर विहार करते-करते वे सिद्धपुर पाटन गये, जहाँ राजा कुमारपाल रहता था। राजा अपने साथियों के साथ उनका स्वागत करने आया। वन्दन-नमस्कार आदि करके कुमारपाल ने कहा—'गुरुदेव, कुमारपाल के गुरु के शरीर पर यह खादी शोभा नही देती।'

हेमचन्द्राचार्य—मेरे खादी पहनने से तुम्हे लज्जा मालूम होती है?

कुमारपाल—जी हाँ।

हेम०—यह खादी मेरे संयम को बढ़ाने वाली है। श्राविका बहिन ने बड़े प्रेम से मुझे भेंट की है। ऐसी स्थिति मे तुम्हे लज्जित होने की क्या आवश्यकता है? लज्जा तो राजा को तब आनी चाहिए जब प्रजा भूखी मरती हो और राजा भोग-विलास मे डूबा रहता हो। उनकी दुरवस्था और अपने आमोद-प्रमोद को देखकर लज्जित होना चाहिए, खादी से शर्मिन्दा क्यों होता है?

आचार्य हेमचन्द्र के इस कथन का राजा कुमारपाल पर ऐसा प्रभाव पड़ा कि उसने थोड़े ही दिनो में अपने राज्य में सुधार कर लिया। राजा के सुधारकार्य को देखकर आचार्य हेमचन्द्र ने उस श्राविका को धन्यवाद देकर कहा—यह उस बहिन के प्रेम का ही प्रताप है। उसके दिये कपड़े के निमित से जो सुधार हो पाया वह मेरे उपदेश से भी होना कठिन था।

देशभक्ति

सागर में एक श्रावक थे। वह देशी और विदेशी—दोनों प्रकार की वस्तुओं का व्यापार करते थे। एक वार किसी अङ्गरेज ने उनकी दुकान से चावल खरीदने के लिए अपना नौकर भेजा। दुकानदार के पास दोनों तरह के अच्छे चावल थे, परन्तु देशी चावल अच्छे और सस्ते थे। साहब को अच्छे चावल देने के इरादे से उसने देशी चावल नौकर को दे दिये। नौकर चावल ले, चला गया। साहब ने चावल देखे तो लाल-पीला हो गया। नौकर को कुछ भला-बुरा कहा। अन्त में नौकर को हुक्म दिया- इसी समय जाकर देशी चावल लौटा आओ और विदेशी खरीद लाओ।

भागा-भागा नौकर दुकान पर पहुँचा। सेठजी से सब हाल कहा। सेठजी ने चावल लौटा लिए और चौगुनी कीमत वसूल कर परदेशी चावल तोल दिये।

कुछ दिनों बाद सेठजी की उसी साहब से मुलाकात हुई। सेठजी ने चावलों की अदलीबदली का कारण पूछा। साहब ने

कहा-'विलायती चावल खरीदने से उसकी कीमत हमारे देश वासियों को मिलती है। हम ऐसे मूर्ख नहीं हैं, जो विदेश में आकर अपने देश भाइयो को भूल जाएँ और अपने देश का माल न खरीदें। हमारे लिए स्वदेश प्रथम है—दूसरे देश फिर। हम देश-द्रोह करके अपना जीवन कलंकित नही करना चाहते।'

सेठजी साहब का देशप्रेम देख चकित रह गये। उन्होने तभी से स्वदेशी वस्तुओ का ही व्यापार करने की प्रतिज्ञा कर ली।

पाश्चात्यों के देशप्रेम का एक और उदाहरण जानने योग्य है—

बम्बई मे एक अंगरेज ने अपने नौकर को बूट खरीदने भेजा! नौकर देशी दुकान से, एक सुन्दर बूट की जोड़ी पाँच रुपये में खरीद कर ले गया। उस अंगरेज ने बूट देखे। उसकी निगाह वहाँ गई जहाँ लिखा था—Made in India इन शब्दों को देखते ही अंगरेज आगबबूला हो गया। बोला—'गधे कहीं के, यह देशी बूट क्यो लाया?'

नौकर ने कहा-साहब आप पहन देखे। बूट सुन्दर हैं और टिकाऊँ भी।

साहब-देशी बूट कितने ही सुन्दर और टिकाऊ हों, मुझे नहीं चाहिए। तू यह वापस कर आ। मेरे लिए विलायती बूट, किसी अंगरेज कम्पनी से खरीद ला। उसके मोल की चिन्ता तुझे नहीं करनी है।

नौकर देशी व्यापारी के पास गया और बूट के विषय में आप-बीती सुनाई। उस भले व्यापारी ने बूट लौटा लिए। फिर वह नौकर अंगरेजी कम्पनी मे गया और कई गुनी कीमत चुका-कर बूट-जोड़ा खरीद ले गया। साहब ने बूट देखे। Made in

England देखकर बड़ा प्रसन्न हुआ। नौकर ने डरते-डरते पूछा हुजूर, यह कीमत में भारी हैं, टिकाऊ भी वैसे नहीं हैं और खूबसूरती में भी उतने नहीं हैं। फिर आपने पहले वाले बूट न लेकर यह क्यों पसन्द किये? साहब बोले-इंगलिश कम्पनी से खरीदे हुए बूट मेरे देश की बनी वस्तु है। वह कैसे भी क्यों न हो, मुझे प्रिय है। अपने देश की चीज खरीद कर मैं अपने देश के प्रति प्रेम प्रकट करता हूँ। जिस देश मे मेरा पालण-पोषण हुआ है, उसकी अवगणना मैं कैसे कर सकता हूँ। सात समुद्र पार आकर भी, जब मैं अपने देश की बनी वस्तु देखता हूँ तो देश की सुखद स्मृति मेरे दिल मे हिलोरे मारने लगती है। मेरा मस्तक देश के लिए झुक जाता है। मेरा देश मेरे लिए देव है। मैं देवता की भाँति अपने देश की पूजा करता हूँ।'

यह उदाहरण कल्पित नहीं हैं। यह घटी हुई सच्ची घटनाएँ है। इन उदाहरणों मे हमें राष्ट्रप्रेम और देशभक्ति की जो शिक्षा मिलती है, वह भारतवासियो को सीखना चाहिए। इसमें से अपने 'देश की स्वतंत्रता का मूलमंत्र मिल सकता है। पाश्चात्य लोगों ने देश हमारा देव है और स्वदेशी वस्तु उस देश का प्रसाद है' इस राष्ट्रीय भावना को अपने जीवन में मूर्त्त रूप दिया है। इसी मूर्त्त भावना के कारण वह स्वतन्त्रता का सुख अनुभव कर रहे है। वह सात समुद्र लांघकर हजारों मील की दूरी पर, भारत मे आये हैं, मगर क्षण भर के लिए अपना देश नहीं भूलते। उनकी राष्ट्रभक्ति का इसीमे परिचय मिलता है।

नगर-नायक

धर्म या आत्महित के अर्थ सर्वस्व का उत्सर्ग करना अपने साहित्य और इतिहास का प्रधान स्वर है ही, मगर सच्चे नागरिक की हैसियत से अपने कर्त्तव्य का पालन करने मे हमारे पूर्वजों ने जो बलिदान किये है उनकी किसी भी समुन्नत, सुसंस्कृत और स्वतन्त्र देश के साथ साभिमान तुलना की जा सकती है। यह ग्रामधर्म और नगरधर्म कब शिथिल हुए और किस प्रकार अन्त मे वे शास्त्रो के पृष्ठों पर ही सुशोभित रह गये, यह हमे नही मालूम, मगर सच्चा नगरधर्म क्या है और नगरधर्म की रक्षा के लिए नगरनायक को कितना त्याग करना पड़ता है, यह बात आज भी हम जानते है और नीचे लिखे उदाहरण से वह स्पष्ट हो जाती है।

वैशाली नगरी मे महामाहन नामक नगरनायक था। वह राजा और प्रजा दोनों का प्रेम-पात्र था। महामाहन, राजा और प्रजा के पारस्परिक स्नेहबन्धन को सदैव मजबूत रखने का

प्रयत्न करता था। उसके नेतृत्व में वैशाली की प्रजा आनन्द-पूर्वक रहती थी। उसकी कार्यप्रणाली से सभी को सन्तोष था। वह नगरनायक के उत्तरदायित्व को भली भाँति जानता था। नगरधर्म उसके लिए अपने प्राणों से भी अधिक मूल्यवान् था। वह नगरधर्म की रक्षा में अपनी और प्रजा की रक्षा मानता और नगरधर्म के विनाश में अपना और प्रजा का विनाश समझता था। एक बार उसकी कसौटी का दिन आ पहुँचा।

महामोहन के नगर पर किसी दुश्मन ने चढ़ाई की। उसने नगर की स्त्रियों को, बालकों को और वृद्धों को क्रूरता के साथ सताना आरम्भ किया। महामोहन उस समय वृद्धावस्था में था। वृद्धावस्था के कारण उसका हाड-पिंजर शरीर जीर्ण-शीर्ण हो गया था। पाँच कदम चलने की भी शक्ति उसमें न रह गई थी। इस प्रकार का वृद्ध महामोहन नगर-स्थविर की हैसियत से अपने जीवन का अन्तिम कर्त्तव्य बजाने आगे आया। उसकी आत्मा तिलमिला उठी। वह बिस्तर पर पड़ा न रह सका। किसी प्रकार धीरे-धीरे चलकर वह दुश्मनों के बीच आया और ललकार कर बोला—'सावधान! छल-कपट से तुम्हें यह सफलता मिल गई है। नगर में लूट मचाने से तुम्हें कोई रोक नहीं सकता मगर इस नगर की एक भी स्त्री पर, बालक पर या वृद्ध पर अत्याचार न करने की व्यवस्था तुम्हें करनी होगी! लुटेरा राजा बूढ़े की बात सुनी अनसुनी कर देता है। बूढ़ा महामोहन जलते हुए हृदय से, फिर-फिर नागरिकों की जीवरक्षा के लिए आवेदन करता है। मगर दगाबाज दुश्मन पर उसका कुछ भी असर नहीं होता। वह सिर्फ इतना स्वीकार करता है—'तुम मेरी माता के पालक हो। मैं तुम्हारा अधिकार स्वीकार करता हूँ, मगर उसकी

सीमा यही है कि तुम अपने कुटुम्ब सहित सही-सलामत रहो। विश्वास रक्खो, तुम्हारा बाल वांका न होगा।'

महामाहन अकेले अपनी सही-सलामती नहीं चाहता था। वह नगरस्थविर की हैसियत से अपना कर्त्तव्य अदा करना चाहता था। जब नगर के हजारो स्त्री-पुरुष आर्त्तनाद कर रहे हों, तब अकेले अपने कुटुम्ब को बचाने की उसकी इच्छा न थी। प्राणो से भी अधिक प्यारा नगरधर्म उसके अन्तर में क्षोभ पैदा कर रहा था। आक्रमणकारी राजा को उसने खूब समझाया, खूब प्रार्थना की। अन्त में राजा ने एक छूट दी। कहा—

'महामाहन! इतनी छूट मैं दे सकता हूँ। तुम पानी में डुबकी मारो और तुम्हारे ऊपर आने से पहले जितने नागरिक, जितनी सम्पत्ति लेकर भाग जाना चाहे, उतने भाग सकते है।

राजा की यह कठोर शर्त वृद्ध महामाहन, विना आगा-पीछे सोचे स्वीकार करने के लिए उद्यत हो गया।

महामाहन अपना अशक्त शरीर लिये नदी के पानी मे उतरा। उसने डुबकी मारी और पानी के नीचे तल-भाग पर पहुँच कर किसी पेड़ की जड़ से चिपट गया। मिनिट पर मिनिट और फिर घंटे पर घंटे समाप्त हो गए, मगर महामाहन ऊपर न आया। नगर के स्त्री-पुरुषो को अभयदान मिला। अन्त में, खोज करने पर महामाहन का अचेतन शरीर नदी के तल मे मिल सका। वृक्ष की जड़ के साथ उसके हाथ-पैर नागपाश की भाँति जकड़े हुए थे। नगर की रक्षा के लिए वृद्ध महामाहन ने अपना शरीर त्याग दिया था!

जैनयुग के नगरधर्म के संबन्ध में महामाहन का यह एक ही उदाहरण बस है। महामाहन का जीवन ही नगरधर्म पर जीवित भाष्य है। जहाँ इतना महँगा मोल चुकाकर धर्म और ग्रामधर्म का पालन किया जाता है, वहाँ समृद्धि और स्वतन्त्रता का देवदुर्लभ दृश्य दिखाई पड़े तो इसमें अचरज की बात ही क्या है ?

सीमा यही है कि तुम अपने कुटुम्ब सहित सही-सलामत रहो। विश्वास रक्खो, तुम्हारा बाल बांका न होगा।'

महामाहन अकेले अपनी सही-सलामती नहीं चाहता था। वह नगरस्थविर की हैसियत से अपना कर्त्तव्य अदा करना चाहता था। जब नगर के हजारों स्त्री-पुरुष आर्त्तनाद कर रहे हो, तब अकेले अपने कुटुम्ब को बचाने की उसकी इच्छा न थी। प्राणों से भी अधिक प्यारा नगरधर्म उसके अन्तर में क्षोभ पैदा कर रहा था। आक्रमणकारी राजा को उसने खूब समझाया, खूब प्रार्थना की। अन्त मे राजा ने एक छूट दी। कहा—

'महामाहन! इतनी छूट मैं दे सकता हूँ। तुम पानी में डुबकी मारो और तुम्हारे ऊपर आने से पहले जितने नागरिक, जितनी सम्पत्ति लेकर भाग जाना चाहे, उतने भाग सकते है।

राजा की यह कठोर शर्त वृद्ध महामाहन, बिना आगा-पीछे सोचे स्वीकार करने के लिए उद्यत हो गया।

महामाहन अपना अशक्त शरीर लिये नदी के पानी मे उतरा। उसने डुबकी मारी और पानी के नीचे तल-भाग पर पहुँच कर किसी पेड़ की जड़ से चिपट गया। मिनिट पर मिनिट और फिर घंटे पर घंटे समाप्त हो गए, मगर महामाहन ऊपर न आया। नगर के स्त्री-पुरुषो को अभयदान मिला। अन्त में, खोज करने पर महामाहन का अचेतन शरीर नदी के तल मे मिल सका। वृक्ष की जड़ के साथ उसके हाथ-पैर नागपाश की भाँति जकड़े हुए थे। नगर की रक्षा के लिए वृद्ध महामाहन ने अपना शरीर त्याग दिया था!

जैनयुग के नगरधर्म के संबन्ध में महामाहन का वह एक ही उदाहरण बस है। महामाहन का जीवन ही नगरधर्म पर जीवित भाष्य है। जहाँ इतना मँहगा मोल चुकाकर धर्म और ग्रामधर्म का पालन किया जाता है, वहाँ समृद्धि और स्वतंत्रता का देवदुर्लभ दृश्य दिखाई पड़े तो इसमें अचरज की बात ही क्या है ?

अबला नहीं, प्रबला

सभी धर्म एक स्वर से सदाचार की महिमा प्रकट करते है। सदाचार की बड़ाई न करने वाला कोई धर्म ही नहीं है। लोग अपने जीवन-व्यवहार मे सदाचार को महत्व देने लगे तो संसार में सर्वत्र शान्ति और सुख का संचार हो जाय।

महिलावर्ग सदाचार की वृद्धि मे अच्छा योग दे सकता है। महिलावर्ग चाहे तो पुरुषवर्ग को जल्दी से जल्दी सदाचार में प्रवृत्त कर सकता है। इस विषय मे एक आख्यान आपको सुनाता हूँ। इससे आप यह भी समझ सकेंगे कि पर-स्त्री की ओर लोलुपता की निगाह रखने वाला पुरुष किस प्रकार धिक्कार का पात्र है और पर-पुरुष को न चाहने वाली स्त्री किस प्रकार धन्यवाद की पात्री है। जो आख्यान मैं कह रहा हूँ, उसका वर्णन गुजरात के इतिहास मे मौजूद है और गुजराती लोग बड़े प्रेम से उसे गाते और पढ़ते है।

गरिमामय गुजरात जनपद मे पाटन एक विख्यात नगर अब भी मौजूद है, जहाँ आचार्य हेमचन्द्र का शिष्य कुमारपाल राजा हो चुका है। उसी पाटन में सिद्धराज सोलंकी नामक एक राजा था। सिद्धराज इतिहास-प्रसिद्ध राजा है। वह बड़ा ही बली, साहसी और कला-कुशल राजा था। मगर उसमें एक बड़ा दोष भी था। वह लम्पट था। उसकी लम्पटता ने उसे कलंकित कर दिया था।

कर्मदेवी नामक एक महिला का पति रायखेंगार था। सिद्धराज सोलंकी ने कर्मदेवी को अपने चंगुल मे फाँसने के लिए, उसी के सामने उसके पति का सिर उतार लिया। इसके पश्चात् वह क्रूरता की हँसी हँसकर बोला—देखो कर्मदेवी, अपने पति की हत्या के लिए तुम्ही जिम्मेदार हो। तुम मेरी बात मान लेतीं तो यह नौबत न आती। तुम चाहती तो मेरा कहना मान कर अपने पति की प्राणरक्षा कर सकती थीं। मगर 'गई सो गई अब राख रही को' इस कहावत पर ध्यान दो। जो हुआ उसकी चिन्ता छोड़ कर, जो रहा है उसकी रक्षा का विचार करो।

कर्मदेवी ! जानती हो, क्यों मैं यह चेतावनी दे रहा हूँ ? अगर तुमने अब भी मुझे स्वीकार न किया, तो मैं तुम्हारे प्राण-प्रिय पुत्र को भी इसी प्रकार काट डालूँगा। क्या तुम अपने पुत्र की भी रक्षा नहीं करना चाहतीं ? समझ लो। सोच देखो। मगर अधिक विलम्ब मत करो। उत्तर दो।

कर्मदेवी सती स्त्री थी। वह पति की हत्या से विचलित नहीं हुई और पुत्र की हत्या की धमकी भी उस पर [illegible] सकी। उसने सिंहनी की भांति कड़क कर उत्तर [illegible]

तू सत्ता के मद मे उन्मत्त हो रहा है। तुझे तनिक भी विवेक नहीं रहा। मै अपने पतिदेव की रक्षा नहीं कर सकी, मगर याद रखना, शीघ्र ही एक दिन आयगा, जब तू आप अपनी रक्षा करने मे असमर्थ हो जायगा। तेरी इस नृशसता और लम्पटता की कहानी इतिहास में काले अक्षरों में लिखी जायगी। तेरी यह गौरवगाथा तेरी सन्तान और दूसरे लोग घृणा और लज्जा के साथ पढ़ेंगे और अनन्त काल तक तेरे नाम पर थूकते रहेंगे। गुजरात के कलंक! आज जो चाहे कर ले। मेरे पुत्र का घात करके भी तू मेरा धर्म नहीं छीन सकता। मेरे प्राण लेने का सामर्थ्य तुझ मे है, मगर मेरा धर्म लेने का सामर्थ्य इन्द्र मे भी नहीं है।' अपने पति और पुत्र की रक्षा करने वाली मै कौन हूँ? धर्म ही अखिल ब्रह्माण्ड की रक्षा करता है। उसी धर्म की मैं रक्षा करूँगी। तेरा कोई भी अत्याचार, कोई भी पैशाचिकता मुझे धर्म से च्युत न कर सकेगी। तेरा प्रयत्न विफल होगा। समझ रखना, कर्मदेवी साधारण धातु की बनी स्त्री नहीं है।

अन्त मे सिद्धराज ने कर्मदेवी के पुत्र को भी काट डाला, लेकिन वह सती अपने निश्चय से नही डिगी, सो नहीं डिगी। अपने शत्रुओ के हृदय मे कँपकँपी पैदा करने वाला प्रतापी सिद्धराज एक अबला के आगे पराजित हो गया। कर्मदेवी दुनियां की दृष्टि मे अबला ही थी, मगर उसमे सतीत्व का जो असाधारण सामर्थ्य था, उसके कारण वह सबला ही नहीं, वरन् प्रबला भी थी। ऐसी देवियाँ संसार का सिंगार है।

आदर्श पत्नी

एक बार पाटन के राज्य में दुष्काल पड़ा। सिद्धराज ने पाटन की प्रजा की रक्षा के लिए—प्रजा को मजदूरी देने के अभिप्राय से—सहस्रलिंग नामक तालाब खुदवाना आरम्भ किया।

पाटन की ही भाँति मालवा मे भी उस समय दुर्भिक्ष पड़ा हुआ था। मालवा के लोग जीवननिर्वाह के लिए देश-विदेश जा रहे थे। मालवा के रहने वाले ओड जाति के एक कुटुम्ब ने पाटन में विशाल तालाब खुदने का समाचार सुना। यह सुन कर वह कुटुम्ब भी पाटन के सहस्रलिंग तालाब का काम करने गया। उसे काम मिल गया। मिट्टी खोदने और ढोने का काम उस परिवार को सौंपा गया।

'ओड़ लोगों में टीकम नामक एक ओड़ था। उसकी पत्नी जसमा अद्वितीय सुन्दरी थी। मगर वह केवल सुन्दरी ही नहीं,

साहसी, चतुरता और विचक्षणता की भी मूर्ति थी। उसमें ऐसा साहस था कि उसने गुजरात के राजा सिद्धराज के भी छक्के छुड़ा दिये। जाति से ओड़ होने पर भी जसमा ने जिस साहस और वीरता या परिचय दिया, धर्म मे जैसी दृढ़ता दिखलाई, वैसा करना कई-एक राजकुल की स्त्रियो के लिए भी कठिन है।

तालाब की खुदाई का काम चल रहा था। ओड़-परिवार के पुरुष मिट्टी खोदते थे और स्त्रियाँ उसे उठा-उठा कर बाहर फैकती थी। जसमा भी मिट्टी ढोती थी। उसके एक छोटा बालक था। जसमा ने सोचा—'बालक की रक्षा करना तो मेरा आवश्यक कर्त्तव्य है ही, मगर अपने पति की सहायता करना भी कम आवश्यक नही है। अपना बोझ पति पर डालना उचित नहीं है। स्त्री के अर्धाङ्गिनी होने की परीक्षा ऐसे ही आड़े समय मे होती है।'

जसमा ने तालाब के किनारे एक बरगद के वृक्ष पर ऐसा मौका देखकर झूला बाँध दिया कि वह मिट्टी फैकने के लिए आते-जाते समय बालक को देखती जाय और झुलाती रहे।

तालाब के काम का निरीक्षण करने के लिए सिद्धराज स्वयं आया करता था। एक दिन जसमा पर उसकी दृष्टि पड़ गई। सिद्धराज की आँखों मे जसमा का रूप-लावण्य खटक गया। उसका सौन्दर्य देख कर उसकी वासना भड़क उठी। सिद्धराज मन ही मन विचार करने लगा—अहा! क्या रूप-लावण्य है! मेरी रानियाँ तो इसके पैर के अँगूठे की भी बराबरी नही कर सकती! यह अनमोल रत्न राजमहल में ही शोभा दे सकता है। यह साधारण मजदूरिन है, विपदा की मारी है,

और मैं हूँ गुजरात का प्रतापशाली अधिपति—इसे प्राप्त कर लेना तो मेरे बाएँ हाथ का खेल है। इसका सुन्दर रूप देखकर जान पड़ता है, मानो कर्मदेवी ही नया अवतार लेकर जन्मी हो। जैसे भी हो, इसे हथियाना होगा। गुदडी के इस लाल को राज-शय्या का आभूषण बना कर उसका उद्धार करना ही चाहिए।

राजा सिद्धराज धीरे २ जसमा के पास आ पहुँचा। एक ओर गुजरात का वीर राजा सिद्धराज और दूसरी ओर ओड जाति की गरीबिनी मजदूरिन है। कामी पुरुष की जघन्य लालसा हृदय में पैदा होती है और आंखों के रास्ते बाहर फूट पड़ती है। उसके नेत्र ही उसके दिल का भेद जाहिर कर देते है। कौन जाने कामी इस तथ्य को समझते है या नहीं? मगर कामान्ध पुरुष कैसे समझ सकते है! लेकिन आंखों की यह नीरव भाषा पढ़ने मे स्त्रियाँ कभी भूल नहीं करतीं। वह चट से ताड़ लेती हैं। फिर जसमा जैसी विचक्षण स्त्री के लिए तो यह समझना कोई बड़ी बात नहीं थी। सिद्धराज जैसे ही जसमा की ओर बढ़ा कि जसमा समझ गई। वह जरा दूर हट गई।

सिद्धराज ने जसमा से कहा—'क्या तुम्हारा यह सुकुमार शरीर मिट्टी उठाने के लिए है जसमा! जिस शरीर की रचना करने मे विधाता ने अपना सारा चातुर्य खर्च कर दिया हो, उसका यह दुरुपयोग देखकर मुझे दया आती है। तुम्हारी सुकु-मारता कहती है, तुम मिट्टी ढोने के लिए नहीं जन्मी हो। मैं आज से तुम्हारे लिए यह सुविधा किए देता हूँ कि तुम तालाब की पाल पर बैठी रहा करो और अपने बच्चे को पाला करो। मिट्टी ढोने के लिए और बहुतेरी हैं।'

साधारण स्त्री होती तो वह कदाचित् राजा की इस भूलभुलैयां मे फँस जाती। मगर जसमा का दिल और दिमाग और ही तरह का था। वह राजा की इस कृपा का भेद समझ गई। तथापि उसने विनम्रतापूर्वक हाथ जोड़ कर कहा—'आप अन्नदाता है। आपने मुझ पर जो दया दिखलाई, उसके लिए अभारी हूँ, लेकिन मेरा स्वभाव दूसरी ही तरह का है। मैं मिहनत-मजदूरी करके ही अपना पेट भरना अच्छा समझती हूँ। मेरी दृष्टि मे बिना मिहनत किये खाना बुरा है।'

अक्सर लोग परिश्रम से बचना चाहते हैं। मिहनत न करनी पड़े, मगर भर पेट भोजन और आमोद के साधन मिल जाएँ तो बस, धरती पर ही उन्हे स्वर्ग दिखाई देने लगता है। पुण्य का प्रताप ही क्या जो बिना मिहनत किये खाना न मिला! अपनी कमाई का अन्न खाकर जीने का तत्त्व बहुत कम लोगों ने सीखा है। जसमा ऐसे ही व्यक्तियो मे थी।

जसमा ने कहा—मैं बिना मिहनत किये, बैठी-बैठी खाना पसन्द नहीं करती। बैठी-बैठी खाऊँ तो अनेक रोग हो जाएँ और फिर इलाज के लिए वैद्य फीस माँगे तो मैं गरीब मजदूरिन कहाँ से दूँ?'

हिस्टीरिया का रोग, जिसे अशिक्षित स्त्रियाँ भेड़ा या घेड़ा कहती हैं और जिसके होने पर मीरां दाता आदि स्थानों पर रोगी को ले जाया जाता है, बैठे रहने—परिश्रम न करने से होता है। यह रोग प्राय धनिक स्त्रियो को ही होता है, गरीब स्त्रियो को नहीं। गरीब स्त्रियाँ श्मशान के पास रहने पर भी इस रोग का शिकार नहीं बनतीं और अमीर स्त्रियो को बन्द घर में

बैठे भी यह रोग हो जाता है। असली बात यह है कि जो स्त्रियाँ आलसी होती हैं, परिश्रम नहीं करतीं, उन्हीं को यह भयानक बीमारी घेरती है। मगर अशिक्षा और कुसंस्कारों के कारण लोग वास्तविकता को न समझ कर देवी-देवता की मिन्नत-पूजा करते है और डाक्टरी का बिल चुकाते-चुकाते परेशान हो जाते हैं। भोपा लोगों को, जो भैरवजी का प्रसाद डकार जाते हैं, कोई बीमारी नहीं होती; लेकिन भैरवजी को मानने वाले अगर उन्हे चाढ़वा न चढ़ावें तो अपनी हानि समझते हैं! यह सब भ्रम की बातें हैं। वास्तविक बात यह है कि परिश्रम न करने से ही हिस्टीरिया की बीमारी होती है।

जसमा पढ़ी-लिखी न होने पर भी परिश्रम का मूल्य समझती थी। उसने सिद्धराज से कहा—'मैं काम करके खाती हूँ। मेरा काम अच्छी तरह चल रहा है। मेरे सम्बन्ध में आप चिन्ता न करें।'

जसमा का यह उत्तर सुन कर सिद्धराज ने सोचा—'जसमा साधारण स्त्री नहीं मालूम होती। सौन्दर्य-सम्पत्ति के साथ उसमें बुद्धि की विभूति भी है।'

सिद्धराज प्रकट में बोला—'जसमा, मैं कहता हूँ, तू जङ्गल में भटकने और सुबह से शाम तक मजूरी करने के लिए नहीं है। तू अपने सौन्दर्य को, अपनी सुकुमारता को और अपने असली स्वरूप को नहीं समझती। क्या तेरा यह फूल-सा कोमल शरीर मिट्टी ढोने के लिए है? तू मेरे शहर में चल। पाटन शहर देखकर ही तू चकित रह जायगी। पाटन इस पृथ्वी पर स्वर्ग है। शहर में तुझे अच्छी आराम की जगह दिला दूंगा।'

जंगल जंगली जानवरो के बसने की जगह है। तेरे लायक तो पाटन जैसा शहर ही है। तू चल। शहर मे रहने के लिए तुझे बहुत बढ़िया स्थान दिला दूंगा।

उत्तर मे जसमा ने कहा—'आप मेरी ढिठाई ही समझ लें कि मै आपको उत्तर देने का साहस कर रही हूॅ। लेकिन सौ बात की एक बात यह है कि जैसे आपको नगर प्रिय है, वैसे ही मुझे जगल प्रिय है। शहरो के आदमी जैसे मैले मन के होते है, जगल के नहीं होते।'

बड़े-बड़े शहर पाप के किले बन रहे है। चोर, जुआरी, भंगेड़ी, गंजेड़ी, शराबी आदि सभी प्रकार के विकारी मनुष्य शहरों मे होते है। शहर मे बहुत-से लोग विकारो से भरे हुए ही सम्मिलित होते है। देहात मे सोने-चाँदी की चीज पड़ी मिल जायगी, तो देहाती आदमी उसके मालिक के पास पहुँचाने की इच्छा करेगा, लेकिन नगर के लोग छोटी से छोटी चीज के लिए भी हत्या जैसा क्रूर कर्म करने पर उतारू हो जाते है। ग्रामो की अपेक्षा नगरो मे बीमारियाँ ज्यादा होती है। डाक्टरो की राय से बीमार लोग जंगल मे रहने के लिए जाते है।

जसमा कहती है—'जैसे नगरों के मार्ग सकीर्ण होते है, उसी प्रकार वहाॅ के निवासियो के हृदय भी संकीर्ण होते है। जैसे शहरो मे बदबू होती है, उसी प्रकार वहाॅ के लोगो के हृदय में भी वासनाओ और विकारो की बदबू होती है। आप कहते हैं—जंगल पशुओ के रहने की जगह है पर नगर मे क्या नर-पशु नहीं रहते? जंगल महात्माओ का प्रिय आवास नहीं है? खैर, मैं 'जंगल मे रहना ही पसन्द करती हूॅ। मुझे जंगल प्रिय है।

आपको जंगल बुरा लगता है यह कोई आश्चर्य की बात नहीं। जहर के कीड़े जहर मे रहना ही पसन्द करते हैं।'

राजा—'जसमा, तू बडी चतुर है। तेरी बुद्धि तारीफ के लायक है। मगर जान पडता है कि तूने शहर की गलियाँ ही देखी हैं, मेरा राज-दरबार नहीं देखा। चल कर देख तो सही, कितना स्वच्छ, भव्य और विशाल है। राजमहल कितने सुन्दर बने हुए हैं। कैसा सुन्दर बगीचा लगा है। तुझे इतना बढ़िया महल रहने को मिल जाय तो क्या हर्ज है ?'

जसमा—'महाराज ! जगल के सामने बगीचा क्या चीज है! जंगल प्राकृतिक रचना है और बगीचा में बनावट होती है। सूर्य के सामने जैसे तारे फीके दिखाई पडते हैं उसी प्रकार जंगल के सामने बनावटी बगीचे मालूम होते है। जो जंगल मे नही रह सकता हो, वह भले बगीचे मे जाय, राजमहल में निवास करे। मुझे बाग या महल की आवश्यकता नहीं। प्राकृतिक जंगल को छोड नकली बगीचे में रहना कौन पसन्द करेगा ? मैं असली जगल मे ही भली हूँ।'

राजा—'इतनी जिद ! मैं गुजरात का राजा हूँ और तू एक मामूली मजूरिन है। मेरे सामने इस प्रकार की बातें करते तुझे शर्म मालूम नहीं होती ? तू मेरा कहना मान ले। जंगल में रह कर अपने सुन्दर शरीर का नाश मत कर। शहर में चल। वहाँ तुझे मृदङ्ग के मीठे स्वर और गान की मधुर तान सुनने को मिलेगी।'

जसमा में जो शक्ति थी, वह आज हिन्दुस्तान मे होती तो हिन्दुस्तान कौन जाने कैसा देश होता ! जहाँ प्रलोभन हैं वहाँ

शक्ति और साहस कहाँ? विदेशी वस्तुओ के आकर्षण मे भारतीय जनता बुरी तरह लुभा गई है। आज यह दशा है कि जिसके घर मे विलायती वस्तुएँ नहीं, वह घर नही—जंगल माना जाता है। अगर सामान्य हिन्दुस्तानियों की तरह जसमा लोभ में पड़ जाती तो उसकी सतीत्व की अनमोल निधि सुरक्षित रहती? हर्गिज नहीं। आज के लोग फैशन की फाँसी मे बुरी तरह फँस गये हैं।

गले मे फाँसी पड़ने पर ही मदारी का बन्दर उसकी उँगली के इशारे पर नाचता है। जंगल का बन्दर मदारी के नचाने पर क्यो नही नाचता? कारण यही है कि उसके गले में फांसी नही पडी है।

आज करोडो रुपये फैशन के निमित्त बर्बाद हो रहे हैं और देश की सम्पत्ति विदेशो मे चली जा रही है। बच्चो को नशा करते देखकर विचार आता है—इन बालको का जीवन किस प्रकार सुधरेगा? आज की शिक्षा कितनी दूषित है कि वह बालकों के जीवन-सुधार की ओर जरा भी लक्ष्य नही देती। मगर यह सब कहे कौन? अगर कोई कहता भी है तो वह राज-द्रोही समझा जाता है।

सिद्धराज से जसमा कहती है—'तुम्हारे गायनो और बाजो मे विष भरा है, मेरा मन उस विष की ओर नही जाता। मुझे तो जंगल में रहने वाले मोर, पपीहा और कोयल की मीठी ध्वनि ही भली लगती है। मेरे कान इन्हीं की मधुर टेर के अभ्यासी हैं।'

कोयल को चाहे सोने के पीजरे मे रक्खो और उत्तम से

उत्तम भोजन दो, फिर भी वह आनन्दविभोर होकर नहीं बोलेगी। उसकी मस्त टेर आम की मजरी पर ही सुनाई देगी । वह परतन्त्र होकर नही बोलेगी, स्वतन्त्र होकर ही कूकेगी ।

जसमा कहती है—'कहाँ तो मोर, पपीहा और कोयल का निसर्ग-सुन्दर मधुर गान और कहाँ निर्जीव बाजों की आवाज ! मोर, पपीहा और कोयल की अमृतमयी ध्वनि मे जो आकर्षण हैं, जो मनोहरता है, मिठास है , वह नकली गीतों मे कहाँ है ? मुझे तो इन पक्षियो की बोली ही प्यारी लगती है महाराज, मैं जगली और गँवारिन जो ठहरी !'

मोर, पपीहा और कोयल की टेर से आज तक किसी मे कोई बुरी बात पैदा हुई है ?

'नहीं !'

और वेश्या के नाचो से कोई सुधरा है ?

'नही !'

जसमा का निर्भीक और निश्चित उत्तर सुन कर भी सिद्धराज ने हार न मानी । वह कहने लगा—'पगली जसमा ! मेरी बात पर भली भाँति विचार कर देख । क्यो इस जंगल में अपना सुन्दर जीवन वृथा वर्बाद कर रही है ! तुझे अत्यन्त सुन्दर महल रहने को मिलेगा । बहुत-सी दासियाँ तेरा हुक्म बजाने को तैयार रहेगी । मेरे पास हाथी, घोडे, रथ आदि सभी कुछ है । वह सब तेरे ही होंगे । तेरा अच्छा स्वभाव देखकर ही तुझ से आग्रह करता हूँ । ऐसे स्वभाव वालों से प्रीति करना राजाओं का धर्म है ।

राजा की नीयत को जसमा पहले ही ताड़ गई थी, अब उसके वाक्यो से वह एकदम स्पष्ट हो गई। जसमा बोली—'महा' राज ! मुझे महलो की आवश्यकता नही है, मुझे झोंपडी ही बस है। मैने महलो पर चढ़ना सीखा ही नही। मैं स्वय अपने पति की दासी हूॅ। मुझे और दासियो का क्या करना है? दासी होने के साथ मैं अपने पति की स्वामिनी भी हूँ। ऐसी दशा में दासियो की स्वामिनी बनकर क्या करूँगी ?

सिद्धराज—ओडन, चलो। क्यो रुखी-सूखी रोटियो पर गुजर करती है? मै तुझे मेवा, मिष्टान्न और षट रस भोजन दूँगा। तू जानती है, मै गुजरात का स्वामी हूँ। असीम सम्पत्ति और ऐश्वर्य मेरे यहॉ बिखरा पड़ा है। सोच ले। ऐसा अवसर फिर न मिलेगा। अभी राजमहल का द्वार तेरे लिए खुला है, जिसके लिए अप्सराएँ भी तरसती होगी।'

जसमा—आप बड़े दयालु है। इसी कारण मुझे पकवान और उत्तम भोजन खिलाना चाहते है। मगर मुझ अभागिनी के भाग्य मे यह सब कहाँ है? मेरे पेट ने तो मक्की की घाट खा जानी है। वह पकवानो को पचा नही सकता। मुझे राब और दलिया भला। पकवान और मेवा-मिष्टान्न आपको मुबारिक हो। आपके पास हाथी है, घोडे हैं, मगर मै उन पर सवारी करने मे डरती हूॅ। कहीं गिर कर मर गई तो? मेरे लिए तो भूरी भैंस ही भली है, जो दूध-दही देती है और हम सब आनन्द के साथ खाते हैं।'

ससार का काम घोड़े से चलता है या भैस से ?

'भैस से।'

लेकिन असल वात को लोग भूल जाते है। इसी कारण लोग घोड़े को पसन्द करते है।

सिद्धराज—क्या तुम ऐसे फटे-पुराने और मोटे कपड़े पहनने के लिए जन्मी हो ? मैं ऐसे मुलायम और वारीक वस्त्र दूँगा कि तुम्हारा एक रोम भी छिपा न रहेगा। तुम्हे हीरा और मोतियो के सुन्दर गहने पहनने को मिलेंगे।'

जो स्त्रियाँ शील को ही नारी का सर्वोत्तम आभूषण समझती है, उनके मन मे वढ़िया वस्त्र और हीरा-मोती के आभूषणो की क्या कीमत हो सकती है ? उन्हे इन्द्राणी बना देने का प्रलोभन भी नहीं गिरा सकता। शील का सिंगार सजने वाली के लिए यह तुच्छ—अति तुच्छ है। सच्ची शीलवती अपने शील का मूल्य देकर कदापि उन्हे लेना नहीं चाहेगी।

और वारीक कपडे ! निर्लज्जता का साक्षात् प्रदर्शन हैं। कुलीन स्त्रियों को यह शोभा नहीं देते। खेद है कि आजकल वारीक वस्त्रो का चलन वढ़ गया है। यह प्रथा क्या आप अच्छी समझते है ?

'नहीं !'

मगर आज तो यह वडप्पन का चिह्न वन गया है। जो जितने वडे घर की स्त्री, उसके उतने ही वारीक वस्त्र ! वडप्पन मानों निर्लज्जता में ही है ? क्या वारीक वस्त्र लाज ढँक सकते हैं ? इन वारीक वस्त्रों की वदौलत भारत की जो दुर्दशा हुई है, उसका वयान नहीं किया जा सकता।

गहनो और वस्त्रों का लालच स्त्रियो के लिए साधारण

नहीं है। लेकिन जसमा साधारण स्त्री भी नहीं है। वह कहती है—'मुझे बारीक कपडे नही चाहिए। मेरे शरीर पर तो खादी के कपड़े ही ठहर सकते है। बारीक कपडे पहन कर मैं मजदूरी कैसे कर सकती हूँ ?'

मोटे कपड़े मजदूरी करना सिखलाते हैं और महीन कपड़े मजदूरी करने से मना करते है। महीन कपड़ा पहनने वाली बाई अपना बच्चा लेने मे भी संकोच करती है, इस डर से कि कहीं कपड़ो में धूल न लग जाय। इस प्रकार बारीक वस्त्रों ने सन्तान-प्रेम भी छुड़ा दिया है।

जसमा कहती है—'मुझे न बारीक वस्त्रो की ही आवश्यकता है, न हीरों और मोतियो की ही। हीरा मोती पहनने से तो जान का खतरा बढ़ जाता है। मेरा पति आभूषणों के बिना ही मुझे प्रेम करता है। फिर और सिंगार की मुझे क्या आवश्यकता है ? मैं अपने पति को ही प्रसन्न रखना चाहती हूँ। मुझे औरो की प्रसन्नता से कोई मतलब नही।

राजा सभी प्रकार के प्रलोभन देकर भी अपने उद्देश्य मे सफल न हो सका। उसने अनेक फन्दे फैलाये, फिर भी शिकार न फँसा। तब कुछ-कुछ निराश भाव से राजा ने कहा—'तू जिस पति को प्रसन्न करना चाहती है, उसे दिखा तो सही। कौन है तेरा पति ? देखूँ वह कैसा है ?'

बडे-बड़े महलो में और बडी-बड़ी हवेलियों मे रहने वालों के लिए दाम्पत्य प्रेम का क्या मूल्य ? दाम्पत्य-प्रेम की कीमत जगल वाले ही जानते हैं। सीता और राम ने अपने दाम्पत्य-प्रेम

की वृद्धि जंगल में ही की थी। विषय-भोग के कीड़े दाम्पत्य-प्रेम की पवित्रता को क्या समझेंगे !

जसमा ने कहा—'वह जो कमर कस कर काम कर रहा है, जिसके हाथ मे कुदाली है, जो अपने साथियों को साहस बँधाता हुआ मिट्टी खोद रहा है और जो मिट्टी खोदने में सब से आगे है, जिसकी कुदाली की चोट से पृथ्वी काँपती है और जिसके सिर पर फूल गुथे हैं, वही मेरा पति है। मैंने उसके सिर पर फूल गूँथे दिये हैं, जिससे थकावट के समय उसे विश्राम मिले।

जसमा के पति का नाम टीकम था। टीकम की ओर देखकर सिद्धराज ईर्षा की आग से जल-भुन गया। उसने जसमा से कहा—बस, यही तेरा पति है! कौवे के गले में रत्नों की माला ! उस मिट्टी खोदने वाले मजूर के लिए ही तू मेरा अपमान कर रही है? हंसनी कौवे के पास नहीं सोहती जसमा ! हंसनी की शोभा हस के साथ साथ रहने में ही है। तू मेरे महल में चल। तेरी शोभा महलों मे बढ़ेगी। तेरे पति को तुझ पर विश्वास भी नहीं है। देख न, तेरी ही तरफ वह टेढी-टेढ़ी नजरों से देख रहा है। उसकी नजर से साफ मालूम होता है कि उसका तेरे ऊपर न प्रेम है, न विश्वास ही है। ऐसा आदमी तेरी कद्र क्या जाने ? ऐसे अविश्वासी पति के साथ रहना घोर अपमान है। तू चिन्ता मत कर। तुझे रानी बना दूँगा।

सचमुच टीकम इसी ओर देख रहा था। वह सोचता था—'राजा मेरी स्त्री से क्या बात कर रहा है ?'

राजा ने साम और दाम से काम लेने के बाद भेदनीति

से काम निकालने की चेष्टा की। मगर जसमा को फुसलाना बालू से तेल निकालना था।

जसमा कहने लगी—'राजा साहब, कहावत मशहूर है—'साँच को आँच नहीं।' सत्य सदैव निर्भय होता है। मेरे पति को मुझ पर पूर्ण विश्वास है। मै अपने पति के अतिरिक्त अन्य पुरुषो को भाई के समान समझती हूँ। पारस्परिक अविश्वास की भावना तो राजघरानो की ही सम्पत्ति है। हम दरिद्रों को यह सम्पत्ति कहाँ नसीब होती है? अगर मुझे अपने पति पर अविश्वास हो तो उसे मुझ पर भी अविश्वास हो सकता है। मगर ऐसा नहीं है। मेरा पति आपको देख रहा है, क्योंकि आपकी दृष्टि बिगडी हुई है।

राजा ने देखा, भेदनीति भी यहाँ कारगर नहीं हो सकती। तब सिद्धराज ने कड़क कर कहा—'जसमा, होश सँभाल। तू जानती नहीं मैं कौन हूँ? बड़े-बड़े शूरवीर, राजा और महारथी भी मेरे चरणो मे सिर झुकाते है और मेरी भौंह चढ़ते ही काँप उठते है। उन्हे भी मेरे हुक्म के खिलाफ जबान खोलने का साहस नहीं हो सकता। फिर तू किस खेत की मूली है? तेरे पास क्या बल है, जिसके बूते पर तू मेरा हुक्म टाल रही है? आखिर तो मजदूरी करने वाले की स्त्री ठहरी न। तू किस मुँह से मेरे सामने बोलती है? एक बार फिर चेतावती देता हूँ। विचार कर देख। व्यर्थ समय बर्बाद न कर। क्या तेरे कहने से राजा अपना हठ छोड़ सकता है?'

भेदनीति ने काम न दिया तो राजा ने दण्डनीति ग्रहण। साधारण स्त्री राजा की इस धमकी से दहल जाती। उसका

हृदय कॉप उठता। वह विवश हो जाती या आँसू बहाने लगती। मगर धन्य जसमा! वह वीरांगना तनिक भी विचलित न हुई। उसने उसी प्रकार कड़क कर उत्तर दिया—'बड़े-बड़े शूरमाओं को अपने चरणो मे झुकाने वाला वीर एक मजदूरिन के तलुवे चाटने को तैयार हो जाय, यह आश्चर्य की बात नही तो क्या है? महाराज, आपकी बहादुरी का इससे बढ़ कर और क्या सबूत हो सकता है? हॉ, मै जानती हूँ कि आप गुजरात के स्वामी हैं और मैं असहाय स्त्री हूँ। मैं यह भी जानती हूँ कि रावण लंका का प्रचण्ड प्रतापी राजा था और उसके पंजे मे पडी सीता असहाय थी। मगर सीता ने अपना धर्म नहीं छोडा। आप पूछते है—मेरे पास क्या बल है? मेरे पास सतीत्व की शक्ति है, जो तीन लोक मे अजेय है और जिस शक्ति की बदौलत सीता आज भी अमर है।

आपने बडे-बडे राजाओं को वश में किया, यह ठीक है। किन्तु आपका बल काया और माया पर ही तो है। आत्मा इन दोनों से जुदी है। मेरे गुरु ने यह बात मुझे पहले से ही बता रक्खी है।

वासांसि जीर्णानि यथा विहाय,
नवानि गृह्णाति नरोऽपराणि।
तथा शरीराणि विहाय जीर्णा—
न्यन्यानि संयाति नवानि देही॥

—गीता, १, २२।

आत्मा उसी प्रकार शरीर बदलता है, जिस प्रकार पोशाक बदली जाती है। शरीर का नाश है, लेकिन आत्मा का नाश नहीं है। मेरे लिए जीवन-पर्यन्त वही पति है। वह अच्छा है तो मेरा है और बदसूरत है—मजूर है तो भी मेरा ही है। प्रेम से उसके साथ विवाह किया है, सो उसके प्रेम मे प्राण भी दे सकती हूँ। संसार की कोई भी शक्ति उसे मेरे हृदय से अलग नहीं कर सकती।

राजाजी, आपको अपने उत्तरदायित्व का विचार करना चाहिए। आप प्रजा के पालक है, प्रजा के पिता हैं, प्रजा के आदर्श है। प्रजा, राजा का अनुकरण करती है। 'यथा राजा तथा प्रजा।' सदाचार की सीमा की रक्षा करना आपका उतना ही आवश्यक कर्त्तव्य है, जितना राज्य की सीमा की रक्षा करना। बल्कि सदाचार की रक्षा, राज्यरक्षा से भी अधिक महत्त्वपूर्ण है। आप सदाचार को तिलांजलि दे देंगे तो राज्य भर मे दुराचार का दौरदौरा हो जायगा। रक्षक ही भक्षक बन जाएँगे तो पृथ्वी कैसे स्थिर रहेगी? अतएव आप अपने पद का विचार कीजिए। न्याय-नीति का त्याग न कीजिए। आप मुझे होश मे आने को कहते है, लेकिन होश मे आने की आवश्यकता आप को ही है। मै होश मे ही हूँ; अब क्या होश मे आऊँगी?

यही मेरी अन्तिम प्रार्थना है। मैंने अब तक आपसे बातचीत की है लेकिन अब मै समझ गई कि आप मेरे पति के शत्रु है। मै अपने पति के शत्रु का मुँह नही देखना चाहती। इसलिए अब मैं आपके सामने घूँघट निकालती हूँ। आप से कोई बात नहीं करूँगी।

यह कहकर जसमा ने राजा के सामने घूँघट निकाल

लिया। आजकल घूँघट की प्रथा निराली होगई है। स्त्रियाँ अनजान और गुण्डों-लुच्चों के आगे तो घूँघट डालती नही, किन्तु देवर, जेठ आदि परिचित लोगो के सामने, जो उन्हे अपनी बहिन-बेटी समझते हैं, लम्बा घूँघट काढ़ती हैं। पहले दुष्ट और दुराचारियो के सामने घूँघट निकाला जाता था, जैसे जसमा ने सिद्धराज को दुराचारी समझ कर उसके सामने घूँघट निकाल लिया।

सूरदास की कारी कमरिया, चढे न दूजो रंग।

यही कहावत यहाँ चरितार्थ हुई। जसमा की तेजस्वी भाषा में कही हुई न्याय और धर्म से सगत बातों का, काम से कलुषित हृदय वाले सिद्धराज पर तनिक भी प्रभाव न पडा। वह जसमा की ओर से सर्वथा निराश हो गया।

निराशा की अवस्था मे मनुष्य प्राय. भयंकर निश्चय कर बैठता है। सिद्धराज को अपना अपमान कांटे की तरह चुभ रहा था। वह जसमा का लोभ सवरण नहीं कर सका। उसने निश्चय किया—'जसमा को जबर्दस्ती पकड़ मँगवाना चाहिए।'

जसमा अपना भविष्य साफ-साफ ताड चुकी थी। उसे अपने अपहरण की आशका हो चुकी थी। ज्यों ही राजा नगर को ओर रवाना हुआ कि जसमा ने अपने पति को बुलाकर सारा वृत्तान्त कह सुनाया। उसके यहाँ न ठहर कर तत्काल चल देने के लिए भी आग्रह किया।

टीकम अपने साथी ओड लोगो के साथ पाटन से रवाना

हुआ। राजा को पता चला कि जसमा और उसके साथी ओड़ भाग गये है। वह घोड़े पर सवार होकर जसमा को पकड़ने दौड़ा।

जसमा और उसके साथी कुछ ही दूर पहुंचे थे कि राजा ने उन्हे रोक लिया। वह बोला—'जसमा को मुझे सौप दो। मै उसे चाहता हूँ।'

ओड़ निश्शस्त्र थे, मगर कायर नहीं थे। भला कौन जीवित पुरुष आँखों के सामने स्त्री का अपमान होते देख सकता है? ओड़ लोगो ने राजा का सामना किया। राजा ने बहुत से ओड़ो के सिर काट डाले। जसमा के पति टीकम ने भी अपनी पत्नी की रक्षा करने में प्राण होम दिये। अन्त में जब जसमा ने देखा कि अब मै असहाय हूँ और राजा के अपवित्र स्पर्श से मेरा शरीर अपवित्र हो जाने की संभावना है तो उसने अपने पेट मे कटार भौंकते हुए कहा—'राजकुल-कलंक! कायर! ले, मेरा बलिदान ले। मेरे हाड़ मांस को अपने महल मे सजा लेना। यह तेरी लम्पटता की, तेरी कामुकता की और तेरी नीचता की गौरव गाथा सुनाता रहेगा।'

पतिव्रता जसमा ने अपने प्राण क्या दिये, जगत् को एक उज्ज्वल आदर्श प्रदान किया। उसने अपने सतीत्व की रक्षा ही नहीं की, नारी के गौरव की और सन्मान की भी रक्षा की। वह मर कर चिर-अमर हो गई। जसमा का जस इतिहास के पृष्ठों पर सुनहरे अक्षरो मे चमक रहा है। आज भी लोग इससे प्रेरणा पाते हैं।

कहते हैं—सती जसमा ने मरते-मरते सिद्धराज को शाप

दिया था—'राजा, तेरा तालाब खाली रहेगा और तेरा वंश नहीं चलेगा।'

यह सब देख और सुनकर राजा का दिल दहल गया। उसे अपनी करतूत पर पछतावा होने लगा। तालाब खाली रहा।

जसमा ने कौन-सा शास्त्र पढ़ा था और किस गुरु ने उसे शिक्षा दी थी। यह नहीं कहा जा सकता। तथापि इसमें सन्देह नहीं कि वह सच्ची पतिव्रता थी और पतिव्रत धर्म का मर्म उसने भली भाँति समझा था।

मानवदया

प्राय लोग मनुष्य के प्रति दया दिखलाते भी है तो पैसा-आधा पैसा देकर अपने उत्तरदायित्व से मुक्त हो जाते है। वे यह नहीं सोचते कि मनुष्य के प्रति हमारी गहरी जिम्मेवरी है। वास्तव मे मनुष्य की दया किस प्रकार की जा सकती है और मनुष्य की दया करने की हमारे ऊपर कितनी जिम्मेवरी है, यह बात स्पष्ट करने के लिए एक सुना हुआ उदाहरण इस प्रकार है:—

कहते हैं, अमेरिका मे दो मित्र गिरजाघर जा रहे थे। इस गिरजाघर के बाहर कुछ लूले लँगड़े भिखारी पड़े थे। इन लँगड़ो को देखकर एक मित्र को दया आई। दया तो दोनो के हृदय मे उत्पन्न हुई थी मगर एक ने अपनी दया सफल करने के लिए जेब से कुछ पैसे निकालकर भिखारी को दे दिये। यह देखकर दूसरे ने कहा—तुमने इस लँगड़े भिखारी पर दया तो की, किन्तु यह तो भिखारी का भिखारी ही रहा। हृदय मे दया उत्पन्न होने पर भी और पैसा देने पर भी भिखारी का भिखारीपन तो मिटा नहीं।

सुनते हैं, बम्बई, कलकत्ता आदि बड़े शहरों में लोग प्रायः अन्धों को पैसे देते हैं, आँख वालों को बहुत कम देते हैं। अतएव अनेक भिखारी अपने बालकों की आँखें इसीलिए फोड डालते हैं कि वह अन्धे हो जाएँगे तो उन्हें ज्यादा पैसे मिलेंगे।

दूसरे मित्र ने पैसा देने वाले से कहा—अगर हमारे अन्तःकरण में उस भिखारी के प्रति सचमुच अनुकम्पा हो तो हमें सिर्फ कुछ पैसे देकर ही छुटकारा नहीं पा लेना चाहिए, वरन् उसका भिखारीपन दूर करने का प्रयत्न करना चाहिए। भिखारी पर दया करके तुमने पैसे का ममत्व त्याग किया है, सो तो ठीक है मगर तुमने सच्ची दया का परिचय नहीं दिया।

पहले मित्र को इस प्रकार कहकर दूसरा मित्र उस लँगड़े भिखारी को अपने घर ले गया और बनावटी पैर लगाकर उसे इस योग्य बना दिया कि वह चलने फिरने में समर्थ हो गया। इसके बाद उसे कोई काम सिखलाकर ऐसा बना दिया कि फिर उसे भीख न माँगनी पड़े।

इस घटना पर विचार करो। सोचो कि दोनों में से किसकी अनुकम्पा अच्छी और ऊँची है? इस प्रश्न का यही निश्चित उत्तर मिलेगा कि जिसने राग-द्वेष को जीतने का विशेष पुरुषार्थ किया है, उसी की दया उच्च है। शास्त्र की दृष्टि से एकेन्द्रिय या पचेन्द्रिय प्राणी में जीवत्व की अपेक्षा से कोई भेद नहीं है। परन्तु जितनी दया बड़े प्राणियों की की जाएगी, उतना ही अधिक राग-द्वेष जीतना पड़ेगा।
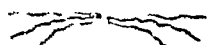
कर्म-रोग

कर्म-विपाक के महान् कष्ट से बचाने के लिए ही भगवान् ने मान को जीतने का उपदेश दिया है। क्योंकि मान को जीतने से जीवन में नम्रता आएगी और नम्रता से कर्मों की निर्जरा होगी। इस शास्त्रीय विषय को स्पष्ट करने के लिए एक उदाहरण लीजिए·—

एक रोगी को भयङ्कर रोग हुआ। उसने वैद्य से शरीर की परीक्षा करवाई। वैद्य ने रोगी से कहा—अगर तुम्हे 'इन्जेक्शन, लगा दिया जाय तो तुम रोग की भयङ्करता से बच सकते हो। तुम एक–दो इन्जेक्शन लगवा लो। यह सुनकर रोगी ने वैद्य से कहा—'मेरा शरीर बहुत कोमल है, इन्जेक्शन कैसे ले सकता हूँ ? कोई पीने की दवा दे दो।' वैद्य बोला—'जैसी तुम्हारी मर्जी ! मैंने तो तुम्हे रोग से मुक्त होने का उपाय बताया है।' रोगी ने इन्जेक्शन नहीं लिया और परिणाम यह हुआ कि उसका रोग भयङ्कर हो गया। आखिरकार रोग से परेशान होकर

वह फिर वैद्य के पास पहुँचा और बोला—'इन्जेक्शन देना हो तो भले दे दीजिये मगर इस भयङ्कर रोग को शान्त कीजिये।'

वैद्य ने कहा—अब यह रोग इन्जेक्शन से भी नहीं मिट सकता। रोग बहुत बढ़ गया है। अब तो ऑपरेशन करना पड़ेगा। पहले इन्जेक्शन लगवा लिया होता तो मिट सकता था।

ऑपरेशन की बात सुनकर रोगी घबराया। वह वैद्य से कहने लगा-ऑपरेशन कराने के लिए मेरा जी नही चाहता।

वैद्य ने कहा—जैसी तुम्हारी मर्जी!

रोगी का रोग दिन-दिन बढ़ता गया। वह बेहद परेशान हो गया। तब वह फिर वैद्य के पास पहुँचा। बोला—वैद्यराज! इन्जेक्शन या ऑपरेशन—जो कुछ करना हो करो, मगर मुझे इस महामुसीबत से उबारो।

वैद्य ने फिर शरीर की जाँच की। उसे मालूम हुआ-रोगी का सारा शरीर सड़ गया है। अब सारे शरीर को चीरना पड़ेगा। उसने रोगी को अपना विचार बतलाया। अंग की शस्त्र-क्रिया करानी पड़ेगी, यह सुनकर रोगी बहुत घबराया और बोला—मैं अपने प्रिय शरीर पर शस्त्रक्रिया कैसे करा सकता हूँ!

वैद्य ने अन्तिम चेतावनी देते हुए कहा—अभी तो अंग चीरने से ही शरीर ठीक हो सकता है, लेकिन बाद में अंग चीरने पर भी ठीक नहीं होगा। यह रोग ही ऐसा भयङ्कर है कि फिर वह प्राण लिए बिना शान्त नहीं होगा।

अब अगर रोगी को अपने प्राणों की रक्षा करनी है तो उसे अपने अंग पर शस्त्रक्रिया करानी ही होगी। पहले इन्जेक्शन

लेने मात्र से शरीर ठीक हो सकता था, पर तब उसने वैद्य का कहना नहीं माना। अब शस्त्रक्रिया कराने का समय आ गया। अगर अब शस्त्रक्रिया नहीं कराता है तो प्राण जाने का वक्त आएगा।

इसी प्रकार इस समय कर्मरूपी जो रोग लगा है, वह धर्म-क्रिया रूपी दवा का नियमित सेवन करने से शान्त हो सकता है। अगर धर्मक्रिया रूपी दवा सेवन न की गई या सेवन करने मे देरी की गई तो कर्म-रोग बढ़ जाएगा और परिणाम-स्वरूप इतना दुःख सहन करना पड़ेगा कि उसका कहना भी कठिन है। अतएव कर्म-रोग को उपशान्त करने के विषय मे गम्भीर विचार करो। ज्ञानी जनो ने तपश्चर्या आदि आध्यात्मिक औषधो द्वारा उसे शान्त करने का जो अमोघ उपाय बतलाया है, उसे भलीभाँति काम मे लाओगे तो तुम्हारा कर्म-रोग शान्त हो जायगा और अधिक दुःख भी सहन नहीं करना पड़ेगा।

कुछ लोग कहते है कि धर्मक्रिया करने मे कष्ट सहन करना पड़ता है। परन्तु ज्ञानियों का कथन है कि कष्ट धर्म करने से नहीं वरन् पूर्व कर्म से होता है। अगर धर्माराधन करते समय होने वाले कष्ट सहन कर लिए जाएँ तो कर्मोदय के कारण होने वाले कष्टो से सहज ही छुटकारा मिल सकता है। ऐसी दशा मे अगर थोड़ा कष्ट सहकर भी भविष्य मे आने वाले भयानक दुःखों से बचाव हो सके तो क्या बुराई है?

अभिमान

पुरुष ! मान-अभिमान करना बहुत बुरा है। अभिमानी व्यक्ति को अपमान का दु ख भोगना पड़ता है और अभिमान का त्याग करने वाले को बदले मे सन्मान प्राप्त होता है। निरभिमान व्यक्ति को इन्द्र भी नमस्कार करता है। यह बात सिद्ध करने के लिए शास्त्रकार ने श्री उत्तराध्ययन सूत्र मे एक ऐतिहासिक उदाहरण उद्धृत किया है :—

दसण्णरज्जं मुदियं चइत्ताणं मुणी चरे।
दसण्णभद्दो निक्खंतो सक्खं सक्केण चोइओ ॥

—उत्तरा० १८, ४४

अर्थात्—शक्रेन्द्र की प्रेरणा होने से प्रसन्न और पर्याप्त दशार्ण-राज्य को त्याग कर दशार्णभद्र ने त्यागमार्ग अपनाया।

दशार्णभद्र राजा ने अभिमान त्याग कर किस प्रकार त्यागमार्ग अपनाया, इस विषय मे निम्नलिखित कथा प्रचलित है—

आजकल जिसे मन्दसौर कहते है, उसका प्राचीन नाम दशार्णपुर है। दशार्णपुर का राजा दशार्णभद्र था। राजा धर्म-निष्ठ और भावनाशील था। उसने विचार किया—मुझे जो ऋद्धि-सिद्धि मिली है उसका उपयोग भगवान् की ऐसी सेवा मे करना चाहिए जैसी सेवा आज तक किसी भी राजा ने न की हो। अपनी इस शुभ भावना को कार्यरूप मे परिणत करने का भी राजा को सुयोग मिल गया। राजा ने सुना—भगवान् महावीर इस ओर पदार्पण कर रहे हैं। यह समाचार पाते ही राजा की प्रसन्नता का पार न रहा। उसने बड़े उत्साह के साथ प्रजाजनो को आज्ञा दी कि भगवान् को वन्दना करने के लिए जाते समय ऐसी तैयारी की जाय, जैसी आज तक किसी नें न की हो। जब राजा मे इतना उत्साह हो तो प्रजा में और उसके नौकर-चाकर वर्ग मे भी उत्साह हो आना स्वाभाविक है। भगवान् को वन्दना करने के लिए राजा दशार्णभद्र ने अपूर्व तैयारी की और प्रस्थान किया। राजा को अपनी ऋद्धि देखकर अभिमान हुआ कि मेरे समान ऐसी तैयारी करके भगवान् की वन्दना के लिए और कौन गया होगा? लोगो को नवीन कपडा या जूता मिल जाने पर भी जब अभिमान हो जाता है तो राजा को अपनी ऋद्धि देखकर अगर अभिमान उत्पन्न हुआ तो आश्चर्य ही क्या है? मगर लोगों को समझना चाहिए कि ऐसे राजा का भी अभिमान न रहा तो दूसरो की तो बात ही क्या है?

राजा दशार्णभद्र सबको दान-मान-सन्मान आदि से सतुष्ट करता हुआ अपनी ऋद्धि-सम्पदा के साथ भगवान् की वन्दना के लिए निकला। दूसरी तरफ शक्रेन्द्र भी भगवान की वन्दना के लिए आये थे। इन्द्र ने राजा को ऋद्धि के साथ वंदना करने आते देखा पर उसने राजा के हृदय के अभिमान

को भी जान लिया। ज्ञानी इन्द्र ने विचार किया—राजा का अभिमान दूर कर देना चाहिए और उसे सत्यमार्ग दिखलाना चाहिए। इस प्रकार विचार कर इन्द्र ने अपनी वैक्रिय लब्धि से एक ऐसा हाथी बनाकर उतारा कि उसके सामने राजा की सारी ऋद्धि फीकी पड गई।

राजा अभिमान के वश होकर विचारने लगा—इन्द्र ने मेरी ऋद्धि की तुच्छता दिखलाई है और एक प्रकार से मुझे पराजित किया है। ऐसी स्थिति में मुझे क्या करना चाहिए? मैं इन्द्र की होड़ नहीं कर सकता, क्योंकि इन्द्र अपनी वैक्रिय लब्धि से इच्छानुसार ऋद्धि बना सकता है। तो फिर इन्द्र को जीतने के लिए क्या उपाय करना चाहिए? यह ठीक है कि मैंने अभिमान किया सो उचित नहीं था, मगर अब पकड़ी हुई टेक किस प्रकार सिद्ध की जाय? इन्द्र को जीतने का मेरे पास एक ही उपाय है—त्याग। त्याग के अतिरिक्त और किसी भी उपाय से वह पराजित नही हो सकता।

इस प्रकार विचार कर दशार्णभद्र राजा ने सर्वविरति संयम स्वीकार किया। अब बेचारा इन्द्र क्या करे? उसने सोचा-प्रथम तो मैं दीक्षा ही नहीं ले सकता—ऐसा त्याग ही नहीं कर सकता। कदाचित् दीक्षा ले लूं तो मुझे इन मुनि से लघु शिष्य ही बनना पड़ेगा। अतएव श्रेयस्कर यही है कि इन मुनि से क्षमायाचना करके पवित्र हो जाऊँ।

इस प्रकार विचार कर इन्द्र ने मुनि को नमस्कार किया और कहा—'भगवान् की वन्दना करने के लिए आप सरीखी तैयारी वास्तव में किसी ने नहीं की है और अब आपका त्याग

भी अपूर्व है। आपके त्याग से मैं प्रभावित हुआ हूँ।' इस प्रकार कहकर इन्द्र ने राजा के त्याग की प्रशंसा की और मुनि से क्षमायाचना की।

त्याग करने की शक्ति मनुष्य में ही होती है। देव में मनुष्य जितनी त्याग-शक्ति नहीं होती। इसी कारण देवभव की अपेक्षा मनुष्यभव बहुमूल्य माना गया है। मनुष्य अभिमान न करे तो देवों को भी जीत सकता है। श्रीदशवैकालिकसूत्र मे भी कहा है :—

देवा वि तं नमंसंति जस्स धम्मे सया मणो।

अर्थात्—जिसका मन सदा धर्म मे अनुरक्त रहता है, उसे देव भी नमस्कार करते है।

धर्म का आचरण करने के लिए मनुष्य को जैसी सामग्री प्राप्त है, वैसी देव को भी प्राप्त नही है। अगर देवो को भी जीतना है तो मान को जीतो। मान करके दशार्णभद्र राजा इन्द्र को नहीं जीत सका। त्याग करके उसने इन्द्र को पराजित कर दिया। मुनि-वन्दन करते समय आजकल भी उनका नाम स्मरण किया जाता है—

दशार्नभद्र राजा, वीर वंद्या धरी मान,
पछि इन्द्र हरायो, दियो छः काया ने अभयदान।

यह बात ध्यान में रखकर तुम भी अभिमान को तजो। धर्म के प्रताप से ही इन्द्र, एक राजा के चरणों मे नत हुआ था। राजा ने अभिमान छोड़ा तो इन्द्र को भी उसके चरणों की वन्दना करनी पड़ी। अतः अभिमान त्यागो। इसी में आत्मा का कल्याण है। जो अभिमान का त्याग करता है वह अपने आत्मा का

उत्थान करता है और जो अभिमान करता है वह अपने आत्मा को पतित करता है।

वृक्षों मे भी जो वृक्ष नम्र रहता है वह अच्छा समझा जाता है और जो अकड़ा रहता है वह ठूँठ कहलाता है। नम्र वृक्ष मे फल भी रसीले और मीठे लगते है, जब कि अकडे रहने वाले वृक्ष के फल कटुक और खराब होते है। उदाहरणार्थ—आम और एरंड को देखो। आम नम्र होता है तो उसके फल मधुर और सुन्दर होते हैं। एरंड अकड़ा रहता है तो उसके फल कटुक होते हैं। इस प्रकार जहाँ नम्रता होती है वहाँ अन्यान्य गुण भी आ जाते हैं। कहावत भी है—'जो नमता है वह परमात्मा को गमता है।' अर्थात् जो नम्रता धारण करता है वह परमात्मा का भी प्रिय बन सकता है।

इसलिए तुम अपने जीवन मे नम्रता को स्थान दो। नम्रता स्वार्थ की पूर्ति करने के लिए भी धारण की जाती है। मगर स्वार्थ की पूर्ति के लिए धारण की गई नम्रता मे और अभिमान के त्याग से आने वाली नम्रता मे बहुत अन्तर है। यहाँ जिस नम्रता की बात चल रही है वह अभिमान का त्याग करके उत्पन्न करनी है। अभिमान करने से आत्मगौरव की भी रक्षा नहीं हो सकती। आत्मगौरव की रक्षा तो अभिमान त्यागने से ही होती है। इसके अतिरिक्त अभिमान त्यागने से तथा जीवन में निरभिमानिता तथा नम्रता को स्थान देने से मान-जन्य कर्म भी नहीं बँधते और मान के कारण पहले बँधे हुए कर्मों की निर्जरा हो जाती है। अतएव अभिमान त्यागने का प्रयत्न करो और नम्रता धारण करो। ऐसा करने मे ही मनुष्यजन्म की सार्थकता और सफलता है।

———
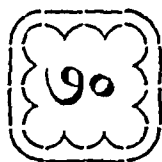
परस्त्रीत्यागी

जब किसी कन्या के साथ आपका विवाह हुआ होगा तब कुंकुंपत्रिका भेजकर सगे-सम्बन्धियो को बुलाया होगा। मंगल गान हुआ होगा। बाजे बजे होगे। और देव, गुरु, धर्म की साक्षी से विवाह जग-जाहिर हुआ होगा। अतएव यह प्रसिद्ध हो चुका कि आप पति हुए और कन्या पत्नी हुई। अब सांसारिक प्रथा के अनुसार आपको कोई दोषी नहीं कह सकता। अलबत्ता, विवाह होने पर भी सावधानी की आवश्यकता है। विवाह का उद्देश्य चतुष्पद बनना नहीं, चतुर्भुज बनना है। विवाह पाशविकता का पोषण नही करता वरन् उसे सामर्थ्य का पोषक होना चाहिए। जो काम अकेले से नही हो सकता था, वह दोनों मिलकर करें, इसी अभिप्राय से विवाह किया जाता है। विवाह करने पर भी धर्म का विकास और ब्रह्मचर्य की रक्षा करना विवाहित नर-नारी का कर्त्तव्य है। ऋतुकाल के समय के अतिरिक्त दूसरे समय वीर्य का नाश करना अनुचित है। लेकिन मै यह बताता हूँ कि आप देव, गुरु और धर्म की सत्ता भूल कर उन्हे धोका देने की निष्फल चेष्टा करते हैं।

जब कोई दुराचारी परस्त्रीगमन करता है तो क्या कुंकु‌ं-पत्रिका भेजी जाती है? मंगल गान होता है? किसी की साक्षी दी जाती है? ऐसे समय किसी स्त्री को गाने के लिए बुलाया जाय तो क्या वह आएगी? और बतासे के बदले रुपया देने पर भी वह गाएगी? कदापि नहीं, क्योंकि वहाँ कपट और दम्भ को स्थान दिया जाता है और ईश्वर को भूल कर पाप किया जाता है। पापाचार का सेवन लुक छिप कर किया जाता है। उस समय सब की आँखो मे धूल डालने का प्रयत्न किया जाता है। मगर किसका सामर्थ्य है जो ईश्वर की दृष्टि से बच कर पाप का सेवन कर सके? ईश्वर सर्वदर्शी है। कौन उसकी निगाह से बाहर हो सकता है? जिसे ईश्वर की व्यापक सत्ता का ध्यान होगा, वह छिप कर भी पापाचार करने की चेष्टा नहीं करेगा। ईश्वर को विभु मानने वाला परस्त्री को माता व बहिन के रूप में ही देखेगा—पाप की दृष्टि से नहीं।

आप पूर्ण ब्रह्मचर्य का पालन न कर सको तो भी परस्त्री के विषय में जिस नियम से बँधे हो, उसका तो पालन करो। परस्त्रीगमन का त्याग तो करना ही चाहिए। यह मर्यादा भी साधारण नहीं है। शास्त्र इस मर्यादा की भी भूरि-भूरि प्रशंसा करते हैं। गृहस्थाश्रम मे रहने वाले भी देशतः शीलवान् हैं मगर परस्त्रीगमन का त्याग करने पर ही यह पद प्राप्त होता है। शील-वन्त की महिमा देवता भी गाते हैं। उसके सामने भयङ्कर विष-धर सांप भी फूल की माला के समान बन जाते हैं।

•

परस्त्री को माता मानने वाले महापुरुष के चरित इस बात के साक्षी हैं कि संसार मे रहते हुए भी जो परस्त्री को माता

मानते है, उनका कल्याण हो जाता है। इतिहास और शास्त्र मे ऐसे अनेक उदाहरण मौजूद है।

शिवाजी महाराष्ट्र का एक शक्तिशाली पुरुष हो गया है। इसके विषय मे कहा जाता है—'शिवाजी न होते तो सुनति होती सब की।' अब देखना चाहिए कि शिवाजी मे कौन-सा गुण था, जिसके कारण वह छत्रपति कहलाया ? एक सिपाही का लड़का होकर भी एक बडे राज्य का स्वामी बन गया और हिन्दू धर्म का रक्षक माना गया ? और शिवाजी का लडका संभाजी किस दुर्गुण के कारण शिवाजी से अधिक बलशाली होकर भी बुरी मौत से मारा गया ?

शिवाजी परस्त्री को माता मानता था पर संभाजी मे यह सद्गुण नहीं था। एक बार शिवाजी किसी गुफा में बैठा हुआ ईश्वर का भजन कर रहा था। उसके एक सरदार ने किसी दूसरे सरदार को जीत लिया। पराजित सरदार की स्त्री अतीव सुन्दरी और रूपवती थी। अपनी खैरख्वाही दिखलाने के लिए सरदार उस स्त्री को शिवाजी की स्त्री बनाने के लिए पकड लाया। उसने सोचा—"ऐसा रमणीरत्न पाकर शिवाजी की प्रसन्नता का पार नही रहेगा और मेरी पद-वृद्धि होगी।" ऐसा सोच कर सरदार उसे सिगार कर उस गुफा पर लाया, जिसमे शिवाजी भजन कर रहा था। भजन-कार्य समाप्त कर शिवाजी बाहर आया। स्त्री पर नजर पड़ते ही वह सारी बात समझ गया। उसने रुष्ट होकर सरदार से कहा—'मेरी इस माता को यहाँ किस लिए लाए हो ?'

सरदार सिर से पाँव तक काँप उठा। यद्यपि वह स्त्री से शिवाजी की पत्नी बनने की स्वीकृति ले चुका था, परन्तु शिवाजी

का उत्तर सुनकर वह हक्का-बक्का रह गया। आखिर वह स्त्री पालकी मे बैठा कर जहाँ की तहाँ पहुँचा दी गई।

शिवाजी के पुत्र संभाजी मे यह बात नहीं थी। वह सुरा और सुन्दरी का भक्त था। यद्यपि वह पराक्रम मे शिवाजी से भी बढकर था, लेकिन सुरा-सुन्दरी की लोलुपता के अवगुण ने उसका नाश कर डाला।

एक बार जोधपुर के वीर राठौड दुर्गादास औरंगजेब के लड़के को शरण दिलाने के लिए उसे साथ लेकर संभाजी के यहाँ गया। सभाजी ने उसका सत्कार किया। दुर्गादास संभाजी के दरबार मे बैठा ही था कि सदा के नियमानुसार वहाँ शराब चलने लगी। यह हाल देख कर और शिवाजी के उत्तराधिकारी के इस पतन का विचार कर उसे बडी ही निराशा हुई। उसने सोचा—जो स्वय ही सुरक्षित नहीं है, वह दूसरे को क्या शरण देगा? शराब दुर्गादास के सामने भी आई। दुर्गादास ने पीने से इन्कार कर दिया। संभाजी ने शराब की प्रशसा के पुल बाँधते हुए बहुत आग्रह किया, मगर दुर्गादास ने शराब की घोर निन्दा करते हुए सभाजी का आग्रह अस्वीकार कर दिया।

दुर्गादास एक मकान मे ठहराए गए। रात का समय था, वह बैठे बैठे ईश्वर का भजन कर रहे थे और अपने भविष्य के विषय मे विचार कर रहे थे कि इतने मे ही एक नवयुवती भागती और रक्षा के लिए चिल्लाती हुई उधर से आ निकली। संभाजी हाथ में तलवार लिये उसके पीछे था। दुर्गादास ने नवयुवती को अपने मकान में आश्रय दिया। सभाजी ने पहुँच कर कहा—'मेरे शत्रु को आश्रय देने वाला कौन है?' दुर्गादास

ने दृढ़ता के स्वर मे कहा— मै, दुर्गादास हूँ और अपने जीते जी इसकी रक्षा करूँगा।' संभाजी कुछ ढीले पडे। बोले—'तुम उसे मेरे सिपुर्द करदो।' दुर्गादास बोले—'महाराज, यह असंभव है। मै शरणागत का त्याग नही कर सकता।' सभाजी कामान्ध था और अब आन का भी कुछ खयाल हो आया। वह लडने पर उतारू हो गया और बोला—'अच्छा, अपनी तलवार हाथ मे लो।' दुर्गादास ने अविचलित स्वर मे कहा—'आपको इतना होश है कि निरस्त्र पर अस्त्र नहीं चलाते पर इस अवला के पास कौन-सा शस्त्र था कि आप उससे लडने चले है!'

दुर्गादास ने सम्भाजी की तलवार छीन ली, इतने में उसके बहुत से साथी आ गये और सम्भाजी की आज्ञा से उन्होंने दुर्गादास को पकड़ लिया। यद्यपि दुर्गादास अकेले ही उन सब के लिए काफी थे, मगर उन्होने बखेडा करना उचित नहीं समझा। कहते है—तब तक वह नवयुवती अपने ठिकाने पहुँच भी चुकी थी।

सम्भाजी के पास औरंगजेब का एक जासूस किबलेखा रहता था। उसे सुरा और सुन्दरी मे प्रवृत्त किया करता था। उसने सम्भाजी से दुर्गादास को मांग लिया, सम्भाजी ने दुर्गादास को उसके सिपुर्द कर दिया। उसने बन्दी के रूप मे दुर्गादास को औरगजेब के सामने पेश कर दिया और कहा—'आप जिसे बहुत दिनो से पकड़ लेना चाहते थे, वह दुर्गादास कैद हो गया है। उसे मैं पकड़ लाया हूँ। औरगजेब बहुत प्रसन्न हुआ। औरगजेब ने कहा—अच्छा, बन्दीगृह मे इसे रख दो। कल विचार करेंगे।

दुर्गादास कारागार मे बन्द कर दिया गया। औरंगजेब की बेगम गुलनार ने उदयपुर की लडाई में दुर्गादास को देखा था। उसकी तेजस्विता और वीरता देख बेगम उस पर मोहित हो गई थी। बेगम को जब दुर्गादास के कैद होने का समाचार मिला, तो उसे अपना बहुत दिनों का मनोरथ पूर्ण होने की आशा हुई। उसने बादशाह के पास जाकर कहा—'जहाँपनाह! कैदी दुर्गादास को मेरे हवाले कर दीजिए। उसका फैसला मैं करना चाहती हूँ। मैं जो वाजिब समझूँगी, वही सजा उसे दे दूँगी।'

बादशाह उसकी बात टाल नहीं सका। गुलनार की प्रसन्नता का पार न रहा। बेगम रात्रि के समय अपने लड़के को लेकर वहाँ गई, जहाँ दुर्गादास कैद था। लडके को बाहर खड़ा रख कर गुलनार भीतर गई। उसने हाव-भाव दिखलाते हुए दुर्गादास से कहा—'आज बहुत दिनों बाद मन की मुराद पूरी हुई। अब आप मुझे स्वीकार कीजिए। अगर आपने मुझे स्वीकार कर लिया तो आज ही बादशाह को परलोक भेज कर आपको दिल्ली का बादशाह बना दूँगी अगर आपने मेरी बात न मानी तो अभी गर्दन उड़वा दूँगी। मेरा लड़का नंगी तलवार लिये बाहर खड़ा है।'

ऊपर-ऊपर से देखोगे तो मालूम होगा कि धर्म का फल यह हुआ कि दुर्गादास के हाथो-पैरों मे हथकडी-बेड़ियाँ पड़ीं और मौत का वक्त आया। मगर बात यहीं समाप्त नहीं होती। जरा और आगे देखो कि धर्म के प्रताप से किस प्रकार रक्षा होती है।

दुर्गादास ने गुलनार से कहा—माँ, तुम मेरी माँ हो ! मुझे और कोई आज्ञा दो, उसका मै पालन करूँगा। पर यह काम मुझसे न होगा। चाहो तो सिर ले सकती हो।

गुलनार—सावधान ! तुम मुझे माँ कहते हो ! अच्छा मरने के लिए तैयार हो जाओ।

दुर्गादास—मरने के लिए तैयारी की क्या आवश्यकता है ? मरने का यह मौका भी ठीक है। मै तैयार ही खड़ा हूँ।

गुलनार ने अपने बेटे को बुला कर दुर्गादास की गर्दन उड़ा देने की आज्ञा दी। दुर्गादास ने गर्दन आगे की और उसी समय वहाँ औरगजेब का सिपहसालार आ गया। सिपहसालार ने दुर्गादास के कैद होने का समाचार सुना था। वह दुर्गादास की वीरता की कद्र करता था, अतएव मिलने के लिए चला आया था। उसने बेगम और दुर्गादास की बात सुनी थी। आते ही उसने गुलनार से प्रश्न किया—बेगम साहिबा ! आप यहाँ कैसे ?

बेगम—तुम यहाँ क्यो आये ?

सिपहसालार—यह तो मेरा काम है। मैने तुम्हारी सब बातें सुनी है। अब तक दुर्गादास को वीर समझता था, अब मालूम हुआ—वह बली भी है।

सिपहसालार ने दुर्गादास को कारागार से बाहर निकाला। उसकी प्रशंसा की और उसे जोधपुर रवाना करने की व्यवस्था करदी।

दुर्गादास बोले—सिपहसालार साहब ! आप मुझे मुक्त कर रहे है, मगर बादशाह का खयाल कर लीजिए। ऐसा न हो

कि मेरे कारण आपको दुःख सहन करना पडे।

सिपहसालार—मैं किसी हद तक ही बादशाह का नौकर हूँ। आप खुशी से जाइए। यह कह कर सिपहसालार ने कुछ सवार और अपना घोडा देकर दुर्गादास को जोधपुर रवाना कर दिया।

दुर्गादास जोधपुर पहुँच गये। इधर गुलनार ने सोचा—'अब बेइज्जती से जीना अच्छा नहीं है।' और उसने जहर खाकर अपने प्राण त्याग दिए।

सम्भाजी को उसी किबलेखाँ के हाथों कैद होना पड़ा। उसने उसे औरगजेब के सामने पेश किया और औरंगजेब ने सम्भाजी के हाथ-पैर कटवाकर उसे बड़ी बुरी तरह मरवा डाला। यह सब परस्त्रीगमन का ही परिणाम था।

परमात्मा को सदा सर्वत्र विद्यमान मानने वाला पुरुष पाप में कदापि प्रवृत्त न होगा और जो पाप मे प्रवृत्त न होगा, वह कल्याण का भागी होगा।
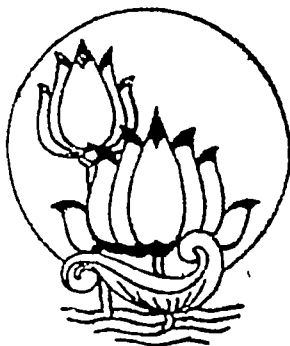
सामायिक

(१)

एक श्रावक सामायिक लेकर बैठा। उसी समय एक आदमी ने उसके घर आकर उसकी पुत्रवधू से पूछा-तुम्हारे ससुर कहाँ है ? श्रावक की पुत्र-वधू ने उत्तर दिया कि ससुरजी इस समय बाजार मे पसारी के यहाँ सोठ लेने गये है। वह आदमी श्रावक की पुत्र-वधू का उत्तर सुनकर, बाजार मे जा श्रावक की खोज करने लगा, परन्तु उसे श्रावक का पता न मिला। वह फिर श्रावक के घर आया और उसने श्रावक की पुत्र-वधू से कहा, कि सेठजी बाजार में तो नही मिले, वे कहाँ गये हैं ? श्रावक की पुत्र-वधू ने उत्तर दिया कि अब वे मोची बाजार में जूता पहनने गये है। वह आदमी फिर श्रावक की खोज मे गया, परन्तु श्रावक वहाँ भी नहीं मिला, इसलिए लौटकर उसने फिर श्रावक की पुत्र-वधू से कहा कि वे तो मोची बाजार मे भी नहीं मिले ! मुझे उनसे एक आवश्यक कार्य है इसलिए ठीक बता दो कि वे कहाँ गये है। पुत्र-वधू ने उत्तर दिया कि अब वे सामायिक मे हैं।

वह आदमी बैठ गया। श्रावक की सामायिक समाप्त हुई। सामायिक पालकर उसने उस आदमी से बातचीत की और फिर अपनी पुत्र-वधू से कहने लगा, कि तुम जानती थी कि मै सामायिक मे बैठा हुआ था, फिर भी तुमने उस आदमी को सच्ची बात न बताकर व्यर्थ के चक्कर क्यो खिलाये ? ससुर के इस कथन के उत्तर मे बहू ने नम्रता-पूर्वक कहा कि मैने जैसा देखा, उस आदमी से वैसा ही कहा। आप शरीर से तो सामायिक में बैठे थे, लेकिन आपका चित्त पंसारी और मोची के यहाँ गया था या नहीं ?

पुत्र-वधू का उत्तर सुनकर, उस श्रावक ने अपनी भूल स्वीकार की और भविष्य मे सावधान रहकर सामायिक करने की प्रतिज्ञा की।

(२)

दिल्ली मे एक जौहरी श्रावक सामायिक करने के लिए बैठा। सामायिक मे बैठते समय उसने अपने गले मे पहना हुआ मूल्यवान् कण्ठा उतार कर अपने कपडो के साथ रख दिया। वहीं पर एक दूसरा श्रावक भी उपस्थित था। उस दूसरे श्रावक ने जौहरी श्रावक को कण्ठा निकाल कर रखते देखा था। जब वह जौहरी श्रावक सामायिक मे था तब उस दूसरे श्रावक ने, जौहरी के कपडो मे से वह कण्ठा निकाला और जौहरी को कण्ठा बताकर उससे कहा कि मै यह कण्ठा ले जाता हूँ। यह कहकर वह दूसरा श्रावक, कण्ठा लेकर कलकत्ता के लिए चल दिया। यद्यपि वह कण्ठा मूल्यवान् था और जौहरी श्रावक के देखते हुए बल्कि जौहरी श्रावक को बता कर वह दूसरा श्रावक कण्ठा ले जा रहा था, फिर भी जौहरी श्रावक सामायिक से विचलित नहीं हुआ। यदि वह चाहता तो उस दूसरे श्रावक को कण्ठा ले जाने से रोक सकता था, अथवा हो-हल्ला करके उसको पकड़वा

सकता था, लेकिन यदि वह ऐसा करता तो उसकी सामायिक भी दूषित होती और सामायिक लेते समय उसने जो प्रत्याख्यान किया था, वह भी टूटता। जौहरी श्रावक दृढ़निश्चयी था, इसलिए कण्ठा जाने पर भी वह सामायिक मे समभाव प्राप्त करता रहा।

सामायिक करके जौहरी श्रावक अपने घर आया। उस समय भी उसको कण्ठा जाने का खेद नहीं था। उसके घर वालो ने उसके गले मे कण्ठा न देखकर, उससे कण्ठे के लिए पूछा भी कि कण्ठा कहाँ गया, लेकिन उसने घर वालो को भी कण्ठे का पता नहीं बताया। उनसे यह भी नहीं कहा, कि मै सामायिक मे बैठा हुआ था उस समय अमुक व्यक्ति कण्ठा ले गया, किन्तु यही कहा कि कण्ठा सुरक्षित है।

वह दूसरा श्रावक कण्ठा लेकर कलकत्ता गया। वहाँ उसने वह कण्ठा बन्धक (गिरवी) रख दिया, और प्राप्त रुपयो से व्यापार किया। योगायोग से, उस श्रावक को व्यापार से अच्छा लाभ हुआ। श्रावक ने सोचा, कि अब मेरा काम चल गया है, इसलिए अब कण्ठा जिसका है उसे वापस कर देना चाहिए। इस प्रकार सोचकर वह कण्ठा छुड़ाकर दिल्ली आया। उसने अनुनय, विनय और क्षमा प्रार्थना करके, वह कण्ठा जौहरी श्रावक को दिया तथा उससे कण्ठा गिरवी रखने एवं व्यापार करने का हाल कहा। उस समय घरवालो एवं अन्य लोगो को कण्ठा-सम्बधी सब बात मालूम हुई।

मतलब यह कि कोई कैसी भी क्षति करे, सामायिक मे बैठे हुए व्यक्ति को स्थिर-चित्त होकर रहना चाहिए, समभाव रखना चाहिए। हानि करने वाले पर क्रोध न करना चाहिए, न बदला लेने की भावना ही होनी चाहिए।

अमेरिका का जज

मित्रो ! दया का दर्शन करना हो तो गरीब और दुःखी प्राणियो को देखो । देखो, न केवल नेत्रों से, वरन् हृदय से देखो । उनकी विपदा को अपनी ही विपदा समझो और जैसे अपनी विपदा का निवारण करने के लिए चेष्टा करते हो वैसे ही उनकी विपदा निवारण करने के लिए यत्नशील बनो ।

सुना है कि अमेरिका का एक जज बग्घी मे बैठा अदालत जा रहा था । मार्ग मे उसने देखा कि एक सूअर कीचड़ मे ऐसा फँस गया है कि प्रयत्न करने पर भी वह निकल नहीं पाता है । सूअर की बेवशी देखकर जज गाडी मे उतर पडा और सूअर के पास जाकर कीचड से उसका उद्धार कर दिया । जब सूअर बाहर निकल आया और भाग गया तब जज प्रसन्न होकर अपनी गाडी मे बैठ गया । सूअर को निकालने में जज की पोशाक कीचड से भिड़ गई थी । कोचवान कहने लगा—'हुजूर आपने मुझे आज्ञा क्यो नहीं दी ? आपकी सारी पोशाक खराब होगई है । सूअर को तो मैं ही निकाल देता । जज ने जवाब

दिया—'इस कार्य से मुझे जो आन्तरिक आनन्द हुआ है, जो सात्त्विक सन्तोष हुआ है, वह तुम्हारे द्वारा कराने से क्या संभव हो सकता था ? भोजनजन्य आनन्दलाभ करने के लिए मनुष्य स्वयं खाता है, दूसरो को अपने बदले नहीं खिलाता तो फिर उस आनन्दप्रद कर्त्तव्य को मै स्वयं न करके दूसरे से क्यो कराता ?

जज साहब बग्घी मे बैठे और बग्घी अदालत की ओर अग्रसर हुई। अदालत पहुँचने पर वहाँ के लोगो ने जज साहब की पोशाक देखी तो वे आश्चर्य चकित हो रहे। सोचने लगे—आज मामला क्या है ? जज साहब और इस भेष में ।

आखिर कोचवान ने सारी घटना सुनाई। उसे सुनकर सब लोगो के विस्मय का पार न रहा। लोग कहने लगे—इतना बड़ा आदमी सूअर को भी कष्ट मे न देख सका ! जो व्यक्ति न्यायासन पर बैठकर अपने कर्त्तव्य का पालन करने मे कठोर से कठोर बन सकता है, वही दूसरे क्षण फूल से भी कोमल होता है ! कवि ने ठीक ही कहा है—

वज्रादपि कठोराणि, मृदूनि कुसुमादपि ।
लोकोत्तराणां चेतांसि, को हि विज्ञातुमर्हति ॥

अर्थात् असाधारण पुरुषो का चित्त वज्र से भी अधिक कठोर और फूल से भी अधिक कोमल होता है। उनके चित्त की थाह पाना बड़ा कठिन है।

सचमुच असाधारण पुरुष वही है जो अपने धर्म एवं कर्त्तव्य का पालन करने मे वज्र से भी अधिक कठोर बन जाता है। उसे संसार की कोई भी शक्ति धर्मपथ से या कर्त्तव्य मार्ग

से च्युत नहीं कर सकती। वह लोक-लाज की भी परवाह नही करता और अगर वैसा करने से कोई तात्कालिक बाधा आती है तो उससे भी नहीं डरता। किन्तु जब किसी प्राणी को विपदा में पड़ा हुआ पाता है तो उसका हृदय एक दम फूल-सा कोमल बन जाता है। दूसरे प्राणी के आन्तरिक सताप की आंच लगते ही उसका हृदय नवनीत की भांति पिघल जाता है।

जज साहब की दया से सभी प्रभावित हुए। सभी लोग मुक्तकँठ से उनकी प्रशंसा करने लगे। अपनी प्रशंसा सुनकर जज साहब ने कहा—मैंने सूअर का उद्धार नही किया है वरन् अपना उद्धार किया है। उस सूअर को कीचड़ मे फँसा देखकर मेरे हृदय ने दुःख अनुभव किया। अगर मैं उसे यों ही फँसा हुआ छोड आता तो मेरे दुःख का अकुर नष्ट न होता, बल्कि वह अधिकाधिक बढ़ता चला जाता। वह सूअर निकल गया तो मेरे दिल से दुःख का काटा निकल गया। मै अब निश्शल्य हूँ—निराकुल हूँ।

जज की यह कैफियत सुनकर लोग अधिक दग हुए। लोग पैसे भर भलाई करते हैं तो सेर भर अहसान लादने की चेष्टा करते है और अपना बडप्पन प्रकट करते नहीं अघाते। एक जज साहब है जो सूअर जैसे प्राणी पर उपकार करके भी अपने आपको उपकृत समझते हैं। न किसी पर अहसान, न किसी किस्म की डींग!

यह दया है। यह धर्म है। यह कर्त्तव्य है। जो दूसरे को दुःखी देखकर उसके दुःख को आत्मीय भावना से ग्रहण करता है और दूसरे के सुख मे प्रसन्न होता है वही दयालु है, वही धर्मी है, वही कर्त्तव्यनिष्ठ है।

सरलता

जिस काल मे अंधेरा होता है, शास्त्रकार उसे विषमकाल कहते है। ऐसा कोई काल नहीं है, जिसमे पाप न होते हो, मगर जिस काल मे पापो को छिपाने का प्रयत्न नहीं किया जाता, पाप होने पर प्रकट कर दिये जाते है और उनके परित्याग की भावना रहती है, उस काल मे चाहे जितने पाप हो फिर भी वह कल्याण का ही काल कहलाता है। अपराध इसी काल मे होते है, ऐसी कोई बात नही। पहले भी अपराध होते थे किन्तु भूतकाल मे अपराध, अपराध समझे जाते थे और उन्हें छिपाया नहीं जाता था, जब कि वर्त्तमान काल मे अपराधो को प्रकट करने की पद्धति बहुत ही कम दिखाई देती है और पापों एवं अपराधो को पाप एवं अपराध मानने वाले लोग भी बहुत कम नज़र आते हैं। मगर शास्त्र तो स्पष्ट घोषणा करते है कि सरल बनो, कपट न करो। अपराध के पाप से कपट का पाप कम नहीं वरन् ज्यादा ही है।

सरलता धारण करने से और अपराध को अपराध मानने से कितना लाभ होता है, इस बात के अनेक उदाहरण शास्त्र मे तथा इतिहास मे लिखे हैं। सती चंदनबाला और मृगावती का उदाहरण बहुत ही बोधप्रद है।

सती चन्दनवाला महान् सती मानी जाती है। वह समस्त सतियों में महती सती थी। इसी प्रकार मृगावती भी बडी सती मानी गई है। इन दोनों सतियो मे पारस्परिक प्रेम-सबध भी खूब घना था। फिर भी एक दिन, अनजान मे जब सती मृगावती अकाल मे स्थान से बाहर रह गई तो सती-शिरोमणि चन्दनबाला ने उनसे कहा—'आप सरीखी बडी सती को अकाल में बाहर रहना शोभा नही देता।' इस प्रकार चन्दनवाला ने मृगावती को मीठा उपालम्भ दिया। मृगावती सोचने लगी—'आज मुझे उपालम्भ सहना पड़ा।' यद्यपि मृगावती कह सकती थी कि मैं जान बूझकर बाहर नहीं रही। मगर उनमें ऐसा विनय था, ऐसी नम्रता थी कि वह ऐसा कह नहीं सकी। वह विनयपूर्वक खडी रहकर विचार करने लगी—'मुझ मे कितना अज्ञान है कि मेरे कारण मेरी गुराणीजी को इतना कष्ट हुआ। मेरी अपूर्णता न होती तो यह प्रसग ही क्यों उपस्थित होता ?'

इस प्रकार अपने अज्ञान का विचार करते-करते सारे ससार का विचार कर डाला कि अज्ञान ने क्या-क्या अनर्थ नहीं किये है ? अज्ञान ने मुझे ससार मे इतना घुमाया है। इस प्रकार अज्ञान की निन्दा और अपनी भूल के पश्चात्ताप के कारण उनमे ऐसे उज्ज्वल भाव का उदय हुआ कि अज्ञान का सर्वथा नाश होगया और केवलज्ञान प्रकट हो गया। केवलज्ञान प्रकट हो जाने पर भी सती मृगावती खडी ही रहीं।

इतने मे उन्होने अपने ज्ञान से देखा कि एक काला साँप उसी ओर जा रहा है, जिस ओर महासती चन्दनबाला हाथ को तकिया बनाकर सो रही हैं। हाथ हटा न लिया जाय तो सम्भव है, साँप काटे विना नही रहेगा। साँप ने काट खाया तो कितना घोर अनर्थ हो जायगा! इस प्रकार विचार कर साँप का मार्ग रोकने वाला महासती चन्दनबाला का हाथ हटा कर एक ओर कर दिया। हाथ हटते ही चन्दनबाला की आँख खुली। आँख खुलते ही उन्होने पूछा—'मेरा हाथ किसने खींचा ?' मृगावती बोली—'क्षमा कीजिए। आपका हाथ मैंने हटाया है।' चन्दनबाला ने फिर पूछा—'किसलिए हाथ हटाया है ?' मृगावती ने उत्तर दिया—'कारणवश हाथ हटाने से आपकी निद्रा भंग हो गई। आप मेरा यह अपराध क्षमा करे।' चन्दनबाला ने कहा—'तुम अभी तक जाग ही रही हो ?' मृगावती ने उत्तर दिया—'अब निद्रा लेने की आवश्यकता ही नहीं रही।' चन्दनबाला ने पूछा—'पर हाथ हटाने का क्या प्रयोजन था ?' मृगावती ने कहा—'इस ओर से एक काला साँप आ रहा था। आपका हाथ उसके रास्ते में था। सम्भव था वह आपके हाथ मे काट लेता। इसी कारण मैंने आपका हाथ हटा दिया।' चन्दनबाला ने फिर पूछा—'इस घोर अन्धेरी रात मे, काला साँप तुम्हे कैसे दिखाई दिया ?' इस अन्धेरी रात मे काला साँप दिखाई देना चर्मचक्षु का काम नही है। क्या तुम्हे केवलज्ञान उत्पन्न हो गया है ?' मृगावती ने उत्तर दिया—'यह सब आपका ही प्रताप है।'

सती मृगावती मे कितना विनय और कैसा उज्ज्वलतर भाव था! परिश्रम तो आज भी किया जाता है, मगर उसकी शा उलटी है। अर्थात् अपने अपराध छिपाने के लिए परिश्रम

किया जाता है। मृगावती जान-बूझकर अपने स्थान से बाहर नहीं रही थी। अनजान मे बाहर रह जाने पर भी अपने को अपराधी मानना कितनी सरलता है!

सती मृगावती को केवलज्ञान हुआ है, यह जानकर चन्दनवाला पश्चात्ताप करने लगीं। उन्होने सोचा—'मैंने ऐसी उत्कृष्ट सती को उपालम्भ दिया और केवली की भी आसातना की। मुझसे यह बड़ा अपराध बन गया है। मैं अपना अपराध तो देखती नहीं, दूसरों को उपालम्भ देती हूँ।' इस प्रकार पश्चात्ताप करती हुई सती चन्दनवाला ने मृगावती से कहा—'मैंने आपकी अवज्ञा की है और मेरे कारण आपको कष्ट पहुँचा है। मेरा यह अपराध आप क्षमा करें। जब मैं अपना ही अपराध नहीं देख सकती तो दूसरों को किस विरते पर उपालम्भ दे सकती हूँ?' मृगावती ने कहा—आपने मुझे जो उपालम्भ दिया, उसी का तो यह प्रताप है! फिर अनन्तज्ञान प्रकट हो जाने पर भी गुरु-गुरानी का विनय तो करना ही चाहिए। अतएव आप किसी प्रकार का पश्चात्ताप न करें। हाँ, मेरे कारण आपको जो कष्ट हुआ है, उसके लिए मुझे क्षमा कीजिए।'

चन्दनबाला विचारने लगी—इस तरह का उपालम्भ मैंने न जाने किसे-किसे दिया होगा! अज्ञान के कारण ऐसे अनेक अपराध मुझसे हुए होंगे। मैंने अपना अपराध तो देखा नहीं और दूसरों को ही उपालम्भ देने के लिए तैयार हो गई। चन्दनबाला इस प्रकार आत्मनिन्दा करते-करते उसे भी केवलज्ञान प्रकट हो गया।

कहने का आशय यह है कि सरलता धारण करने से और अपने पापों का गम्भीर विचार करने से आत्मा नवीन कर्मों का बंध नहीं करता।

———

धर्म का कांटा

महामति आत्मा का विचार कुछ विलक्षण ही होता है। विचारशील व्यक्ति के विचारो का आभास देने के लिए द्रौपदी और युधिष्ठिर के बीच जो वार्त्तालाप हुआ था, यहाँ उसका उल्लेख किया जाता है।

द्रौपदी बुद्धिमती थी। उसे समझा सकना सहज काम नही था, क्योकि वह सहज ही कोई बात नही मान लेती थी। वह उस बात के विरुद्ध तर्क भी करती थी। भीम और अर्जुन युधिष्ठिर से कहा करते थे-'हम आपकी आज्ञा के अधीन है। हर हालत मे हम आपका आदेश शिरोधार्य करेगे ही, परन्तु द्रौपदी को आप यह बात भलीभाँति समझा दीजिए। इस प्रकार कोई बात द्रौपदी के गले उतारना टेढ़ी खीर समझी जाती थी।

एक दिन द्रौपदी विनयपूर्वक हाथ जोड़कर धर्मराज के पास आकर बैठी। धर्मराज ने उससे पूछा—'देवी! स्वस्थ हो न?'

द्रौपदी—महाराज ! मन मे कुछ रखना और जीभ से कुछ कहना मैंने नहीं सीखा । मेरे हृदय में तो ज्वाला धधक रही है । इस स्थिति मे कैसे कहूं कि मै स्वस्थ हूँ ।

धर्मराज—तुम्हारा कहना सच है । तुम्हारे हृदय मे जो ज्वाला धधक रही है, उसका कारण मैं ही हूँ । मेरे ही कारण तुम सब को वनवास भोगना पडा है ।

द्रौपदी—मेरे हृदय मे एक सन्देह उत्पन्न हो गया है । मैं आपसे उसका निवारण कराना चाहती हूँ ।

धर्मराज—कहो, क्या सन्देह है ?

द्रौपदी—जिससमय दुष्ट दुश्शासन ने मुझे नग्न करने का प्रयत्न किया था, उस समय मेरे शरीर का वस्त्र बढ़ गया था । वह खींचते-खींचते थक गया लेकिन मुझे नग्न नही कर सका था। इस घटना से धृतराष्ट्र का हृदय परिवर्तन हो गया था और उन्होने मुझसे वर माँगने के लिए कहा था । उस समय मैंने यह वर माँगा था कि मेरे पति को गुलामी से मुक्त कर दिया जाय । उन्होंने मेरा यह वचन मानकर आप सबको मुक्त कर दिया था और राजपाट भी वापस सौंप दिया था । इस प्रकार वह घटना समाप्त हो गई थी । फिर आप दूसरी बार जूआ क्यो खेले ? जूआ खेलकर दूसरी बार बन्धन मे क्यों पडे ? क्या इस प्रश्न का आप समाधान करेंगे ?

युधिष्ठिर—जब पहली बार मैंने जूआ खेला तब तो मेरी भूल थी, मगर दूसरी बार खेलने मे मेरी कोई भूल नहीं थी । वह तो पहली भूल के पाप का प्रायश्चित्त था । मेरी इच्छा थी, मैंने

पहली बार जो भूल की है, उसका पश्चात्ताप मुझे करना ही चाहिए। उस भूल का दण्ड मुझे भोगना ही चाहिए। मैं उस भूल के दण्ड से बचना नहीं चाहता था। यद्यपि अपनी भूल का तात्कालिक फल मुझे मिल गया था, पर तुम्हारे वरदान से वह दण्ड क्षमा कर दिया गया था। भूल करके तुम्हारे वरदान के कारण दण्ड से बच निकलना कोई अच्छी बात नहीं थी। जो स्वयं पाप करता है किन्तु पत्नी के पुण्य द्वारा, पाप के दण्ड से बचना चाहता है, वह धर्म को नहीं जानता। इसके अतिरिक्त काका ने तुम्हे जो वरदान दिया था, वह हृदय परिवर्तन के कारण नहीं वरन् भय के कारण दिया था। उनके हृदय मे सचमुच ही परिवर्तन हुआ होता तो वह दूसरी बार भी हम लोगो को वन मे न जाने देते। वास्तव मे उनका हृदय बदला नहीं था। बल्कि उनके हृदय मे यह भावना थी कि किसी भी उपाय से पाण्डव दूर चले जाएँ और मेरे पुत्र निष्कंटक राज्य भोगे। हृदय मे इस प्रकार की भावना होते हुए भी, लोकापवाद के भय से ही काका ने मीठे वचन कहकर तुम्हे वरदान दिया था। अतएव मैंने सोचा—मुझसे जो अपराध हुआ है, उसके दण्ड से बच निकलना उचित नहीं है। मुझे अपनी भूल का फल भोगना ही चाहिए। मैं दुर्योधन से यह कहना चाहता था कि तुझे जो करना हो सो कर, लेकिन मैं पत्नी को मिले वरदान के कारण वनवास से नहीं बचना चाहता। मै मन ही मन यह करने का विचार कर ही रहा था कि उसी समय दुर्योधन का आदमी मेरे पास आया। उसने मुझसे कहा—'आपको दुर्योधन महाराज फिर जूआ खेलने के लिए बुलाते है।' दुर्योधन का यह सन्देश सुनकर मुझे प्रसन्नता हुई। मैंने निश्चय किया—इस बार फिर सर्वस्व हार जाना ही उचित है, जिससे मै वन मे जा सकूँ और पत्नी के

कारण मिली हुई वनवासमुक्ति से मुक्त हो सकूं। मेरे भाई मेरे निश्चय का अनुसरण करें या न करें, परन्तु मुझे तो वनवास करना ही चाहिए। इस प्रकार निश्चय करके मैंने फिर जूआ खेला और उसमें हार गया। मन में निश्चित किये विचारों को पूर्ण करने के लिए ही मैंने दुबारा जूआ खेला था।'

युधिष्ठिर का यह स्पष्टीकरण सुनकर द्रौपदी कहने लगी—आपने यह तो नवीन ही बात सुनाई! आपके दूसरी बार जूआ खेलने का मतलब तो मैं समझ गई। लेकिन एक दूसरी बात मैं पूछना चाहती हूं। वह यह है कि जब गन्धर्व ने दुर्योधन को कैद कर लिया था तब आपने उसे छुड़ाने के लिए भीम और अर्जुन को क्यों भेजा था?

युधिष्ठिर उत्तर देते हुए कहने लगे—देवी! मैं जिस कुल में उत्पन्न हुआ हूँ उसी कुल के मनुष्य को, जिस वन में मैं रहता हूँ उसी वन में मार डाला जाय, यह मैं कैसे देख सकता हूँ! तुम पीछे आई हो, लेकिन कुल के संस्कार मुझमें तो पहले से ही विद्यमान हैं। हम और कौरव आपस में भले ही लड़ मरें, मगर हमारा भाई दूसरे के हाथ से मार खाय और हम चुपचाप बैठे देखें, यह नहीं हो सकता। इसी कारण दुर्योधन को गन्धर्व के सिकंजे में से छुडाने का मुझे कोई पश्चात्ताप नहीं है। उलटा इससे मुझे आनन्द है। दयाभाव से प्रेरित होकर मैंने दुर्योधन को शत्रु के पंजे से छुड़ाया है।

धर्मराज का यह कथन सुनकर द्रौपदी कहने लगी—आप इस समय जो कष्ट भोग रहे हैं, वह सब इसी दया का परिणाम है न? आपने उसे बचाया मगर वह दुष्ट आपका उपकार मानता

है ? अजी, वह तो उलटा हमें कष्ट देने का ही प्रयत्न करता है।

युधिष्ठिर—देवी ! लोग जब वन मे चलते है तो अपने पैर के नीचे फूल भी आ जाते है। यद्यपि उसे पैर से कुचलकर हम उसका अपराध करते है तथापि वह अपना स्वभाव नहीं छोड़ता। जब फूल भी अपना स्वभाव नहीं छोडता तो फिर दुर्योधन की करतूत देखकर मै अपना स्वभाव कैसे छोड़ दूं ? दुर्योधन हमारे प्रति चाहे जैसा व्यवहार करे परन्तु मैं अपना क्षमाभाव नहीं त्याग सकता। जैसे भीम को गदा का और अर्जुन को गांडीव का प्रयोग जैसे प्रत्यक्ष दिखाई देता है वैसा क्षमा का प्रयोग प्रत्यक्ष दिखाई नही देता और न उसका तात्कालिक फल ही दृष्टिगोचर होता है। परन्तु मुझे अपनी क्षमा पर विश्वास है। मैं विश्वास पूर्वक मानता हूँ कि जैसे दिमक वृक्ष को खोखला कर देती है उसी प्रकार मेरी क्षमा ने दुर्योधन को खोखला बना दिया है। दीमक के द्वारा खोखला होने के पश्चात वृक्ष चाहे आँधी से गिरे या बरसात से, मगर उसे खोखला बनाने वाली चीज तो दीमक ही है। इसी प्रकार दुर्योधन का पतन चाहे गदा से हो या गांडीव से, लेकिन उसे निस्सत्त्व बनाने वाली मेरी क्षमा ही है। अगर मेरी क्षमा उसे खोखला न कर सकी तो गदा या गांडीव का उस पर कोई प्रभाव नहीं पड सकता।

द्रौपदी ने कहा—धर्म की यह तराजू अद्भुत है। आपके कथन से ऐसा प्रतीत होता है कि आप प्रत्येक कार्य धर्म की तुला पर तोल कर ही करते है।

युधिष्ठिर—साधारण चीजें तोलने के कांटे मे कुछ पासग भी रहता है, लेकिन जवाहिर या हीरा माणिक तोलने के कांटे

में रंचमात्र भी पासंग नहीं चल सकता। इसी प्रकार धर्म का काटा, बिना किसी अन्तर के, ठीक निर्णय दे देता है। मै अपने धर्मकाटे में तनिक भी अन्तर नहीं आने देता। मैं अपना अपकार करने वाले का भी उपकार ही करूँगा और इसका कारण यही है कि मेरी धर्मतुला ऐसा करने के लिए मुझे बाध्य करती है।'

मित्रों! आपको भी युधिष्ठिर के समान क्षमा धारण करनी चाहिए या नहीं? अगर आज ऐसी क्षमा का व्यवहार करना आपके लिए शक्य न हो तो कम से कम श्रद्धा में तो क्षमा रक्खी ही जा सकती है। क्षमा पर परिपूर्ण श्रद्धा रखना तो सम्यग्दृष्टि का स्वाभाविक गुण है। सब पर समभाव रखने वाला ही सम्यग्दृष्टि कहलाता है। समभाव धारण करने वाले में इसी प्रकार की क्षमा की आवश्यकता है। आज आप लोगों के व्यवहार में इस क्षमा के दर्शन नहीं होते, मगर युधिष्ठिर जैसों के चरित में वह मिलती ही है। अतएव उसकी शक्यता के सम्बन्ध में शंका नहीं उठाई जा सकती।

सत्यवीर हरिश्चन्द्र

आत्मा को मामूली बात के लिए पतित करना कितनी भयंकर भूल है? इस भूल के संशोधन का एक कारगर उपाय गर्हा करना है। सच्ची गर्हा करने से आत्मोन्नति होती ही है, क्योंकि गर्हा आत्मोन्नति और आत्मशुद्धि का प्रधान कारण है। सच्ची गर्हा करने वाला पुरुष आत्मा को भी पतित नहीं होने देता। चाहे जैसा भयानक संकट आ पड़े, फिर भी आत्मा को पतित न होने देना ही सच्ची गर्हा का अवश्यम्भावी फल है।

राजा हरिश्चन्द्र का राजपाट वगैरह सब चला गया। उसने इन सब चीजों को प्रसन्नतापूर्वक जाने दिया, मगर आत्मा को पतन से बचाने के लिए सत्य न जाने दिया। आखिर उस पर इतना भयंकर संकट आ पड़ा कि एक ओर मृत पुत्र सामने पड़ा है और दूसरी ओर उसकी पत्नी दीन वाणी में कहती है कि पुत्र का सस्कार करना आपका कर्त्तव्य है। यह आपका पुत्र है। आप इसका संस्कार न करेंगे तो कौन करेगा?

पत्नी के इस प्रकार कहने पर भी हरिश्चन्द्र ने यही उत्तर दिया कि मेरे पास इसका संस्कार करने की कोई सामग्री नहीं है!

हरिश्चन्द्र की पत्नी तारा ने कहा—अग्निसंस्कार करने के लिए और क्या सामग्री चाहिए? लक्कड़ सामने पड़े ही हैं। फिर अग्निसंस्कार करने में विलम्ब की क्या आवश्यकता है?

हरिश्चन्द्र ने उत्तर दिया—तुम ठीक कहती हो, पर यह लक्कड़ मेरे नहीं, स्वामी के हैं। स्वामी की आज्ञा है कि कर देने वाले को ही लकड़ियाँ दी जाएँ। अतएव यह लकड़ियाँ बिना मोल नहीं मिल सकतीं।

यह सुनकर तारा बोली—आपका कथन सत्य है, पर आप एक टके का कर किससे माँग रहे हैं? क्या मैं आपकी पत्नी नहीं हूँ? इस समय मेरे पास एक टका नहीं है।

राजा ने कहा—रानी! पुत्रवियोग के कारण तुम मोह में पड़ गई हो। तुम अपने ध्येय को भी भूली जा रही हो। विचार करो, तुम कौन हो? तुम एक राज्य की महारानी हो, फिर भी केवल सत्य का पालन करने के लिए ही दूसरे के घर की दासी बनी हो। तुम मुझे स्वामी कहती हो सो मैं पूछता हूँ कि मेरी हड्डियों को स्वामी कहती हो या आत्मा को? तुम भलीभाँति जानती हो कि जो पुरुष एक दिन प्रतापशाली राजा था और जिस ओर नजर फेरता था उसी ओर लक्ष्मी विलास करने लगती थी, वह राजा सत्य के लिए ही दूसरे का दीन दास बना है। जिस सत्य का पालन करने के लिए मैंने और तुमने इतने कष्ट उठाये हैं क्या आज उसी सत्य का परित्याग कर देना

उचित है ? अगर मैं कर वसूल किये विना, स्वामी की आज्ञा के विरुद्ध लकड़ियाँ दे दूं और पुत्र का अग्निसंस्कार कर डालूँ तो सत्य का विघात होगा या नही ?

राजा हरिश्चन्द्र का यह सत्याग्रह सच्ची गर्हा का स्वरूप स्पष्ट करता है। आज तुम्हे भी विचार करना चाहिए कि सत्य का पालन करने के लिए कितना त्याग सीखने की आवश्यकता है। नाशशील शरीर के लिए तो थोडा-बहुत त्याग किया जाता है किन्तु अजर-अमर आत्मा के लिए तनिक भी त्याग करते नही बन पड़ता। यह कितनी भयानक भूल है।

हरिश्चन्द्र का कथन सुनकर रानी बोली—'वास्तव मे आपका कहना ठीक है। सत्य का त्याग करना कदापि उचित नहीं है, परन्तु पुत्र का शव यो ही पडा रहने देना और उसका संस्कार न करना भी क्या उचित है ?'

राजा ने उत्तर दिया—'जो होनहार होगा, होगा। परन्तु शव के संस्कार के लिए सत्य का घात करना उचित नहीं। सत्य सबसे श्रेष्ठ है, इसलिए सर्वप्रथम सत्य की ही रक्षा करनी चाहिए।'

कतिपय लोग कह देते है—'क्या किया जाय, अमुक ऐसा कारण उपस्थित हो गया कि उस समय सत्य का पालन करना अत्यन्त कठिन था। किसी भी युक्ति से उस समय काम निकालना आवश्यक था।' इस प्रकार कहकर लोग सत्य की उपेक्षा करते है। किन्तु ज्ञानी जनों का कथन है कि सत्य पर विश्वास रखने मे तुम्हारे भीतर अलौकिक शक्ति का प्रादुर्भाव होगा और उस दशा मे तुम्हारा कोई भी कार्य अटका नहीं रहेगा। शास्त्र मे कहा ही है—

देवा वि तं नमंसंति जस्स धम्मे सया मणो ।

सत्य का निरन्तर पालन करने से देवता भी तुम्हारी सेवा में उपस्थित होंगे। मगर आज तो यह कहा जाता है—

देव गया द्वारिका, पीर गया मक्का।
अंगरेजों के राज्य में, ढेढ़ मारे धक्का।

अर्थात्—आजकल कलियुग चल रहा है। देव भी न जानें कहाँ विलीन हो गये है।

मगर देवों को देखने से पहले अपनी आत्मा को क्यों नहीं देखते? तुम्हारे हृदय के भाव देखकर ही देव आ सकते हैं। तुम में धर्म होगा तो देव अपने आप आ जाएँगे। अतएव धर्म को अपनाओ—हृदय मे धर्म को स्थान दो।

रानी ने राजा से कहा—पुत्र के शव का संस्कार करने का एक उपाय है। उस उपाय से पुत्र के शव का अग्निसंस्कार भी हो जायगा और सत्य की रक्षा भी हो जायगी। राजा के पूछने पर रानी ने उपाय बतलाया—मैंने जो साड़ी पहन रक्खी है, उसमे से आधी साड़ी से अपनी लाज बचा लूँगी और आधी आपको कर के रूप में दे देती हूँ। आप आधी साड़ी लेकर पुत्र का संस्कार कीजिए।

राजा ने यह उपाय स्वीकार किया। कहा—ठीक है, इससे दोनों कार्य सिद्ध किये जा सकते हैं।

रानी इस विचार से बडी प्रसन्न थी कि इस उपाय से मेरे और मेरे पति के सत्य की रक्षा भी हो जायगी और पुत्र का अग्निसंस्कार भी हो जायगा। रानी में उस समय ऐसा वीररस

आया कि वह तत्काल ही अपनी आधी साडी फाड़ देने को तैयार हुई।

महारानी तारा तो सत्यधर्म की रक्षा के लिए अपनी आधी साड़ी फाड़ देने को तैयार है पर आप अपने धर्म की रक्षा के लिए और अहिंसा का पालन करने के लिए चर्बी वाले वस्त्र भी नहीं तज सकते! तुम्हे गरीब प्राणियो पर इतनी भी दया नही आती! चर्बी वाले वस्त्र पहनने से उन्हे कितना दुःख सहन करना पडता है? मालूम हुआ है कि यंत्रवादी लोग गरीब मजदूरों के हित का ध्यान नहीं रखते। अगर कुछ ध्यान देते भी है तो बस उतना ही जिससे उनके स्वार्थ मे बाधा न आवे। गरीबो पर दया रखकर वे उनके हित के लिए कुछ भी नहीं करते। प्रायः यन्त्रवादी लोगो मे गरीबो के प्रति दया होती ही नहीं। ऐसी दशा मे तुम चर्बी वाले मिल के वस्त्र पहनकर गरीबों का दुःख क्यो बढ़ाते हो? एक बार मिल के और खादी के कपड़ों की तुलना करके देखो तो मालूम होगा कि दोनों मे कितना अधिक अन्तर है! यह अन्तर जान लेने के बाद अहिंसा की दृष्टि से, धर्म की दृष्टि से और आर्थिक दृष्टि से खादी अपनाने की इच्छा हुए विना नहीं रहेगी।

गरीबों पर दया करने के लिए ही गांधीजी ने अधिक वस्त्र पहनना त्याग दिया है। उन्होंने वस्त्रो की मर्यादा बाँध ली है और मर्यादित वस्त्रो से ही अपना काम चलाते हैं। वस्तुतः इस उष्ण देश मे अधिक वस्त्रों की आवश्यकता भी नहीं है। वस्त्र मुख्यरूप से लज्जा की रक्षा करने के लिए ही है। अगर इसी दृष्टि से वस्त्रो का उपयोग किया जाय तो बहुत लाभ होगा। इस देश में यद्यपि थोड़े ही वस्त्रो से काम चल सकता है, फिर भी

यहाँ के लोग एक दूसरे के ऊपर, कम से कम तीन वस्त्र तो प्रायः पहनते ही हैं। तीन से कम वस्त्र पहनना फैशन के खिलाफ समझा जाता है। ठूंस ठूंस कर पहने हुए वस्त्रों के कारण भले ही पसीना हो और वह भीतर ही सूखकर शरीर को हानि पहुँचाए, मगर तीन से कम वस्त्र पहनना तो फैशन के विरुद्ध ठहरा।

तुम्हे देखना चाहिए कि तुम्हारे गुरु किस प्रकार रहते है। हम तुम्हारे बीच में बैठे है, इसी कारण लज्जा की रक्षा के लिए हमें वस्त्र ओढ़ना पडता है। अगर हम जंगल में जाकर, एकान्त मे बैठें तो हमें वस्त्र की आवश्यकता ही न रहे। तुम लोग ऐसे त्यागी गुरुओं के उपासक होते हुए भी चर्बी लगे वस्त्रों तक का त्याग नहीं कर सकते, यह कितनी अनुचित बात है।

रानी ने वीरता के आवेश मे अपनी आधी साड़ी फाड़ डाली। रानी ने अपनी साड़ी क्या फाडी, मानो अपने कष्ट ही फाड़ कर फैंक दिये। उसकी साड़ी के तार क्या टूटे, मानो उसका तीव्र अन्तरायकर्म ही टूट गया।

रानी को इस प्रकार साड़ी फाडते देखकर राजा को दुःख हुआ। उसने सोचा—मेरी पत्नी के पास एक ही साड़ी थी और वह भी आधी दे देनी पड़ी। लेकिन दूसरे ही क्षण यह विचार कर प्रसन्नता भी हुई कि ऐसा करने से हमारे सत्य की रक्षा हुई है। अन्त में राजा-रानी का कष्ट दूर हुआ और उनके सत्य की भी रक्षा हुई।

कहने का आशय यह है कि संकट सिर पर आने पर भी अपने आपको पतित न होने देना चाहिए।

स्तुति का प्रताप

किसी राजा ने एक चोर को शूली की सजा दी। उसने दूसरे लोगो पर अपराध के दण्ड का आतंक जमाने के लिए शूली चढ़ाने की जगह नागरिक जनता को भी बुलाया और सब लोगो को आज्ञा दे दी कि कोई भी मनुष्य चोर को सहायता न दे। चोर को शूली पर चढ़ाने का हुक्म दिया गया और सब लोग अपने-अपने घर लौट गये। जिस जगह चोर को शूली दी जानी थी, उस जगह से निकलते हुए सभी लोग चोर की निन्दा करते जाते थे। एक श्रावक भी उसी जगह से निकला। चोर को देखकर उसने सोचा कि मुझे चोर की निन्दा नहीं करनी चाहिए किन्तु चोरी की निन्दा करनी चाहिए। चोरी करके दण्ड भोगने वाला पुरुष तो करुणा का पात्र है।

कितने ही लोग दुखी को देखकर कहते हैं कि यह तं अपने कर्मों का फल भुगत रहा है। इस पर करुणा कैसी लेकिन वास्तव मे करुणा का पात्र तो दुखी जीव ही है। दूस के दु:ख को अपना दु:ख मानना ही करुणा है।

उस श्रावक को चोर पर करुणा आई। वह चोर के पास जाकर उससे कहने लगा—'भाई! तुम्हारे ऊपर मुझे अत्यन्त दया है। मगर मैं क्या सहायता कर सकता हूँ?'

श्रावक का यह कथन सुनकर चोर प्रसन्न हुआ और मन ही मन कहने लगा—बहुत से लोग इस रास्ते से निकले पर इस सरीखा दयालु कोई नहीं था।

ऐसे दुखी मनुष्य को देखकर तुम्हें उस पर करुणा उत्पन्न होगी या नहीं? ऐसी दुःखमय अवस्था इस आत्मा ने न जाने कितनी बार भोगी होगी! इस प्रकार आज आत्मा जो करुणा दूसरे पर प्रकट कर रहा है सो न जाने कितनी बार स्वयं उस करुणा का पात्र बन चुका है। ऐसी अवस्था में भी आज लोगों के हृदय से करुणाभाव की कमी हो रही है। करुणा की कमी का खास कारण स्वार्थभावना है। स्वार्थभावना जब हृदय से घर कर बैठती है तब करुणामूर्ति माता मे भी भेदभाव आ जाता है और उसमें से भी करुणा निकल जाती है। माता की भी जब ऐसी स्थिति हो सकती है तो स्वार्थभावना के कारण अगर दूसरो में भी दुखियों के प्रति करुणा न रहे तो इसमें आश्चर्य ही क्या है?

सेठ के मीठे बोल सुनकर चोर को बड़ी प्रसन्नता हुई। सेठ ने उस चोर से कहा—'मैं तुम्हारी कुछ सेवा कर सकूँ तो कहो।' चोर बोला—'आपको और तो क्या कहूँ। हाँ, इस समय मैं बहुत प्यासा हूँ। पीने के लिए थोड़ा पानी दे दो।' सेठ ने कहा—बहुत अच्छा। मैं अभी पानी लाता हूँ। राजा की ओर से मुझे जो दण्ड मिलना होगा सो मिलेगा, लेकिन मैं पानी लाने जाऊँ

और इतने ही समय मे कदाचित् प्राण–पखेरू उड जाएँ तो तुम्हे न जाने क्या गति मिलेगी। इस कारण तुम मेरा उपदेश सुनकर ध्यान मे रक्खो तो तुम्हारा कल्याण होगा।

चोर ने सेठ की बात मानना स्वीकार किया। सेठ ने उसे णमोक्कारमन्त्र सुनाया और कहा—मै पानी लेकर आता हूँ, तब तक इस मन्त्र का जाप करते रहना। चोर ने पहले कभी यह मन्त्र नहीं सुना था और इस समय वह घोर संकट मे था। उसे णमोक्कारमन्त्र याद नहीं रहा। वह उसके स्थान पर इस प्रकार कहने लगा—

आनू तानू कछू न जानूँ, सेठ वचन परमानू॥

उसने इस प्रकार णमोक्कारमन्त्र का जाप किया। यह स्तव नही तो स्तुति तो हुई। चोर मर कर न जाने किस गति मे जाता लेकिन स्तुति के प्रभाव से वह देव हुआ। यह स्तुति का ही प्रताप है।

भविष्य की ओर

तपस्वी मुनि श्री रघुनाथजी महाराज फक्कड़ साधु थे। वह एक बार जोधपुर मे थे, तब जोधपुर के सिंघीजी ने उनकी प्रशसा सुनी और उनके दर्शन करने आये। रघुनाथजी महाराज ने सिंघीजी से पूछा—आप कुछ धर्मध्यान करते हैं या नहीं? सिंघीजी ने उत्तर दिया—'महाराज ! पहले बहुत धर्मध्यान किया है, उसके फलस्वरूप सिंघी सरीखे उत्तम कुल मे जन्म पाया है, पैर में सोने का कड़ा पहरने को मिला है, जागीर मिली है, हवेली है और अच्छे कुल की कन्याएँ भी प्राप्त हुई है। ऐसी स्थिति मे पहले किये पुण्य का फल भोगें या अब नया करने बैठें।'

तपस्वीजी ने उत्तर दिया—सिंघीजी, यह सब तो ठीक है कि आपने पहले जो धर्मध्यान किया है, उसका फल आप भोग रहे है। मगर यदि भविष्य के लिए धर्मध्यान न किया और मृत्यु के पश्चात् कुत्ते का जन्म धारण करना पड़ा तो आपको उस हवेली में कौन घुसने देगा ?

सिंघीजी—महाराज ! ऐसी अवस्था मे तो हवेली मे कोई नहीं घुसने देगा।

तपस्वीजी—इसीलिए हम कहते है, भविष्य के लिए धर्म-ध्यान करो।

मैं भी आपसे यही कहता हूँ कि आपको उत्तम मनुष्य-जन्म, उत्तम जैनधर्म, उत्तम धर्मक्षेत्र आदि का सुयोग मिला है। इस अनमोल अवसर का लाभ उठाकर आत्मकल्याण साधो। इसी मे कल्याण है। दूसरे आत्मकल्याण की साधना करें या न करें, उस पर ध्यान न देते हुए आप अपना कल्याण करने में प्रयत्नशील रहे।

जाति भाई

पूज्य श्री श्रीलालजी महाराज के मुखारविंद से मैंने सुना है कि बीकानेर मे वैद मुहता हिंदूसिंहजी दीवान थे। वह स्थानकवासी जैन थे। बीकानेर में उनकी खूब प्रतिष्ठा थी और राजदरबार में भी बड़ी इज्जत थी। एक बार दीवान साहब भोजन करने बैठे ही थे कि एक घी की फेरी करने वाला वणिक आया। उसने दीवान साहब से कहा—'क्या आप घी खरीदेंगे? हिंदूसिंहजी ने उसे देखकर अनुमान किया कि यह कोई महाजन ही है। इस प्रकार अनुमान करके उसे अपने पास बुलाया और पूछा—'भाई, कहाँ रहते हो?' घी बेचने वाले ने अपना गाँव बतला दिया। दिवान ने कहा—'उस गाँव मे तो हमारा भाई भी रहता है। वहाँ वैद मुहता का घर है न?' दीवान का यह प्रश्न सुनकर घी-विक्रेता कुछ लज्जित हुआ और कहने लगा—आप इतने बडे आदमी हो कर भी हमें याद रखते हैं, यह बड़े ही आनन्द की बात है। हिंदूसिंहजी समझ गये कि यह घी-विक्रेता भी वैद मुहता गोत्र का ही है। तब दीवान ने उससे

कहा—'अच्छा भाई, आओ थोडा भोजन करलो।' वी वाला उनके साथ भोजन करने मे सकोच करने लगा, पर उन्होंने कहा- 'अरे भाई, इसमे लजाने की क्या बात है? तुम तो मेरे भाई हो।' आखिर दोनो ने एक ही थाल मे भोजन किया और दीवान ने आग्रह करके उसे बढिया-बढ़िया भोजन जिमाया।

दीवान के इस कार्य से उसका महत्व घटा या बढा? सुना जाता है कि यहाँ (जामनगर मे) अपने सहधर्मी भाइयो के साथ भेदभाव रक्खा जाता है। सहधर्मी भाइयो मे भेद डालने वाले किसी भी विधान को स्वीकार करना किस प्रकार उचित कहा जा सकता है? खेती करने वाले गरीब सहधर्मी भाइयो के साथ इस तरह का भेदभाव रक्खा जाता है परन्तु उनके द्वारा उत्पन्न किये अनाज के साथ कोई भेदभाव नहीं किया जाता। गरीब भाइयो द्वारा उत्पन्न किया अनाज खाना छोड दो तो पता चलेगा कि उनके प्रति भेदभाव रखने का क्या नतीजा होता है। आज दूसरे लोग तो अस्पृश्यो को भी स्पृश्य बनाते जा रहे है और तुम अपने ही जाति भाइयो को दुरदुरा रहे हो। तुम उनके साथ भी परहेज करते हो! वह तो जैन हैं, तुम्हारी ही जाति के हैं और यहाँ आकर धर्मक्रिया भी करते है। परन्तु वह भी तुम्हारे साथ भोजन करने नही आ सकते। भला वह लोग इस प्रकार का अपमान कैसे सहन कर सकते है? ऐसी स्थिति मे अपने सहधर्मी के लिए या अपने धर्म के लिए कष्ट सहन करना पड़े तो सह लेना उचित है, किन्तु इस विधान को बदलना आवश्यक है।
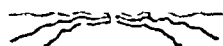
संघ-संगति

सघ में किस प्रकार की संगति होनी चाहिए, इस विषय में एक उदाहरण लीजिये—

भारतवर्ष में युधिष्ठिर धर्मात्मा के रूप मे प्रसिद्ध हैं। जैन और अजैन, सभी युधिष्ठिर को महापुरुष और धर्मात्मा मानते हैं। दूसरी ओर दुर्योधन पापात्मा था। उसने भीम को नदी मे पटक दिया था और पांडवों के घर मे आग सुलगा दी थी फिर भी अपने पुण्यप्रताप से पांडव बच गये। दुर्योधन ने युधिष्ठिर को जूए मे हराकर पांडवों को जगल मे भेज दिया था। जंगल मे वे अनेकों कष्ट भुगत रहे थे। पांडव स्वयं बलवान् थे और फिर श्रीकृष्ण जैसे उनके सहायक थे। पाडव चाहते तो दुर्योधन को परास्त कर देना उनके बाएँ हाथ का खेल था। मगर युधिष्ठिर कहते थे—जो बात जीभ से कह दी है उसका पालन जीव को जोखिम मे डालकर भी करना चाहिये। द्रौपदी इस विषय मे युधिष्ठिर को उपालंभ देती और कहती—भीम और अर्जुन सरीखे बलवान् भाइयों को विपत्ति में डालने वाले तुम्हीं

हो। तुमने उन्हे कैसा दीन बना दिया है। मैं राजकन्या और राजपत्नी हो कर भी जगली अन्न से उदरपूर्ति करती हूँ। इसके कारण भी तुम्हीं हो।

पत्नी की ऐसी बातें सुनकर पुरुप का उग्र बन जाना स्वाभाविक है। परन्तु द्रौपदी की बातों के उत्तर मे युधिष्ठिर कहते हैं—'देवी। आज तुममे इतनी उग्रता क्यो जान पड़ती है? मुझे तो ऐसे कष्ट के समय भी सब भाई बड़े ही सुन्दर जान पडते है और तू भी बहुत सुन्दर दिखाई देती है। इस समय मैं भी ऐसा हूँ कि इन्द्र भी मेरी बराबरी नही कर सकता। तुम इस को खराब बतलाते हो परन्तु मै पूछता हूँ कि यह समय खराब है या वह समय खराब था जब वस्त्रहीन करने के लिए तुम्हारा चीर खींचा गया था?

द्रौपदी ने उत्तर दिया—वह समय तो बहुत ही खराब था। इस समय निश्चिन्त हो जीवनयापन कर रहे हैं मगर उस समय तो जीवित रहना भी कठिन हो गया था। उस समय का दुःख तो महाभयंकर था।

युधिष्ठर बोले—तो उस समय किसने तुम्हारी लाज रक्खी थी? उस समय को नजर के सामने रखकर मैं विचार करता हूँ तो यह समय मुझे प्रिय लगता है। मुझे यह समय इसलिए खराब नही लगता क्योकि इस समय मे धर्म का पालन होता है। तुम बार-बार इस समय की निंदा करती हो, लेकिन जरा विचार करो कि किसी प्रकार का अपराध न करने पर भी, धर्म के पालन के लिए हम लोगो को इस समय संकट सहने पड़ते है। इससे बढ़कर दूसरा आनन्द और क्या हो सकता है?

युधिष्ठिर और उनके भाई जंगल मे कष्ट सहन कर रहे थे, फिर भी दुर्योधन की आँखो में वे काँटे की तरह खटकते थे। दुर्योधन ने विचार किया— इस समय पाण्डव असहाय हैं, मैं सेना ले जाकर उन्हें नष्ट कर डालूँ तो सदा के लिए झगड़ा ही मिट जाएगा। इस प्रकार विचार कर दुर्योधन गोकुल देखने के बहाने सेना लेकर चला। उसकी इच्छा तो पाण्डवो को नष्ट करने की थी मगर बहाना उसने किया गोकुल देखने का।

पहले के राजा लोग भी गोकुल रखते थे। और श्रावक भी गोकुल रखते थे। आनन्द श्रावक के वर्णन में यह वर्णन कहीं नहीं देखा गया कि उसके यहाँ हाथी, घोड़ा या मोटरें थीं, इसके विपरीत गायें होने का वर्णन अवश्य देखा जाता है। इस प्रकार पहले के लोग गायों की खूब रक्षा करते थे। मगर आज तो ऐसा जान पड़ता है मानों लोगो ने गोपालन को हलका काम समझ रक्खा है। लोग गायो के कत्ल की शिकायत करते है, मगर गहरा विचार करने पर मालूम होगा कि इसका प्रधान कारण यही है कि हिन्दुओ ने गायो का आदर करना छोड़ दिया है। लोगों को मोटर का पेट्रोल रखना सह्य हो जाता है मगर गाय का घास रखना सह्य नहीं है।

दुर्योधन के हृदय में पाण्डवो को नष्ट करने की भावना थी परन्तु वह गोकुल का निरीक्षण करने के बहाने सेना के साथ निकला। मार्ग में दुर्योधन अपनी सेना के साथ गन्धर्व के बगीचे में उतरा और इस कारण गन्धर्व तथा दुर्योधन के बीच लड़ाई हो गई। गन्धर्व बलवान् था। उसने सब को जीत लिया और दुर्योधन को जीवित पकडकर बाँध दिया। दुर्योधन के एक दूत ने यह सब समाचार पाण्डवो और द्रौपदी के पास पहुँचाए।

समाचार सुनकर भीम, अर्जुन और द्रौपदी ने कहा—बहुत अच्छा हुआ जो दुर्योधन पकड़ कर बाँध लिया गया। उस दुष्ट ने जैसा किया वैसा फल पाया। दुर्योधन दुष्ट विचार करके ही आ रहा था और उसने पाण्डवों को कष्ट भी बहुत दिया था। फिर भी दुर्योधन के कैद होने के समाचार सुनते ही युधिष्ठिर, भीम अर्जुन आदि से कहने लगे—भाइयो! दुर्योधन के पकड़े जाने से तुम प्रसन्न होते हो और इसे बहुत अच्छा समझते हो, मगर यह बात हम लोगों को शोभा नहीं देती। हे अर्जुन! अगर तुझे मुझ पर विश्वास है तो मैं जो कहता हूँ, उसी के अनुसार तू कर।' अर्जुन बोले—'मुझे आपके ऊपर पूर्ण विश्वास है। अतएव आपका आदेश मुझे शिरोधार्य है। आप जो कहेंगे, वही करूँगा।' तब युधिष्ठिर ने कहा-'जब कौरवों से अपना झगडा हो तो एक ओर सौ कौरव और दूसरी ओर हम पाँच पाण्डव रहे, मगर किसी तीसरे के साथ झगडा हो तो हम एक सौ पाँच साथ रहें। दुर्योधन कैसा ही क्यों न हो, आखिर तो अपना भाई ही है। हममें पुरुषार्थ होने पर भी कोई हमारे भाई को कैद कर रक्खे, यह कितना अनुचित है? अतएव अगर तुममे पुरुषार्थ हो तो जाओ और दुर्योधन को गन्धर्व के बंधन से मुक्त कर आओ।'

धर्मात्मा युधिष्ठिर ने विरासत मे भारतवर्ष को ऐसी हित-बुद्धि की भेंट दी है। मगर आजकल यह हितबुद्धि किस प्रकार भुला दी गई है और परिस्थिति कितनी विकट हो गई है, यह देखने की आवश्यकता है। कोई तीसरी शक्ति सबको दबा रही हो तो भले दबावे किन्तु हिन्दू-मुसलमान, जैन-वैष्णव अथवा न परस्पर मे शांति के साथ नही रह सकते। युधिष्ठिर कहते

है—अपना भाई अपने ऊपर भले ही लाखों जुल्म करता हो, मगर यदि वह भाई किसी तीसरे द्वारा दबाया जाता हो या पीडित किया जाता हो तो उसे पीडा-मुक्त करना भाई का धर्म है।

अर्जुन पहले कहता था—दुर्योधन, गधर्व द्वारा कैद कर लिया गया, यह बहुत अच्छा हुआ। परन्तु युधिष्ठिर की आज्ञा होते ही वह गंधर्व के पास गया। उसने दुर्योधन को बंधनमुक्त करने के लिए कहा। यह सुनकर गंधर्व ने अर्जुन से कहा—'मित्र! तुम यह क्या कह रहे हो? तुम इतना भी विचार नहीं करते कि दुर्योधन बड़ा ही दुष्ट है और तुम सबको मारने के लिए जा रहा था। ऐसी स्थिति मे मैंने उसे पकड कर कैद कर लिया है तो बुरा क्या किया है? इसलिए तुम अपने घर जाओ और इसे छुडाने के प्रयत्न में मत पडो। अर्जुन ने उत्तर दिया—दुर्योधन चाहे जैसा हो आखिर तो हमारा भाई ही है, अतएव उसे बधनमुक्त करना ही पड़ेगा।'

अर्जुन तो भाई की रक्षा के लिए इस प्रकार कहता है, मगर आप लोग भाई भाई कोर्ट मे मुकद्दमेबाजी तो नही करते? कदाचित् कोई कहे कि हमारा भाई बहुत खराब है तो उससे यही कहा जा सकता है कि वह कितना ही खराब क्यों न हो, मगर दुर्योधन के समान खराब तो नहीं है। जब युधिष्ठिर ने दुर्योधन के समान भाई के प्रति इतनी क्षमा और सहनशीलता का परिचय दिया तो तुम अपने भाई के प्रति इतनी क्षमा और सहनशीलता का परिचय नही दे सकते? मगर तुम में भाई के प्रति इतनी क्षमा और सहनशीलता नहीं है और इसी कारण तुम भाई के खिलाफ न्यायालय में मुकद्दमा दायर करते हो!

अर्जुन, भीम और द्रौपदी—तीनो दुर्योधन से बहुत खिलाफ थे, फिर भी उन्हे युधिष्ठिर के वचनो पर ऐसा दृढ़ विश्वास था तो तुम्हे भगवान् के वचनो पर कितना अधिक विश्वास होना चाहिए। भगवान कहते हैं—सिर काटने वाला वैरी भी मित्र ही है। वास्तव मे तो कोई किसी का सिर काट ही नहीं सकता, किन्तु आत्मा ही अपना शिरच्छेद कर सकती है। अतः आत्मा ही अपना असली वैरी है।

अर्जुन ने गन्धर्व से कहा—'भले ही तुम हमारे हित की बात कहते होओ, मगर अपने भाई की बात के सामने मैं तुम्हारी बात नही मान सकता। मुझे अपने ज्येष्ठ भ्राता युधिष्ठिर की बात शिरोधार्य करके दुर्योधन को तुम्हारे बन्धन से छुडाना है। अतः तुम उसे बन्धन-मुक्त कर दो। अगर यों नहीं मुक्त करना चाहते तो युद्ध करो। अगर तुमने हमारे हित के लिए ही उसे कैद कर रखा हो तो मेरा यही कहना है कि उसे छोड दो। मुझे उसकी करतूतें नही देखनी है, मुझे अपने भाई की आज्ञा का पालन करना है। अतएव उसे छोड़ दो।

आखिर अर्जुन दुर्योधन को छुड़ा लाया। युधिष्ठिर अर्जुन पर बहुत प्रसन्न हुए और कहने लगे—'तू मेरा सच्चा भाई है।' उन्होने द्रौपदी से कहा—देखो, इस जंगल मे कैसा मंगल है। इस प्रकार युधिष्ठिर ने जंगल में और संकट के समय मे धर्म का पालन किया था। मगर इस पर से आप अपने विषय मे विचार करो कि आप उपाश्रय मे धर्म का पालन करने आते है या अपने अभिमान का पोषण करने आते है? धर्मस्थान में प्रवेश करते ही 'निस्सही-निस्सही' कहकर अभिमान, क्रोध ।ि का निषेध करना चाहिए। अगर इनका निषेध किये बिना

ही धर्मस्थान मे आते हो तो कहना चाहिए कि आप अभी धर्मतत्त्व से दूर हैं।

भीम ने युधिष्ठिर से कहा—'गन्धर्व द्वारा दुर्योधन के कैद होने से तो हमे प्रसन्नता हुई थी। आप न होते तो हम इसी पाप में पड़ते रहते।' भीम का यह कथन सुनकर युधिष्ठिर ने उत्तर दिया—'यह तो ठीक है, मगर अर्जुन जैसा भाई न होता तो मेरी आज्ञा कौन मानता ?

तुम भी छद्मस्थ हो। तुम्हारे अन्त:करण मे इस प्रकार का पाप आना संभव है। फिर भी आज्ञा शिरोधार्य करने का ध्यान तो तुम्हे भी रखना चाहिए। भगवान् की आज्ञा है कि सब को अपना मित्र समझो। अपने अपराध के लिए क्षमा माँगो और दूसरो के अपराध क्षमा कर दो। इस आज्ञा का पालन करने मे ऐसी पॉलिसी का उपयोग नही करना चाहिए कि जिनके साथ लडाई-झगडा किया हो उनसे तो क्षमा माँगो नही और दूसरो से केवल व्यवहार के लिए क्षमा-याचना करो। सच्ची क्षमा माँगने का और क्षमा देने का यह सच्चा मार्ग नही है। शत्रु हो या मित्र, सब पर क्षमाभाव रखना ही महावीर भगवान् का महामार्ग है। भगवान् के इस महामार्ग पर चलोगे तो आपका कल्याण होगा। आज युधिष्ठिर तो रहे नहीं मगर उनकी कही बात रह गई है, इस बात को तुम ध्यान में रक्खो और जीवनव्यवहार मे उतारो।

अमर मरंता मैंने देखे !

एक सेठ का नाम ठनठनपाल था। नाम ठनठनपाल होने पर भी वह बहुत धनवान् था और उसकी बहुत अच्छी प्रतिष्ठा भी थी।

प्राचीन काल के श्रीमन्त, श्रीमन्त होने पर भी अपना कोई काम छोड़ नहीं बैठते थे। आज जरा-सी लक्ष्मी प्राप्त होते ही लोग सब काम छोड़छाड़ कर बैठे रहते हैं और ऐसा करने मे ही अपनी श्रीमन्ताई समझते हैं।

ठनठनपाल सेठ की पत्नी सेठानी होने पर भी पानी भरना, आटा पीसना, कूटना आदि सब घरू काम-काज अपने हाथों करती थी। अपने हाथ से किया हुआ काम जितना अच्छा होता है, उतना अच्छा दूसरे के हाथ से करवाया काम नहीं होता। परन्तु आजकल बहुत-से लोग धर्मध्यान करने के बहाने हाथ से घर का काम करना छोड़ देते हैं। उन्हे यह विचार नहीं आता कि धर्मध्यान करने वाला व्यक्ति क्या कभी आलसी बन

सकता है? जो कार्य अपने ही हाथ से भलीभाँति हो सकता है, शास्त्रकार उसके त्याग करने का आदेश नहीं देते। तुम स्वयं जो काम करोगे, विवेकपूर्वक करोगे, दूसरे से ऐसे विवेक की आशा कैसे रक्खी जा सकती है? इस प्रकार अपने हाथ से विवेकपूर्वक किये गये काम में एकान्त लाभ ही है। स्वय आलसी बनकर दूसरे से काम कराने में विवेक नहीं रहता और परिणामस्वरूप हानि होती है।

आजकल बिजली द्वारा चलने वाली चक्कियाँ बहुत प्रचलित हो गई है और हाथ की चक्कियाँ बन्द होती जा रही है। क्या घर की चक्कियाँ बन्द होने के कारण यह कहा जा सकता है कि आस्त्रव थोडा हो गया है? घर की चक्कियाँ बन्द करने से तुम निरास्रवी नहीं हुए हो परन्तु उलटे महापाप मे पड़ गये हो। घर की चक्की और बिजली की चक्की का अन्तर देखोगे तो अवश्य मालूम हो जायगा कि तुम किस प्रकार महापाप में पड़ गये हो। विचार करोगे तो हाथ चक्की और बिजली की चक्की मे राई और पहाड जितना अन्तर प्रतीत होगा। बिजली से चलने वाली चक्की से व्यवहार और निश्चय—दोनो की हानि हुई है और साथ ही साथ स्वास्थ्य की भी हानि हुई है और हो रही है। पुराने लोग मानते हैं कि डाकिनी लग जाती है और जिस पर उसकी नजर पड जाती है उसका वह सत्त्व चूस लेती है। डाकिनी की यह बात तो गलत भी हो सकती है परन्तु बिजली से चलने वाली चक्की तो डाकिनी से भी बढ़कर है। वह अनाज का सत्त्व चूस लेती है यह तो सभी जानते हैं। बिजली की चक्की मे पिसाया हुआ आटा कितना ज्यादा गरम होता है, यह देखने पर विदित होगा कि आटे का सत्त्व भस्म हो गया है।

सारांश यह है कि लोग अपने हाथ से काम न करके दूसरो से काम कराने मे अपनी महत्ता मानते है। उन्हें इस बात का विचार ही नहीं है कि अपने हाथ से और दूसरे के हाथ से काम करने कराने मे कितना ज्यादा अन्तर है।

ठनठनपाल श्रीमान् था, फिर भी उसकी पत्नी पीसना, कूटना आदि काम अपने हाथ ही से करती थी। किन्तु जब वह अपनी पडोसिनो से मिलती तो पडोसिने उसकी हँसी करने के लिए कहती—'पधारो श्रीमती ठनठनपालजी!' ठनठनपालजी की पत्नी को यह मजाक रुचिकर नहीं होता था।

एक दिन इस मजाक से उसे बहुत बुरा लगा। वह उदास हो कर बैठी थी कि उसी समय सेठ ठनठनपाल आ गये। अपनी पत्नी को उदास देखकर उन्होने पूछा—'आज उदास क्यों दिखाई देती हो? सेठानी बोली-तुम्हारा यह नाम कैसा विचित्र है। तुम्हारे नाम के कारण पडोसिने मेरी हँसी करती है। तुम अपना नाम बदल क्यो नहीं डालते? ठनठनपाल ने कहा—मेरे नाम से सभी लेनदेन चल रहा है। अब नाम बदल लेना सरल बात नहीं है। कैसे बदल सकता हूँ? उसकी पत्नी बोली—'जैसे बने तैसे तुम्हें यह नाम तो बदलना ही पड़ेगा। नाम न बदला तो मैं अपने मायके चली जाऊँगी। ठनठनपाल ने कहा—मायके जाना है तो अभी चली जा, मगर मैं अपना नाम नहीं बदल सकता। तेरी जैसी हठीली स्त्री मायके चली जाय तो हर्ज भी क्या है?

ठनठनपाल की स्त्री रूठ कर मायके चली। वह नगर के द्वार पर पहुँची कि कुछ लोग एक मुर्दे को उठाये वहाँ से निकले। सेठानी ने उनसे पूछा—'यह कौन मर गया है?' लोगों ने उत्तर

दिया—'अमरचन्द भाई का देहान्त हो गया है।' यह सुन-कर सेठानी सोचने लगी—'अमरचन्द नाम होने पर भी वह मर गया! उसके पैर वहीं भारी हो गये, फिर भी वह हिम्मत करके आगे बढ़ी। कुछ आगे जाने पर उसे एक गुवाल (गाय चराने वाला) मिला। सेठानी ने उसका नाम पूछा। उत्तर मिला—मेरा नाम धनपाल है। सेठानी सोचने लगी— यह धनपाल है या पशुपाल? सोच-विचार मे डूबी सेठानी थोडी और आगे बढ़ी। वहाँ एक स्त्री छाणा (कंडा) बीनती दिखाई दी। सेठानी ने उससे पूछा—बहिन तुम्हारा क्या नाम है? उसने उत्तर दिया—'लक्ष्मीबाई।' यह नाम सुनकर सेठानी को बडा आश्चर्य हुआ। वह सोचने लगी—नाम है लक्ष्मी बाई और बीनती फिरती है कंडा?

यह सब विचित्र घटनाएँ देखकर सेठानी का दिमाग ठिकाने आया। वह घर लौट आई। सेठ ने कहा—'आज तो कुछ समझ आ गई दीखती है। मगर कल जैसा तूफान तो नहीं मचाओगी? सेठानी बोली—अब मै समझ गई हूँ। सेठ के पूछने पर वह बोली—

अमर मरता मैने देखे, ढोर चरावे धनपाल।
लक्ष्मी छाणा बीनती, धन धन ठनठनपाल॥

ललितांग

किसी सेठ के ललितांग नामक पुत्र था। ललितांग अपने नाम के अनुसार सुन्दर और गुणवान् था। एक वार वह कहीं बाहर जा रहा था कि अपने महल मे से रानी ने उसे देखा। ललितांग को देखकर रानी सोचने लगी—'यह कुमार वडा ही ललित-सुन्दर है। ऐसे सुन्दर पुरुष के विना नारी का जीवन निरर्थक है। किसी भी उपाय से इसे प्राप्त करना ही चाहिये।' इस प्रकार विचार कर रानी ने अपनी एक विश्वासपात्र दासी भेजी और उसे गुप्त मार्ग द्वारा महल मे बुलाया। रानी ने अपनी मादकतापूर्ण कामदृष्टि से ललिताग को मुग्ध कर लिया। रानी का सौन्दर्य देखकर ललितांग भी उस पर मोहित हो गया। वह इतना मुग्ध हुआ कि अपने घरबार का भी खयाल उसे न रहा।

ललितांग को अपने कब्जे मे करके रानी ने उसके साथ विषयभोग करने की तैयारी की। इसी समय रानी को महल में राजा के आगमन की सूचना मिली। यह सूचना मिलते

ही रानी का मुँह उतर गया। रानी की अचानक यह उदासीनता देखकर ललितांग ने पूछा—'अभी-अभी तो मेरे साथ तुम हँस बोल रही थीं और अब एकाएक उदासीन हो गईं। इसका क्या कारण है?' रानी ने उत्तर दिया—'उदासी का कारण यह है कि राजा महल में आ रहा है। अब क्या करना चाहिये सो कुछ नहीं सूझता!' राजा के महल मे आने के समाचार सुनते ही ललितांग भय से कांपने लगा। उसने दीनतापूर्वक रानी से कहा—'मुझे जल्दी से कहीं न कहीं छिपाओ। राजा ने मुझे देख लिया तो शरीर के टुकड़े-टुकड़े करवा डालेगा। क्षत्रिय का और उसमें भी राजा का कोप बड़ा ही भयङ्कर होता है।' रानी बोली-'इस समय तुम्हें कहाँ छिपाऊँ! ऐसी कोई जगह भी तो नहीं दीखती जहाँ छिपा सकूँ। अलबत्ता, पाखाने में छिपाने लायक थोडी जगह है। राजा पाखाने की तरफ नजर भी नहीं करेगा और जब वह चला जायगा तो मैं बाहर निकाल लूँगी।'

पाखाने में रहने की इच्छा किसे होगी? किसी को नहीं। तो फिर सुगंध मे रहने वाले ललितांग को पाखाने मे रहना क्यो रुचिकर हुआ? इसका एकमात्र कारण था भय! पाप से निर्भयता कहाँ? ललितांग पापजन्य भय के कारण पाखाने मे छिपने के लिए विवश हो गया। रानी ने अपनी दासी से कहा-'इन्हें पाखाने में छिपा आ।' रानी की आज्ञा से दासी ने ललितांग के पैरो में रस्सी बाँधकर उसे उलटा लटका दिया। जब ललितांग को पाखाने मे उलटा लटकाया गया होगा तो कौन जाने उसकी क्या दशा हुई होगी!

राजा, रानी के महल मे आया और रानी के साथ कुछ खानपान करके लौट गया। रानी को या तो ललितांग की

रता देखकर घृणा हुई या वह उसे भूल गई अथवा और कोई कारण हुआ, जिससे उसने पाखाने में से ललितांग को नहीं निकाला। ललितांग को लटके-लटके बहुत समय व्यतीत हो गया।

पानी का निकास उसी पाखाने में होकर था। वर्षा होने के कारण पाखाने में जो पानी पहुँचा, उससे सूखा मल भी गीला हो गया और नीचे गिरने लगा। ललितांग उस मल से लिप्त हो गया। ऐसी मुसीबत में फँसा हुआ ललितांग आखिर डोरी टूटने से नीचे गिर पड़ा और बेहोश हो गया।

महतरानी, जो राजा और ललितांग के भी घर काम करती थी, पाखाना साफ करने आई। जैसे ही वह पाखाना साफ करने भीतर घुसी कि ललितांग नजर आया। देखते ही वह पहचान गई। उसने सोचा—हमारे सेठ का कुमार यह ललितांग और यहाँ पाखाने में पड़ा है! वह उलटे पाँव सेठ के घर दौड़ी। सेठ से कहा—तुम जिसकी चिन्ता करते थे, वह ललितांग कुमार तो राजा के पाखाने में पड़ा है! सेठ सोचने लगा—ललितांग वहाँ किस प्रकार पहुँचा होगा! खैर, जो हुआ सो हुआ, मगर अभी तो उसे शीघ्र ही घर लाना उचित है। सेठ कुछ आदमियों को साथ ले वहाँ पहुँचा और ललितांग को घर उठा लाया। उस समय ललितांग की स्थिति अत्यन्त नाजुक थी, पर यथोचित उपचार कराने से वह मरते-मरते बच गया। धीरे-धीरे स्वास्थ्य लाभ करके उसने अपनी पूर्व-स्थिति प्राप्त कर ली।

स्वस्थ होने के पश्चात् ललितांग घोड़ागाड़ी में बैठकर घूमने निकला। फिर रानी की दृष्टि ललितांग पर जा पड़ी। उसे

पत्नी—मेरे हृदय के देवता ! ऐसा न कहो। आपने अपराध ही क्या किया है ? मैंने सारी घटना का अनुमान कर लिया है। आप माता-पिता की आज्ञा का पालन करने के लिए, अपने हृदय को चोट पहुँचा कर भी, कठोर कर्त्तव्य के लिए उद्यत हुए है। यह तो मेरे लिए भी गौरव की बात है। मैंने जो स्पष्टीकरण किया है, वह इसलिए नहीं कि आप अपना कर्त्तव्य न पालें। वह तो सिर्फ आपके सन्तोष के लिए ही है। अब प्रसन्नतापूर्वक आप माता-पिता की आज्ञा का पालन कीजिए।

गोविन्द अपनी पत्नी की महत्ता को भलीभाँति समझ ा। वह क्या अपनी पतिव्रता पत्नी को कुए में धकेल (था ? कदापि नही। उसने कहा—हृदयेश्वरी ! मुझे चक्कर मत डालो। क्या मुझे अकेला छोड़कर स्वय स्वर्ग सिधारना चाहती हो ? मेरे परिवार मे तुम्हारी बडी आवश्यकता है। गृहस्थाश्रम के सागर मे तुम हमारी नौका हो। बीच में छोड़ जाओगी तो हमारा कहाँ पता लगने वाला है ?

है ? आज आप यह अभिमान करते है कि माता-पिता ने हमारे लिए क्या किया है ? किन्तु तनिक अपनी गर्भावस्था या बाल्यावस्था के विषय मे विचार करो कि उस समय तुम्हारी क्या हालत थी ? अगर माता-पिता ने उस समय आपको सम्भाला न होता तो कैसी दशा होती ?

माता-पिता के उपकार का विचार आने पर मुझे एक पुरानी कविता याद आ जाती है:—

डगमग पग टकती नहीं, खाई न सकतो खाद ।
उठी न सकतो आप थी, लेश हती नहिं लाज ॥
ते अवसर आखी दया, बालक ने माँ-बाप ।
सुख आपे दुख वेठीने, ते उपकार अमाप ॥
कोई करे एवा समै, बे घड़ी एक बरदास ।
आखी उंमर थई रहे, ते नर नो नर दास ॥

गर्भावस्था मे या बाल्यावस्था में घडी-दो घड़ी सहायता करने वाले सहायक का उपकार मनुष्य जितना माने, उतना ही थोडा है । तो फिर जिन माता-पिता ने ऐसे समय मे सब प्रकार की सहायता और सुविधा प्रदान की है, उनका कितना अपरिमित उपकार है, इस बात का जरा विचार तो कीजिए !

गर्भस्थान के कारागार से हम लोग बाहर निकले और माता-पिता की छत्र-छाया तले सुखपूर्वक बढ़ते-बढ़ते इस स्थिति में आये है । यह स्थिति पाकर हमारा कर्त्तव्य क्या है, इस बात का जरा गहराई से विचार करना चाहिये । हम जिस कैदखाने में बन्द रह चुके है फिर उसी मे बन्द होना उचित है अथवा ऐसा मार्ग खोजना उचित है कि फिर कभी उसमें बन्द न होना पड़े ?

८२
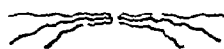
सुख में दुःख

धर्म के प्रति लोगों को अश्रद्धा क्यो उत्पन्न होती है ? इसका सामान्यतः कारण यह है कि लोग जिस साता-सुख मे फँस जाते हैं, उन सुखों के पीछे रहे हुए विकारो को या दुःखो को वह देखते नहीं और इसी कारण धर्म पर उनकी श्रद्धा नहीं जमती। अतएव सब से पहले यह देखना चाहिए कि धर्म के द्वारा तो सुख-साता चाही जाती है, उसके पीछे सुख रहा हुआ है या दुःख ? सांसारिक सुखो के पीछे क्या छिपा हुआ है, यह देखने से प्रतीति होती है कि वहाँ एकान्त दुःख ही दुःख है। इस प्रकार दुःख की प्रतीति होने पर फल-स्वरूप धर्म पर श्रद्धा उत्पन्न होगी। यह बात विशेपतया स्पष्ट करने के लिए एक उदाहरण लीजिए, जिससे सब सरलतापूर्वक समझ सकें।

एक नगर में दो मित्र रहते थे। उनमे से एक मित्र धर्म पर श्रद्धा रखता था और सांसारिक सुखो को दुःखरूप मानता था। दूसरा मित्र संसार के भोगविलास को सुखरूप समझता था।

पहला मित्र दूसरे को बार बार समझाता था कि संसार मे एक भी ऐसी वस्तु नही जो दुःखरहित हो। तब दूसरा मित्र पहले से कहता-'भाई साहब! संसार में उत्तम भोजन पान, नाचरंग और स्त्रीभोग मे जैसा सुख है, वैसा सुख और कहीं भी नही है।' इस प्रकार दोनों एक दूसरे की भूल बतलाया करते थे। अन्त मे एक बार पहले मित्र ने कहा—इसका निर्णय करने के लिए मैं एक उपाय बतलाता हूँ। आप राजा के पास जाओ और उससे कहो—मै आपको अमुक भेट देना चाहता हूँ। आप वह भेट लेकर दो घड़ी के लिए पाखाने मे बैठ जाइए।' क्या राजा तुम्हारी यह प्रार्थना स्वीकार करेगा? दूसरे मित्र ने कहा 'नहीं।' तब पहले मित्र ने प्रश्न किया-'राजा तुम्हारी प्रार्थना क्यो स्वीकार नही करेगा? क्या धन मे सुख नही है?' दूसरे मित्र ने उत्तर दिया—'धन मे सुख तो है, फिर भी राजा ऐसी शर्त मंजूर नही कर सकता। वह उलटा मुझे मुर्ख बतलायगा। वह कहेगा, कहीं इस भेट के खातिर पाखाने मे जाया जाता है। मैं ऐसा करूँगा तो दुनिया मूर्ख कहेगी।

'राजा धन की भेट पाकर के भी जिस पाखाने मे बैठने के लिए तैयार नही होता, उसी मे बिठलाने का काम मै सरलता से ही कर सकता हूँ।' यह कह कर पहला मित्र स्वादिष्ट चूर्ण तैयार करके राजा के पास ले गया। राजा को उसने चूर्ण बतलाया। राजा ने चूर्ण चखा। देखा कि चूर्ण स्वादिष्ट है तो उसकी तबीयत खुश हो गई। स्वादिष्ट होने के साथ चूर्ण मे एक गुण यह भी था कि उसके खाने से दस्त जल्दी और साफ लगता था। स्वादिष्ट होने के कारण राजा ने चूर्ण खा तो लिया, मगर उसके खाने से थोड़ी ही देर बाद उसे शौच की हाजत हुई। राजा उठकर पाखाने मे जाने लगा। तब चूर्ण वाले मित्र ने कहा-'महा-

राज ! विराजिये, कहाँ पधारते हैं ? राजा बोला—'पाखाने जाना है।' उसने उत्तर दिया—'महाराज ! पाखाना कैसा दुर्गन्ध वाला स्थान है ! आप महाराज हैं। सुगंधमय वातावरण में रहने वाले हैं। फिर उस सड़ने वाले पाखाने मे क्यो पधारते हैं ?' राजा ने कहा—तू तो महामुर्ख मालूम होता है। दुर्गन्ध के विना कहीं काम भी चलता है ? शरीर का ऊपरी भाग कैसा ही क्यों न हो, मगर इसके भीतर रक्त, मांस आदि जो कुछ है वह सब तो दुर्गन्ध वाला ही है। इसी दुर्गन्ध के आधार पर शरीर टिका हुआ है।' यह सुनकर पहले मित्र ने कहा—'ठीक है। जब आप पाखाने मे गये विना रह ही नहीं सकते तो आपसे कुछ अधिक कहना बेकार ही है।

पहले मित्र ने यह सब दूसरे मित्र को बतलाते हुए कहा-'तुम हजारों रुपयो की भेट देने को तय्यार थे, फिर भी आशा नहीं थी कि राजा पाखाने मे बैठने को तैयार होगा। लेकिन मैंने पाखाने से न जाने के लिए राजा से प्रार्थना की, फिर भी राजा रुका नहीं। इसका क्या कारण है ? इसका एकमात्र कारण यह चूर्ण है। राजा ने चूर्ण न खाया होता तो इस समय वह पाखाने में न गया होता। इस प्रकार संसार में एक भी ऐसा पदार्थ नहीं है, जिसके पीछे दुःख न छिपा हो।' पहले मित्र की इस युक्ति से दूसरा मित्र समझ गया कि जिसे वह सुख माने बैठा है, उस सुख के पीछे भी दुःख रहा हुआ है।

विशाल दृष्टि

पहले के लोग आजकल के लोगो की भाँति संकुचित विचार के नहीं थे। आज तो जाति के नाम पर निकम्मे बन्धन खड़े किये गये है। प्राचीन काल मे ऐसे बन्धन नही थे। उस समय तो वर-कन्या की योग्यता और समानता देखी जाती थी। आज यह देखा जाता है कि वर के पास धन है या नहीं ?—अगर धन हो तो क्या साठ वर्ष का धनिक वृद्ध भी छोटीसी कन्या के साथ विवाह करने को तैयार होता नही देखा जाता ? यह क्या कन्या के ऊपर अत्याचार-अन्याय नहीं है ? लोकलज्जा के कारण या किसी अन्य कारण से तुम्हे इस विषय मे कुछ कहते संकोच होता होगा, लेकिन समाज का अन्न ग्रहण करने के कारण मुझे तो समाज के हित के लिए बोलना ही पड़ेगा ! इसलिए मैं तुमसे कहता हूँ—इस प्रकार के वृद्धविवाह, अयोग्य-विवाह, अनमेल-विवाह आदि समाजनाशक विवाहों को प्रत्येक उचित उपाय से रोको। समाज मे इस प्रकार के जो अन्याय हो रहे है, उन्हें अगर तुम नहीं ही रोक सकते तो कम से कम इतना

करो कि अपने आपको इन अन्यायों से जुदा रक्खो। अन्याय के इन कार्यों में सहभागी मत बनो। अन्याययुक्त कार्यों से अपने आपको अलग न रख सकने वाला और पुद्गलों के लोभ पर विजय प्राप्त न कर सकने वाला—पुद्गलों का लोभी मनुष्य अत्यन्त शिथिल है। ऐसा ढीला मनुष्य धर्म का पालन किस प्रकार कर सकता है ?

पालित श्रावक का विवाह अन्तर्देशीय (परदेशीय) और अन्तर्जातीय (परजातीय) कन्या के साथ हुआ। कुछ समय पश्चात् अपनी उस नवविवाहित पत्नी को लेकर समुद्रमार्ग से पालित अपने घर की ओर रवाना हुआ। पालित की वह पत्नी गर्भवती थी। उसने समुद्र के अन्दर जहाज मे ही पुत्र का प्रसव किया।

आज लोग कहते हैं कि आधुनिक जहाजों में ही इस प्रकार की सुविधाएँ होती हैं, मगर पुराने वर्णनों से प्रतीत होता है कि उस समय भी जहाजो में कितनी सुन्दर सुविधाएँ होती थीं। प्रसवकाल अत्यन्त कठिन होता है, लेकिन प्राचीन काल के लोग जहाज मे भी उस स्थिति को सम्भालने में समर्थ होते थे।

पालित का पुत्र समुद्र मे जन्मा, इसलिए उसका नाम समुद्रपाल रक्खा गया। पालित अपनी पत्नी और पुत्र को लेकर घर पहुँचा। पालित ने समुद्रपाल को बहत्तर कलाओं में पण्डित बनाया।

वही सच्चे माता-पिता हैं जो अपनी सन्तानों को कला-शिक्षण द्वारा शिक्षित और संस्कारी बनाते हैं। कहावत है—'काचा सूत जैसा पूत।' अर्थात् बालक कच्चे सूत के समान हैं।

जैसा वनाना हो वैसे ही वह वन सकते है। आप वस्त्र पहनते है, किन्तु वस्त्र की जगह यदि सूत लपेट लो तो क्या ठीक कहलाएगा? नही। इसी प्रकार बालक कच्चे सूत के समान हैं। जैसा चाहो उन्हे वैसा ही वना लो। अगर आप बालक को जन्म देकर ही रह गये और उन्हे सरकारी नही बनाया तो वे कच्चे सूत की तरह ही निकम्मे रह जाएँगे।

प्राचीन काल के लोग अपने बालक को वहत्तर कला के कोविद और शास्त्र मे विशारद वनाते थे। ऐसा करके वह माता-पिता की हैसियत से अपना कर्त्तव्य पूरा करते थे। लेकिन आज कितने माँ-बाप ऐसे है जो अपने कर्त्तव्य का पूरी तरह पालन करते है? पहले के लोग अपनी सन्तान को, जीवन की आवश्यकताएँ पूर्ण करने के लिए, बहत्तर कलाएँ सिखलाते थे। मगर आज कितने लोग है जो अपने ही जीवन की आवश्यकताएँ पूर्ण कर सकते है? आज मोटर मे चढ़कर मटरगश्त करने वाले तो है मगर ऐसे कितने हैं जो स्वयं मोटर वना सकते हों या मोटर सुधार भी सकते हो? जो मनुष्य स्वयं किसी चीज का बनाना नही जानता, वह उसके लिए पराधीन है। आप भोजन करते है पर क्या भोजन बनाना भी जानते हैं? अगर नहीं जानते तो क्या आप पराधीन नहीं है? पहले बहत्तर कलाएँ सिखलाई जाती थीं, उनमे अन्नकला भी थी। अन्नकला के अन्तर्गत यह भी सिखलाया जाता था कि अन्न किस प्रकार पकाना और खाना चाहिए?

लोग कहते हैं कि जैनशास्त्र से सिर्फ त्याग ही बतलाया है, लेकिन जैनशास्त्र का गम्भीर अध्ययन किया जाय तो स्पष्ट

दिखाई देगा कि जैनशास्त्र जीवन को दुखी नहीं वरन् सुखी बनाने का राजमार्ग प्रदर्शित करता है। जैनशास्त्र बतलाता है कि जीवन किस प्रकार सांस्कारिक और सुखमय बनाया जा सकता है और किस प्रकार आत्मकल्याण-साधन किया जा सकता है ?

समुद्रपाल युवक हुआ। पालित ने योग्य कन्या के साथ उसका विवाह कराया। आज के लोग अपनी सन्तान का विवाह छुटपन मे गुड़िया-गुड्डा की भाँति कर देते हैं। वृद्ध विवाह की अपेक्षा भी बालविवाह को मै अधिक भयङ्कर समझता हूँ। बालविवाह से देश, समाज और धर्म को अत्यन्त हानि पहुँचाती है। वह हानि कितनी और किस प्रकार पहुँचती है, वह बतलाने का अभी समय नहीं है। किसी अन्य अवसर पर इस विषय मे मैं अपने विचार प्रकट करूँगा।

समुद्रपाल का विवाह रूपवती और सुशीला कन्या के साथ किया गया था। एक दिन समुद्रपाल अपने भवन के झरोखे में बैठा था। वहाँ उसने देखा—

कालो मुख कियो चोर नो, फेरो नगर मँझार,
समुद्रपाल तिन जोइने, लीनो संजम-भार।
जीवा चतुर सुजान, भज लो नी भगवान्,
मुक्ति नो मारग टोयलो, तज दो नी अभिमान।

समुद्रपाल ने झरोखे में बैठे-बैठे देखा कि एक मनुष्य मुँह काला करके उसे फाँसी पर चढने का पोशाक गया है। उसके आगे बाजे बज रहे हैं और बहुत से

साथ चल रहे है। फिर भी वह मनुष्य उदास है। वह दृश्य देख-कर समुद्रपाल विचारने लगा—यह मनुष्य उदास क्यो है? और इसे इस प्रकार क्यो ले जाया जा रहा है? तलाश करने पर मालूम हुआ कि उसने इन्द्रियो के वश होकर राज्य का अपराध किया है और राजा ने उसे फाँसी पर लटका देने का दण्ड दिया है। यह जानकर समुद्रपाल फिर विचार करने लगा-'इन्द्रयो के वश होने के कारण यह पुरुष फाँसी पर लटकाया जा रहा है। वास्तव, मे इन्द्रियो के भोग ऐसे ही है। इन्द्रियों के भोग· इन सांसारिक पदार्थों ने ही मेरे इस भाई को फाँसी पर चढ़ाया है। इन पदार्थों की बदौलत कही मेरी भी यही दशा न हो जाय। अतएव मेरे लिए यही उचित है कि मैं पहले ही इन्द्रिय-भोग के सांसारिक पदार्थों का परित्याग कर दूँ!'

इस प्रकार विचार करते-करते समुद्रपाल वैराग्य के रंग मे रंग गया। उसने सयम स्वीकार कर लिया। जब धर्म पर श्रद्धा उत्पन्न होती है तब सांसारिक वस्तु का मूल स्वरूप खोजा जाता है और फलस्वरूप सांसारिक पदार्थों के प्रति वैराग्य उत्पन्न हुए विना नही रहता और जब वैराग्य उत्पन्न हो जाता है तब सयम स्वीकार करने मे भी देर नहीं लगती। सांसारिक पदार्थ मनुष्य को किस प्रकार संसार मे फँसाते हैं और दुःख देते हैं, यह बात समझने योग्य है।

मेघ की नम्रता

सब जीव सद्गति पाने की ही अभिलाषा करते हैं, परन्तु इस अभिलाषा के साथ विनम्र बनने की इच्छा नहीं करते। यद्यपि विनम्रता धारण करने में किसी का किसी प्रकार का प्रतिबन्ध नहीं है, फिर भी आत्मा धर्म के समय अकड़ कर रहता है। आत्मा किस प्रकार अकड़बाज बन जाता है, यह बात महावीर स्वामी ने शास्त्र में बतलाई है।

ज्ञातासूत्र में बतलाया गया है कि मेघकुमार ने भगवान् महावीर के निकट दीक्षा अंगीकार की थी। वह सब से छोटे साधु थे, अतः उन्हें सोने के लिए रात्रि में सब से अन्त का स्थान मिला। मेघकुमार की शय्या अन्त में होने के कारण रात्रि में उनकी शय्या के पास से साधु बाहर जाते-आते तो उनके पैर की ठोकर मेघकुमार को लगती। उन्हें आराम से नींद नहीं आई। साधुओं की ठोकर लगने के कारण नींद न आने से वह सोचने लगे—'यह तो जान-बूझकर नरक की यातना भोगना है। यहाँ मेरी कोई कद्र ही नहीं करता। मैं जब राज-

साथ चल रहे है। फिर भी वह मनुष्य उदास है। वह दृश्य देखकर समुद्रपाल विचारने लगा—यह मनुष्य उदास क्यो है? और इसे इस प्रकार क्यो ले जाया जा रहा है? तलाश करने पर मालूम हुआ कि उसने इन्द्रियो के वश होकर राज्य का अपराध किया है और राजा ने उसे फाँसी पर लटका देने का दण्ड दिया है। यह जानकर समुद्रपाल फिर विचार करने लगा-'इन्द्रयो के वश होने के कारण यह पुरुप फाँसी पर लटकाया जा रहा है। वास्तव मे इन्द्रियो के भोग ऐसे ही है! इन्द्रियों के भोग· इन सांसारिक पदार्थों ने ही मेरे इस भाई को फाँसी पर चढ़ाया है। इन पदार्थों की बदौलत कहीं मेरी भी यही दशा न हो जाय! अतएव मेरे लिए यही उचित है कि मैं पहले ही इन्द्रिय-भोग के सांसारिक पदार्थों का परित्याग कर दूँ!'

इस प्रकार विचार करते-करते समुद्रपाल वैराग्य के रग मे रंग गया। उसने सयम स्वीकार कर लिया। जब धर्म पर श्रद्धा उत्पन्न होती है तब सांसारिक वस्तु का मूल स्वरूप खोजा जाता है और फलस्वरूप सांसारिक पदार्थों के प्रति वैराग्य उत्पन्न हुए विना नहीं रहता और जब वैराग्य उत्पन्न हो जाता है तब सयम स्वीकार करने में भी देर नहीं लगती। सांसारिक पदार्थ मनुष्य को किस प्रकार संसार मे फँसाते है और दुःख देते हैं, यह बात समझने योग्य है।

मेघ की नम्रता

सब जीव सद्गति पाने की ही अभिलाषा करते है, परन्तु इस अभिलाषा के साथ विनम्र बनने की इच्छा नहीं करते। यद्यपि विनम्रता धारण करने में किसी का किसी प्रकार का प्रतिबन्ध नहीं है, फिर भी आत्मा धर्म के समय अकड़ कर रहता है। आत्मा किस प्रकार अकड़बाज बन जाता है, यह बात महावीर स्वामी ने शास्त्र में बतलाई है।

ज्ञातासूत्र मे बतलाया गया है कि मेघकुमार ने भगवान् महावीर के निकट दीक्षा अंगीकार की थी। वह सब से छोटे साधु थे, अतः उन्हें सोने के लिए रात्रि में सब से अन्त का स्थान मिला। मेघकुमार की शय्या अन्त में होने के कारण रात्रि में उनकी शय्या के पास से साधु बाहर जाते-आते तो उनके पैर की ठोकर मेघकुमार को लगती। उन्हे आराम से नींद नहीं आई। साधुओं की ठोकर लगने के कारण नींद न आने से वह सोचने लगे—'यह तो जान-बूझकर नरक की यातना भोगना है। यहाँ मेरी कोई कद्र ही नहीं करता। मैं जब

कुमार था तब यही साधु मेरी कद्र करते थे। जब मै साधु हो गया हूँ तो कोई परवाह ही नहीं करता। उलटी इनकी ठोकरें खानी पड़ रही है। ऐसा साधुपन मुझसे नहीं पलने का। बस सुबह होते ही यह साधुपन छोड़कर मै घर चल दूँगा। लेकिन चुपचाप चला जाना ठीक न होगा। जिनके निकट मैंने दीक्षा अंगीकार की है, उन भगवान् की आज्ञा लेकर और उन्हे यह उपकरण सौंपकर अपने घर का रास्ता लूंगा।

मेघकुमार ने रात के समय यह विचार किया और सुबह होते ही वह भगवान् के पास आ पहुँचे। भगवान् तो सर्वज्ञ और सर्वदर्शी थे, उनसे क्या छिपा था ? वह पहले-से ही सब जानते थे। उन्होंने अपने पास आये मेघकुमार से कहा—'मेघ ! रात्रि के समय साधुओ की ठोकरो के परिषह से घबरा कर तुमने साधुपन छोड़ने और घर जाने का विचार किया है ? इसलिए तुम मेरे पास आये हो ?'

मेघकुमार कुलीन थे। वह मन ही मन कहने लगे—'अच्छा ही हुआ कि मैं भगवान् के पास चला आया। भगवान् के पास आये बिना ही, परबारा चला गया होता तो बहुत बुरी बात होती। भगवान् तो घट-घट की जानते है। मेरे कहने से पहले ही उन्होने मेरे मन की बात कह दी है।

इस प्रकार विचार करते हुए मेघकुमार ने भगवान् से कहा—'भगवन् ! आपका कथन सत्य है। मुझसे भूल हो गई है।'

भगवान् ने कहा—'मेघ ! आज तुम इतने से कष्ट से घबरा गये, पर इससे पहले वाले भव में तुमने कैसे-कैसे कष्ट सहन किये हैं, इस बात पर विचार करो। इससे पहले भव में

तुम हाथी थे। हाथी के उस भव में दावानल से बचने के लिए तुमने घास फूस आदि हटा कर एक मण्डल तैयार किया था। और जंगल में दावानल सुलगने पर जब बहुत-से जीव अपने प्राण बचाने के उद्देश्य से तुम्हारे बनाये मण्डल मे आने लगे, तब तुमने प्राणियों, भूतो,जीवों और सत्वों पर करुणा करके उन्हें स्थान दिया था। इतना ही नहीं, खुजली आने पर जब तुमने अपना एक पैर ऊपर उठाया तो एक खरहा तुम्हारे पैर से खाली हुई जगह में आ बैठा। उस खरहे पर दयाभाव लाकर तुमने अढ़ाई दिन तक अपना पैर ऊपर उठाये रक्खा था। इस नम्रता और करुणा की बदौलत ही तुम्हें यह मनुष्य भव प्राप्त हुआ है। हाथी के भव में तो तुमने इतनी नम्रता और करुणा धारण की और इस भव में साधारण से कष्ट सहन न कर सकने के कारण साधुपन छोडने को तैयार हो गए। पहले के कष्टों की तुलना में यह कष्ट तो बहुत साधारण है ! तिस पर पहले हाथी थे और अब मनुष्य हो। ऐसी स्थिति मे विचार करके तो देखो कि तुम्हें कितनी सहिष्णुता रखनी चाहिए।

हे मेघ ! हाथी की पर्याय में जीवो पर करुणा रखने और नम्रता धारण करने से इस भव मे तुम राजा श्रेणिक के पुत्र और मेरे शिष्य हो सके हो। हाथी के भव में इतनी अधिक सहनशीलता धारण की थी तो क्या इस भव में थोड़ी-सी सहिष्णुता भी नहीं रख सकते ? साधुओं की ठोकर लगने से ही साधुपन छोड़ने के लिए तैयार हो गये हो ! क्या साधुपन त्याग देने से तुम सुखी बन जाओगे ? मेघ ! तुम इन सब बातो पर विचार करो और साधुपन त्यागने का विचार त्याग दो।'

भगवान् के बचन सुनकर मेघकुमार प्रभावित उसने यहाँ तक निश्चय कर लिया कि

आवश्यक आँखों के सिवाय मेरा सारा शरीर साधुओं की सेवा के लिए समर्पित है। इतनी नम्रता धारण करने से मेघ-कुमार आयुक्षय होने पर विजय नामक विमान में उत्पन्न हुआ। वहाँ से पुनः मनुष्यजन्म धारण कर सिद्ध, बुद्ध और मुक्त होगा।

गाढ़ी श्रद्धा

तेगबहादुर की कथा औरंगजेब के जमाने की है। औरंगजेब बड़ा ही धर्मान्ध बादशाह था। वह किसी भी उपाय से लोगों को मुसलमान बनाना चाहता था। एक दिन कुछ लोगों ने उसे मुसलमान बनाने का उपाय सुझाया। वह उपाय यह था कि अगर लोगों को कष्ट झेलना पड़े तो वे घबराकर मुसलमान बन जाएँगे। अब प्रश्न हुआ कि कौनसा कष्ट पड़ने पर लोग मुसलमान बन सकेंगे? इस प्रश्न के समाधान में उसे सूझा— दुष्काल के समान और कोई कष्ट नहीं है। अगर दुष्काल का कष्ट पड़े तो लोग जल्दी मुसलमान बन सकते हैं। इस विचार के साथ ही उसने सोचा—मगर दुष्काल पड़ना तो कुदरत के हाथ की बात है। मुझसे यह किस प्रकार हो सकता है?

मुस्लिम धर्म नहीं कहता कि किसी को बलात्कार से मुसलमान बनाया जाय या किसी पर अत्याचार किया जाय, मगर मनुष्य जब धर्मान्ध बन जाता है तो उसमें वास्तविक धर्माधर्म के या योग्यायोग्य के विचार करने की शक्ति नहीं

रहती। राजा का धर्म तो यह है कि किसी संकट के समय प्रजा की सहायता करे, मगर औरंगजेब तो धर्मान्धता के कारण उलटा दुष्काल बुलाने का विचार कर रहा है।

औरंगजेब सोचने लगा—अगर दुष्काल पड़ जाय और लोगो को अन्न न मिले तो वे जल्दी मुसलमान हो जायेंगे। लेकिन कुदरत का कोप हुए विना दुष्काल कैसे पड सकता है। ऐसी दशा मे मैं अपना विचार अमल मे कैसे लाऊँ? विचार करते-करते आखिर वह कहने लगा—मैं बादशाह हूँ। क्या बादशाहत के जोर से मै अकाल पैदा नहीं कर सकता? इस प्रकार सोचकर बादशाह ने करीब दो लाख सैनिक काश्मीर मे भेजे और वहाँ के धान्य से लहराते हुए खेतो पर पहरा बिठला दिया। किसान धान्य काटने आते तो उनसे कहा जाता-मुसलमान बनना मंजूर हो तो धान्य काट सकते हो, वर्ना अपने घर बैठो। इस प्रकार अन्न-कष्ट के कारण कितने ही किसान मुसलमान बन गये। जब बादशाह को यह वृत्तान्त विदित हुआ तो वह अपनी करतूत की सफलता का अनुभव करके बहुत प्रसन्न हुआ। साथ ही उसने अन्य प्रान्तों मे भी यह उपाय आजमाने का निश्चय किया। दूसरा नम्बर पंजाब का आया।

पंजाब मे बादशाह ने यही तरीका अख्तियार किया। लोग त्राहि-त्राहि पुकारने लगे। इस दुर्दशा के समय क्या करना चाहिए, यह विचार करने के लिए बहुत से लोग तेग बहादुर के पास आये और कहने लगे—'बादशाह ने सारे प्रान्त में यह जुल्म आरम्भ कर दिया है। अब क्या करना उचित है?' गुरु तेगबहादुर ने कहा—'तुम लोग बादशाह के पास यह संदेश

किसी प्रकार का दबाव नही होना चाहिए। आप अपना धर्म पालें, मै अपना धर्म पालू । अगर आपको अपने धर्म के प्रति इतना आग्रह है तो क्या मुझे अपने धर्म पर दृढ़ नहीं रहना चाहिए ?'

बादशाह बोला—'तुम्हारा धर्म झूठा है। अगर उसमे कुछ सचाई है तो दिखलाओ कोई चमत्कार।'

तेगबहादुर ने कहा— चमत्कार बतलाना जादूगरो का काम है। परमात्मा का सच्चा भक्त चमत्कार दिखलाता नहीं फिरता।'

बादशाह—'चमत्कार नही दिखा सकते तो यही क्यो नहीं कहते कि चमत्कार जानते ही नही हो।'

तेगबहादुर—'प्रकृति की प्रत्येक वस्तु मे चमत्कार भरा है। उस चमत्कार को देखो।'

बादशाह कहने लगा—'अगर तुम मुसलमान धर्म स्वीकार नही करना चाहते तो मृत्यु का आलिंगन करने के अतिरिक्त तुम्हारे लिए दूसरा कोई मार्ग नही है।'

तेगबहादुर—'मरने के लिए तो मै तैयार ही हूँ। धर्म के लिए प्राण देने से अधिक प्रसन्नता की और क्या बात हो सकती है ?'

बादशाह ने हुक्म दिया–'तेगबहादुर को बजार के बीचों-बीच ले जाओ और वहाँ इसका सिर काट डालो।' सिर काटने के पश्चात् तेगबहादुर के गले मे एक चिट्ठी पाई गई। उसमें लिखा था–सिर तो दिया, मगर शिखा नही दी। अर्थात् प्राणों का उत्सर्ग कर दिया किन्तु हिन्दू धर्म का त्याग नहीं किया।

इस उदाहरण को सामने रखकर आप अपने विषय मे विचार कीजिए कि आपने सत्यधर्म की रक्षा के लिए क्या दिया है ? पहले के लोग धर्मरक्षा के लिए प्राण भी अर्पण कर देते थे, लेकिन धर्म नहीं जाने देते थे। आप मे कोई ऐसा तो नहीं है जो थोडे से पैसों के लिए ही-धर्म का त्याग कर देता हो ? जिस मनुष्य मे से नीति चली जाती है, उसमे धर्म भी नहीं रहता।

औरंगजेब ने सोचा तो यह था कि तेगबहादुर को मरवा डालने से लोग जल्दी मुसलमान बन जाएँगे, लेकिन उसका विचार भ्रमपूर्ण ही सिद्ध हुआ। तेगबहादुर के बलिदान ने लोगों में एक प्रकार की धार्मिक वीरता उत्पन्न की। लोगों मे धर्म के लिए मर मिटने की दृढता देखकर अन्त में औरङ्गजेब को बलात् मुसलमान बनाने का विचार छोड़ देना पडा।

इस उदाहरण को उपस्थित करने का आशय यह है कि धर्म के लिए सभी कुछ त्याग किया जा सकता है। आजकल अनेक लोग तुच्छ-सी बात के लिए भी धर्म का त्याग करने में या धर्म की सौगन्द खाने में संकोच नही करते। धर्म सौगन्द खाने की चीज नहीं है। धर्म का सम्बन्ध प्राणों के साथ है। प्राण जैसे प्यारा लगता है उसी प्रकार धर्म प्यारा लगना चाहिए। धर्म जब प्राणों के समान प्रिय लगे तब समझना चाहिए कि हम में धर्मश्रद्धा मौजूद है।
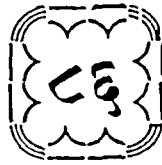
सुशीला बहू

किसी नगर के बाहर एक झौंपडी में एक सुशील और भक्त श्रावक रहता था।

यों तो भक्त और श्रावक का अर्थ एक ही है, पर यहाँ दोनो कहने का मतलब यह है कि आजकल श्रावक कहलाने वाले तो बहुत है पर सच्चे श्रावक कम है। भक्त श्रावक कहने का अर्थ यह है कि वह सच्चा श्रावक था।

वह श्रावक बहुत गरीब था। बाजरे की रोटी और छाछ पर अपना निर्वाह करता था। पर हृदय का इतना उदार था कि द्वार पर आये किसी अतिथि को भूखा नहीं जाने देता था। उसकी झौंपडी मे अकसर सत्संग हुआ करता था। आत्मजागृति करने वाली बातों के सिवाय दूसरी बाते नहीं हुआ करती थीं। वह सदा ईश्वर के ध्यान मे मस्त रहता।

उसकी स्त्री दो वर्ष की एक कन्या छोड़ मरी थी। वह

भी बड़ी सुशीला थी। सत्संगति में उसका मन भी खूब लगता था। जब उसकी माता गर्भवती रही होगी, तब उसकी संतान पर कितना अच्छा असर पड़ा होगा।

ज्यो-ज्यों समय बीतता गया, कन्या बड़ी होती गई। परन्तु भक्त को किसी प्रकार की चिन्ता नहीं थी। वह कभी फिक्र नहीं करता था कि कन्या का विवाह किस जगह करना चाहिए या किसके साथ करना चाहिए। वह तो अपनी भक्ति मे ही मगन था। उसे परमात्मा पर पूरा विश्वास था। वह मानता था—प्रकृति जो खेल करेगी वह अच्छा ही होगा। अगर यह कन्या ब्रह्मचारिणी रह जायगी तो भी क्या हर्ज है?

धीरे-धीरे कन्या सोलह वर्ष की हो गई। आज आपके यहाँ ऐसी बात हो जाय तो आप घबरा उठेंगे। आपके पड़ौसी के यहाँ हो जाय तो आप टीका-टिप्पणी करने से नहीं चूकेंगे! पर उस भक्त को तनिक भी चिन्ता नहीं थी। कन्या भी अपनी झौंपड़ी में आये साधु-सन्तो की यथोचित सेवा-शुश्रूषा करती और धर्म-चर्चा से नाना विषयों में कौशल प्राप्त कर रही थी।

आप सोचते होंगे—वह अपनी चित्तवृत्तियों को किस प्रकार दबाती होगी? मैं कहता हूँ-जो नीच माता-पिता अपनी विषयवासना को नहीं जीतते वही ऐसी शंकाएँ उठाते हैं। अगर उनका चित्त निर्मल हो तो ऐसी शंका ही उत्पन्न न हो। सन्तान को पवित्र वातावरण मे रक्खा जाय तो उसमें विकारमयी भावना उत्पन्न नहीं होती।

उस कन्या का यौवन दिन प्रतिदिन [illegible]

एक तेजोमूर्ति देवकन्या-सी मालूम पडती थी।

एक दिन उस नगर का नगर-सेठ हवा खाने के लिए उस ओर जा पहुँचा। कन्या किसी अतिथि का सत्कार कर रही थी। अचानक कन्या पर उसकी दृष्टि पड गई। उसके रूप और यौवन को देखकर उसका हृदय खिल उठा। उसने सोचा—मेरा लड़का कुँआरा है। उसके साथ इसका विवाह हो सके तो कितना अच्छा!

सेठ अपने घर गया। अपने इष्ट मित्रों से सलाह ली। मगर सभी ने कन्या के पिता की गरीबी का चित्र खींचकर कहा—वाह! ऐसे फकीर के साथ आपका सम्बन्ध क्या शोभा देगा? विवाह-सम्बन्ध तो बराबरी वाले के साथ ही शोभा देता है। वह क्या आपकी बराबरी का है? कहाँ झोपडी में रहने वाला वह फकीर और कहाँ सतमँजिले महलों मे रहने वाले आप नगर सेठ! संसार मे आपके लड़के के लिए बहुत कन्याएँ मौजूद हैं।

फिर सेठ ने अपनी पत्नी से सलाह ली। उसने भी यही कहा। इस प्रकार सब का विरोध होने पर भी सेठ का विचार न बदला। वह कन्या को देख जो चुका था! उसने निश्चय किया--कुछ भी हो, उस कन्या को तो घर मे लाऊँगा ही! ऐसी कन्या फिर नही मिलने की। सेठ के इस निश्चय के आगे किसी की नहीं चली। सब चुप हो रहे।

सेठ ने अपने पुरोहित को भेज कर उस श्रावक को सगाई के लिए कहला भेजा। श्रावक ने कहा—मेरी जैसी स्थिति है, आप जानते ही हैं। मेरे पास छिपाने को कुछ नहीं है।

कुकुम-कन्या हाजिर है। सेठजी चाहें तो ले जाएँ।

सम्बन्ध पक्का हो गया। निश्चित समय पर बरात पहुँची। श्रावक की झोंपड़ी देख कर बराती हँसने लगे और आपस में भाँति-भाँति की बातें करने लगे। किसी ने कहा— देखो न, इस सेठ की बुद्धि पर धूल पड़ गई है!

दूसरा बोला—तभी तो उम्दा समधी खोजा है!

तीसरा—अरे भाई सेठ ने समधी की तरफ ध्यान नहीं दिया, उसने कन्या की ही ओर देखा है।

चौथा—क्या ऐसी दूसरी कन्या दुनियाँ में नहीं थी ? नहीं ? बहुत-सी कन्याएँ हैं। पर सोचा होगा—बराबरी वाले के घर विवाह करेंगे तो खर्च ज्यादा करना पड़ेगा। थोड़े में ही काम चल जाएगा।

इस प्रकार जितने मुँह उतनी ही बातें होने लगीं। लग्न का मुहूर्त्त आया। कन्या का हाथ पति के हाथ में दिया गया। इसे हथलेवा कहते हैं। हथलेवा के समय कुछ दान देने की प्रथा है। पर श्रावक तो बेचारा गरीब था। वह क्या देता? उसने अपनी कन्या से कहा—बेटी, मेरे पास देने को वस्तु नहीं है। मगर मैं जो देना चाहता हूँ वह मूल्यवान् वस्तुएँ हैं। मैं तुझे तीन दासियाँ देता नरमाई और भलमनसाहत। मैं तुझे लज्जा का सुन्दर कपड़े पहनने वाली भी निर्लज्जता के होती है। और मैं गहने देता हूँ तुझे ज्ञान के अपनी लड़की को कानों के सोने के आभूषण

में तो विशेषता ही क्या ? वह नौकरों--चाकरों के साथ भी नम्रता का ही व्यवहार करती थी। वह घर का काम--काज बड़ी स्फूर्ति और सफाई के साथ करती थी।

उसके सास--ससुर लोभी तो थे ही, उन्होंने दो--तीन दासियो को हटा दिया। बहू के काम--काज को देखकर और पैसे की बचत होती देख वे और ज्यादा प्रसन्न हुए। सास पहले पुत्रवधू को देखकर कुढ़ती थी। सोचती थी कि किसी धनवान् की लडकी आती तो लाखों का दहेज लाती! पर अब वह भी अपनी सुशीला पुत्रवधू की प्रशंसा करने लगी। धीरे-धीरे पुत्रवधू ने सब का हृदय जीत लिया। सेठ ने तिजोरियो की चाबियाँ भी अब पुत्रवधू को दिला दी।

पुत्रवधू ने कहा—चाबियों का गुच्छा आपके पास ही रहने दीजिए। मैं लेकर क्या करूँगी ? मैं आपकी सेवा मे हाजिर ही हूँ। जो आज्ञा देगी, बजाऊँगी। लेकिन चाबियों की जिम्मेवारी मुझे न दीजिए।

सासू ने प्रेम से कहा—नहीं बेटी, तू होशियार है। अब मुझे चाबियाँ रखने की आवश्यकता नहीं है। तू जाने तेरा घर जाने। पर हाँ, एक बात कहे देती हूँ–चाबियाँ तो मैं सौंपती हूँ, मगर किसी को दान मत देना। किसी को कुछ भी दे दिया तो मुझ-सी बुरी नहीं है। हाँ, अपनी बराबरी का कोई अतिथि आ जाय तो उसका सत्कार करने को मैं मना नही करती। उसके लिए ऐसी तैयारी करना कि वह देखकर दग रह जाय।

पुत्रवधू—माताजी, यह जिम्मेवारी मुझ पर न

वह नहीं है। लेकिन उन आभूषणों से बाहरी शोभा बढती है। मै जो देना चाहता हूँ, उससे तेरे कानो की ही नहीं, आत्मा की भी शोभा बढ़ेगी। वह आभूषण यह शिक्षा है कि तू ऐसे ही शब्द सुनना, जिससे परमात्मा प्रसन्न हो। कभी ऐसी जगह न जाना जहाँ खोटे शब्द सुनने को मिले। हाथ का जेवर दान है। घर पर कोई दीन-दुखिया आवे तो यथायोग्य दान-सत्कार करके उसे सन्तुष्ट करना। दूसरी स्त्रियाँ हृदय पर हार आदि पहनती है। तू ईश्वर की भक्ति और पति के प्रति श्रद्धा अपने हृदय में रखना। यही तेरे लिए सच्चा हार होगा।

कन्या के पिता के इस दान से वरराजा कुढ़ने लगे। मन ही मन कहा—पिताजी ने क्या सोचकर यहाँ पटक दिया! दुनियाँ मे कहीं कोई दूसरी कन्या ही नही थी? सुसर साहब देते तो कुछ है नहीं, ऊपर से देने की शेखी बघार रहे है।

विवाह हो गया और वधू सुसराल पहुँची। सुसराल वाले करोडपति थे। पिता के घर घास-फूस की छोटी-सी झौंपड़ी थी और यहाँ लम्बे-चौडे महल खड़े थे। मगर उसे झौंपड़ी और महल मे जैसे कोई अन्तर नही दिखाई दिया। वह जैसी झौपडी मे सुखी थी वैसी ही इस महल मे भी। महल में आने पर उसकी मनोवृत्तियों मे कोई विशेष अन्तर नहीं हुआ। किसी धनी की कन्या होती तो यहाँ आकर लटको--छटकों में

में तो विशेषता ही क्या ? वह नौकरों--चाकरों के साथ भी नम्रता का ही व्यवहार करती थी। वह घर का काम--काज बड़ी स्फूर्ति और सफाई के साथ करती थी।

उसके सास--ससुर लोभी तो थे ही, उन्होने दो--तीन दासियो को हटा दिया। बहू के काम--काज को देखकर और पैसे की बचत होती देख वे और ज्यादा प्रसन्न हुए। सास पहले पुत्रवधू को देखकर कुढ़ती थी। सोचती थी कि किसी धनवान् की लडकी आती तो लाखों का दहेज लाती। पर अब वह भी अपनी सुशीला पुत्रवधू की प्रशंसा करने लगी। धीरे-धीरे पुत्रवधू ने सब का हृदय जीत लिया। सेठ ने तिजोरियो की चाबियाँ भी अब पुत्रवधू को दिला दी।

पुत्रवधू ने कहा—चाबियो का गुच्छा आपके पास ही रहने दीजिए। मैं लेकर क्या करूँगी ? मैं आपकी सेवा मे हाजिर ही हूँ। जो आज्ञा देंगी, बजाऊँगी। लेकिन चाबियो की जिम्मेवारी मुझे न दीजिए।

सासू ने प्रेम से कहा—नहीं बेटी, तू होशियार है। अब मुझे चाबियाँ रखने की आवश्यकता नहीं है। तू जाने तेरा घर जाने। पर हाँ, एक बात कहे देती हूँ—चाबियाँ तो मैं सौंपती हूँ, मगर किसी को दान मत देना। किसी को कुछ भी दे दिया तो मुझ-सी बुरी नहीं है। हाँ, अपनी बराबरी का कोई अतिथि आ जाय तो उसका सत्कार करने को मै मना नहीं करती। उसके लिए ऐसी तैयारी करना कि वह देखकर दग रह जाय।

पुत्रवधू—माताजी, यह जिम्मेवारी मुझ पर न

वह नहीं है। लेकिन उन आभूपणों से वाहरी शोभा बढ़ती है। मै जो देना चाहता हूँ, उससे तेरे कानो की ही नहीं, आत्मा की भी शोभा बढ़ेगी। वह आभूषण यह शिक्षा है कि तू ऐसे ही शब्द सुनना, जिससे परमात्मा प्रसन्न हो। कभी ऐसी जगह न जाना जहाँ खोटे शब्द सुनने को मिले। हाथ का जेवर दान है। घर पर कोई दीन-दुखिया आवे तो यथायोग्य दान-सत्कार करके उसे सन्तुष्ट करना। दूसरी स्त्रियाँ हृदय पर हार आदि पहनती हैं। तू ईश्वर की भक्ति और पति के प्रति श्रद्धा अपने हृदय में रखना। यही तेरे लिए सच्चा हार होगा।

कन्या के पिता के इस दान से वरराजा कुढ़ने लगे। मन ही मन कहा—पिताजी ने क्या सोचकर यहाँ पटक दिया! दुनियाँ मे कही कोई दूसरी कन्या ही नही थी ? सुसर साहब देते तो कुछ हैं नहीं, ऊपर से देने की शेखी वघार रहे है।

विवाह हो गया और वधू सुसराल पहुँची। सुसराल वाले करोड़पति थे। पिता के घर घास-फूस की छोटी-सी झौंपड़ी थी और यहाँ लम्बे-चौडे महल खड़े थे। मगर उसे झौंपडी और महल मे जैसे कोई अन्तर नही दिखाई दिया। वह जैसी झौंपड़ी मे सुखी थी वैसी ही इस महल मे भी। महल मे आने पर उसकी मनोवृत्तियो मे कोई विशेष अन्तर नहीं हुआ। किसी धनी की कन्या होती तो यहाँ आकर लटको--छटको मे ही सारा दिन गँवा देती, पर सुशीला ऐसा नही करती थी। वह अपने पति के मनोरंजन के लिए कुछ शृ गार करती थी, पर उसमें भी सादगी होती थी। उसकी मनोवृत्ति मे तो सादगी ही भर[illegible] नम्रता उसमे थी ही। कभी किसी के सामने घमण्ड न[illegible] ,ससुर और पति के सामने ही नम्र रहने

में तो विशेषता ही क्या ? वह नौकरों--चाकरों के साथ भी नम्रता का ही व्यवहार करती थी। वह घर का काम--काज बडी स्फूर्ति और सफाई के साथ करती थी।

उसके सास--ससुर लोभी तो थे ही, उन्होंने दो--तीन दासियों को हटा दिया। बहू के काम--काज को देखकर और पैसे की बचत होती देख वे और ज्यादा प्रसन्न हुए। सास पहले पुत्रवधू को देखकर कुढती थी। सोचती थी कि किसी धनवान् की लड़की आती तो लाखों का दहेज लाती। पर अब वह भी अपनी सुशीला पुत्रवधू की प्रशंसा करने लगी। धीरे-धीरे पुत्रवधू ने सब का हृदय जीत लिया। सेठ ने तिजोरियो की चाबियाँ भी अब पुत्रवधू को दिला दीं।

पुत्रवधू ने कहा—चाबियो का गुच्छा आपके पास ही रहने दीजिए। मैं लेकर क्या करूँगी ? मैं आपकी सेवा मे हाजिर ही हूँ। जो आज्ञा देंगी, बजाऊँगी। लेकिन चाबियो की जिम्मेवारी मुझे न दीजिए।

सासू ने प्रेम से कहा—नहीं बेटी, तू होशियार है। अब मुझे चाबियाँ रखने की आवश्यकता नही है। तू जाने तेरा घर जाने। पर हाँ, एक बात कहे देती हूँ--चाबियाँ तो मैं सौंपती हूँ, मगर किसी को दान मत देना। किसी को कुछ भी दे दिया तो मुझ-सी बुरी नही है। हाँ, अपनी बराबरी का कोई अतिथि आ जाय तो उसका सत्कार करने को मैं मना नहीं करती। उसके लिए ऐसी तैयारी करना कि वह देखकर दंग रह जाय।

पुत्रवधू—माताजी, यह जिम्मेवारी मुझ पर न डालिए।

वह नहीं है। लेकिन उन आभूषणों से बाहरी शोभा बढ़ती है। मै जो देना चाहता हूँ, उससे तेरे कानो की ही नहीं, आत्मा की भी शोभा बढ़ेगी। वह आभूषण यह शिक्षा है कि तू ऐसे ही शब्द सुनना, जिससे परमात्मा प्रसन्न हो। कभी ऐसी जगह न जाना जहाँ खोटे शब्द सुनने को मिले। हाथ का जेवर दान है। घर पर कोई दीन-दुखिया आवे तो यथायोग्य दान-सत्कार करके उसे सन्तुष्ट करना। दूसरी स्त्रियाँ हृदय पर हार आदि पहनती है। तू ईश्वर की भक्ति और पति के प्रति श्रद्धा अपने हृदय मे रखना। यही तेरे लिए सच्चा हार होगा।

कन्या के पिता के इस दान से बरराजा कुढ़ने लगे। मन ही मन कहा—पिताजी ने क्या सोचकर यहाँ पटक दिया! दुनियाँ मे कही कोई दूसरी कन्या ही नही थी? सुसर साहब देते तो कुछ हैं नहीं, ऊपर से देने की शेखी बघार रहे है।

विवाह हो गया और वधू सुसराल पहुँची। सुसराल वाले करोड़पति थे। पिता के घर घास-फूस की छोटी-सी झोंपड़ी थी और यहाँ लम्बे-चौड़े महल खड़े थे। मगर उसे झोंपड़ी और महल में जैसे कोई अन्तर नहीं दिखाई दिया। वह जैसी झोंपड़ी मे सुखी थी वैसी ही इस महल मे भी। महल में आने पर उसकी मनोवृत्तियो मे कोई विशेष अन्तर नही हुआ। किसी धनी की कन्या होती तो यहाँ आकर लटको--छटको में ही सारा दिन गँवा देती, पर सुशीला ऐसा नही करती थी। वह अपने पति के मनोरंजन के लिए कुछ श्रृंगार करती थी, पर उसमें भी सादगी होती थी। उसकी मनोवृत्ति मे तो सादगी ही भरी थी। नम्रता उसमे थी ही। कभी किसी के सामने घमण्ड नही करती थी। सास,ससुर और पति के सामने ही नम्र रहने

में तो विशेषता ही क्या ? वह नौकरों--चाकरों के साथ भी नम्रता का ही व्यवहार करती थी। वह घर का काम--काज बड़ी स्फूर्ति और सफाई के साथ करती थी।

उसके सास--ससुर लोभी तो थे ही, उन्होने दो--तीन दासियो को हटा दिया। बहू के काम--काज को देखकर और पैसे की बचत होती देख वे और ज्यादा प्रसन्न हुए। सास पहले पुत्रवधू को देखकर कुढ़ती थी। सोचती थी कि किसी धनवान् की लडकी आती तो लाखों का दहेज लाती। पर अब वह भी अपनी सुशीला पुत्रवधू की प्रशंसा करने लगी। धीरे-धीरे पुत्रवधू ने सब का हृदय जीत लिया। सेठ ने तिजोरियो की चाबियाँ भी अब पुत्रवधू को दिला दी।

पुत्रवधू ने कहा—चाबियों का गुच्छा आपके पास ही रहने दीजिए। मैं लेकर क्या करूँगी ? मैं आपकी सेवा मे हाजिर ही हूँ। जो आज्ञा देंगी, बजाऊँगी। लेकिन चाबियो की जिम्मेवारी मुझे न दीजिए।

सासू ने प्रेम से कहा—नहीं बेटी, तू होशियार है। अब मुझे चाबियाँ रखने की आवश्यकता नही है। तू जाने तेरा घर जाने। पर हाँ, एक बात कहे देती हूँ—चाबियाँ तो मैं सौंपती हूँ, मगर किसी को दान मत देना। किसी को कुछ भी दे दिया तो मुझ-सी बुरी नहीं है। हाँ, अपनी बराबरी का कोई अतिथि आ जाय तो उसका सत्कार करने को मै मना नहीं करती। उसके लिए ऐसी तैयारी करना कि वह देखकर दग रह जाय।

पुत्रवधू—माताजी, यह जिम्मेवारी मुझ पर न डालिए।